Uttar Pradesh Rajarshi Tandon
Open University

MAPH-114 (N)

समकालीन धार्मिक समस्याएं

खण्ड 1 धार्मिक बहुलवाद	3
इकाई-1 धार्मिक शुचिता	7
इकाई-2 प्रगतिशील दैवीप्रकाशना	15
इकाई-3 डक रैबिट भ्रम	23
इकाई-4 परिमार्जित तत्वमीमांसा	38
खण्ड -2 धार्मिक सहिष्णुता	45
इकाई-5 सहिष्णुता की जड़े	49
इकाई-6 सहिष्णुता के विभिन्न अर्थ	58
इकाई-7 सहिष्णुता के साधन	65
इकाई-8 सहिष्णुता के आधार स्तंभ	72
खण्ड-3 धर्मों का मिलन बिन्दु	79
इकाई-9 धार्मिक एकता का अर्थ	83
इकाई-10 धर्मों की एकता का विकल्प	93
इकाई-11 धर्मों की सापेक्षता	103
इकाई-12 सर्वधर्म समन्वय, सर्वधर्म समभाव, सर्वधर्म सद्भाव	110
खण्ड -4 धर्म परिवर्तन	119
इकाई -13 धर्म परिवर्तन के आयाम	121
इकाई -14 धर्म परिवर्तन के प्रकार	129
इकाई -15 धर्म परिवर्तन के प्रेरक तत्व	136
इकाई -16 धर्मांतरण	142

संरक्षक एवं मार्गदर्शक

प्रोफेसर सत्यकाम — कुलपति–अध्यक्ष

विशेषज्ञ समिति

प्रो. सत्यपाल तिवारी — निदेशक, मानविकी विद्याशाखा, उ.प्र. राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रो. जटाशंकर (सेवानिवृत्त) — दर्शनशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

प्रो.ऋषिकान्त पाण्डेय — दर्शनशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

प्रो. हरिशंकर उपाध्याय — दर्शनशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

प्रो. दीपनारायण यादव — दर्शनशास्त्र विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

डॉ. अतुल कुमार मिश्र — असि. प्रोफेसर, मानविकी विद्याशाखा, उ.प्र.रा.ट.मु.वि.वि.,प्रयागराज

सम्पादक

डॉ. ममता सिंह — एसो. प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

परिमापक

डॉ. ममता सिंह — एसो. प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

लेखक

डॉ. अतुल कुमार मिश्र — असि. प्रोफेसर, मानविकी विद्याशाखा, उ.प्र.रा.ट.मु.वि.वि.,प्रयागराज

समन्वयक

डॉ. अतुल कुमार मिश्र — असि. प्रोफेसर, मानविकी विद्याशाखा, उ.प्र.रा.ट.मु.वि.वि.,प्रयागराज

मुद्रित– अप्रैल, 2025.

@उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज – 2025.

ISBN- 978-93-48987-76-1

सर्वाधिक सुरक्षित। इस पाठ्य सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से श्री विनय कुमार, कुलसचिव द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित, 2025.

मुद्रक – के0 सी0 प्रिटिंग एण्ड एलाइड वर्क्स, पंचवटी, मथुरा – 281003.

Uttar Pradesh Rajarshi Tandon
Open University

MAPH-114 (N)

समकालीन धार्मिक समस्याएं

खण्ड 1 धार्मिक बहुलवाद 3

इकाई-1 धार्मिक शुचिता 7

इकाई-2 प्रगतिशील दैवीप्रकाशना 15

इकाई-3 डक रैबिट भ्रम 23

इकाई-4 परिमार्जित तत्वमीमांसा 38

MAPH-114 (N)

समकालीन धार्मिक समस्याएं

खंड 01 – (धार्मिक बहुलवाद)

खंड परिचयः

धार्मिक बहुलवाद आधुनिक समाज का एक महत्वपूर्ण और जटिल पहलू है, जो विभिन्न धार्मिक विश्वासों और प्रथाओं के सह–अस्तित्व और परस्पर सम्मान की अवधारणा पर आधारित है। यह खंड धार्मिक बहुलवाद के विभिन्न आयामों का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है, जिसमें इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, दार्शनिक आधार, सामाजिक–राजनीतिक प्रभाव और वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में इसकी प्रासंगिकता शामिल है।

धार्मिक बहुलवाद की अवधारणा का विकास एक लंबी ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम है। प्राचीन काल से ही विभिन्न सभ्यताओं में धार्मिक विविधता का अस्तित्व रहा है, लेकिन आधुनिक अर्थों में धार्मिक बहुलवाद का विचार मुख्य रूप से प्रबोधन काल और उसके बाद के वैचारिक विकास का परिणाम है। अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोप में धार्मिक सहिष्णुता के विचारों ने इस अवधारणा को आकार दिया, जिसे बाद में बीसवीं शताब्दी के दार्शनिकों और समाजशास्त्रियों ने और विकसित किया।

दार्शनिक दृष्टिकोण से, धार्मिक बहुलवाद कई जटिल प्रश्न उठाता है। यह सत्य की प्रकृति, धार्मिक ज्ञान की सीमाओं और नैतिक मूल्यों के स्रोत जैसे मूलभूत दार्शनिक मुद्दों से जुड़ा हुआ है। जॉन हिक जैसे दार्शनिकों ने धार्मिक बहुलवाद के पक्ष में तर्क दिया है, यह सुझाव देते हुए कि विभिन्न धर्म एक ही परम सत्य के विभिन्न व्याख्याएँ हो सकते हैं। दूसरी ओर, एलवीन प्लैंटिंगा जैसे दार्शनिक धार्मिक विशिष्टतावाद का समर्थन करते हैं, जो एक विशेष धार्मिक परंपरा की सत्यता पर जोर देता है।

धार्मिक बहुलवाद का सामाजिक–राजनीतिक प्रभाव बहुत व्यापक है। यह राज्य और धर्म के बीच संबंधों, धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार और सार्वजनिक क्षेत्र में धर्म की भूमिका जैसे मुद्दों को प्रभावित करता है। आधुनिक लोकतांत्रिक समाजों में, धार्मिक बहुलवाद अक्सर धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत के साथ जुड़ा होता है, जो राज्य की तटस्थता और सभी धर्मों के प्रति समान व्यवहार की मांग करता है। हालांकि, इस संबंध की प्रकृति और सीमा विभिन्न देशों और संस्कृतियों में भिन्न हो सकती है।

भारतीय संदर्भ में धार्मिक बहुलवाद का एक विशेष महत्व है। भारत की सदियों पुरानी बहुधार्मिक परंपरा, जिसमें हिंदू, बौद्ध, जैन, सिख, इस्लाम, और ईसाई धर्म सहित कई धर्म शामिल हैं, धार्मिक बहुलवाद के एक जीवंत उदाहरण के रूप में देखी जाती है। भारतीय संविधान धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत को अपनाता है, जो सभी धर्मों के प्रति

समान सम्मान और धार्मिक स्वतंत्रता की गारंटी देता है। हालांकि, व्यवहार में धार्मिक बहुलवाद को लागू करना कभी–कभी चुनौतीपूर्ण हो सकता है, विशेष रूप से जब विभिन्न धार्मिक समुदायों के हित टकराते हैं।

वैश्वीकरण के युग में धार्मिक बहुलवाद की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो गई है। जैसे–जैसे विभिन्न संस्कृतियों और धर्मों के लोग एक–दूसरे के संपर्क में आते हैं, धार्मिक बहुलवाद अंतर–धार्मिक संवाद और सहयोग के लिए एक आधार प्रदान करता है। यह सांस्कृतिक विविधता को एक संपत्ति के रूप में देखने और विभिन्न धार्मिक परंपराओं से सीखने का अवसर प्रदान करता है। हालांकि, यह धार्मिक पहचान और विश्वासों के संरक्षण के साथ संतुलन बनाए रखने की चुनौती भी प्रस्तुत करता है।

धार्मिक बहुलवाद कई महत्वपूर्ण चुनौतियों का सामना करता है। एक प्रमुख चुनौती धार्मिक कट्टरता और अतिवाद है, जो अक्सर अन्य धर्मों के प्रति असहिष्णुता का कारण बनते हैं। इसके अलावा, कुछ आलोचक तर्क देते हैं कि धार्मिक बहुलवाद धार्मिक सत्य के दावों को कमजोर कर सकता है या सापेक्षवाद की ओर ले जा सकता है। एक अन्य चुनौती यह है कि कैसे धार्मिक स्वतंत्रता और समानता के सिद्धांतों को बनाए रखा जाए जब विभिन्न धार्मिक प्रथाएँ, मानवाधिकारों या समानता के आधुनिक मानकों के साथ टकराती हैं।

इस खंड में, हम इन विभिन्न पहलुओं का गहन विश्लेषण करेंगे। हम धार्मिक बहुलवाद के ऐतिहासिक विकास का अध्ययन करेंगे, इसके दार्शनिक आधारों की जांच करेंगे, और इसके सामाजिक–राजनीतिक प्रभावों पर विचार करेंगे। हम भारतीय संदर्भ में धार्मिक बहुलवाद की विशेष स्थिति का विश्लेषण करेंगे और वैश्विक स्तर पर इसकी प्रासंगिकता पर चर्चा करेंगे। इसके अलावा, हम धार्मिक बहुलवाद की चुनौतियों और आलोचनाओं पर भी ध्यान देंगे और इन चुनौतियों से निपटने के संभावित तरीकों पर विचार करेंगे।

यह खंड छात्रों को धार्मिक बहुलवाद की जटिलताओं को समझने में मदद करेगा और उन्हें इस महत्वपूर्ण विषय पर गहराई से सोचने के लिए प्रोत्साहित करेगा। यह उन्हें विभिन्न धार्मिक परंपराओं के बीच संवाद और समझ को बढ़ावा देने के महत्व को समझने में सक्षम बनाएगा, जो आज के बहुसांस्कृतिक और बहुधार्मिक समाज में एक महत्वपूर्ण कौशल है।

अंत में, यह खंड धार्मिक बहुलवाद के भविष्य पर भी विचार करेगा। जैसे–जैसे समाज और प्रौद्योगिकी विकसित होती है, धार्मिक बहुलवाद के सामने नई चुनौतियाँ और अवसर आ सकते हैं। उदाहरण के लिए, डिजिटल युग में धार्मिक विचारों और प्रथाओं का प्रसार कैसे होता है, या जलवायु परिवर्तन जैसे वैश्विक मुद्दों पर विभिन्न धार्मिक परंपराएँ कैसे एक साथ काम कर सकती हैं। इन विषयों पर चर्चा छात्रों को भविष्य की संभावनाओं और चुनौतियों के बारे में सोचने के लिए प्रेरित करेगी।

इस प्रकार, यह खंड धार्मिक बहुलवाद के विषय को व्यापक और गहन रूप से प्रस्तुत करता है, जो छात्रों को इस महत्वपूर्ण और प्रासंगिक विषय पर एक समग्र समझ प्रदान करेगा।

प्रस्तुत खंड में समकालीन धार्मिक समस्याएं पर गहनता से विचार–विमर्श हेतु इसे चार इकाईयों में विभाजित किया गया है–

इकाई 01 में धार्मिक शुचिता पर चिंतन किया गया है।

इकाई 02 में प्रगतिशील दैवीप्रकाशना पर चिंतन किया गया है।

इकाई 03 में डक रैबिट भ्रम पर चिंतन किया गया है।

वहीं, इकाई 04 में परिमार्जित तत्वमीमांसा पर चिंतन किया गया है।

----------0000----------

‘

इकाई 01

धार्मिक शुचिता

इकाई की रूपरेखाः

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 धार्मिक शुचिता की अवधारणाः एक परिचय

1.3 धार्मिक शुचिता का अर्थ

1.4 धार्मिक शुचिता की उत्पत्ति

1.4.1 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

1.4.2 विभिन्न धर्मों में नैतिक मूल्यों का महत्व

1.4.3 भारतीय दर्शन और परंपराओं का प्रभाव

1.5 धार्मिक शुचिता के मूल सिद्धांत

1.5.1 सत्य और अहिंसा

1.5.2 करुणा और दया

1.5.3 न्याय और समानता

1.5.4 आत्मसंयम और त्याग

1.6 धार्मिक शुचिता का व्यावहारिक महत्व

1.6.1 व्यक्तिगत जीवन में

1.6.2 सामाजिक संदर्भ में

1.6.3 वैश्विक शांति और सद्भाव में योगदान

1.7 धार्मिक शुचिता की चुनौतियाँ और आलोचनाएँ

1.8 निष्कर्ष

1.9 सारांश

1.10 प्रश्न बोध

1.11 उपयोगी पुस्तकें

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य छात्रों को धार्मिक सूचिता की अवधारणा से परिचित कराना है। यह अध्याय छात्रों को धार्मिक नैतिकता के महत्व और उसके व्यावहारिक प्रभावों को समझने में मदद करेगा। इसके माध्यम से, विद्यार्थी विभिन्न धर्मों में निहित नैतिक मूल्यों की समानताओं और विविधताओं को पहचान सकेंगे। साथ ही, वे धार्मिक शुचिता के ऐतिहासिक विकास और उसके वर्तमान प्रासंगिकता को समझ पाएंगे। यह अध्याय छात्रों को यह भी सिखाएगा कि कैसे धार्मिक नैतिकता व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में लागू होती है, और वैश्विक शांति में इसकी भूमिका क्या है। अंत में, छात्र धार्मिक शुचिता की चुनौतियों और आलोचनाओं पर भी विचार करेंगे, जो उन्हें इस विषय पर गहराई से सोचने और अपने स्वयं के विचार विकसित करने में मदद करेगा। इस प्रकार, यह अध्याय छात्रों को एक व्यापक और संतुलित दृष्टिकोण प्रदान करेगा, जो उन्हें भविष्य में नैतिक निर्णय लेने में सहायक होगा।

1.1 प्रस्तावना

धार्मिक शुचिता एक ऐसी अवधारणा है जो मानव जीवन के नैतिक पहलुओं को धार्मिक दृष्टिकोण से समझने और उनका पालन करने पर केंद्रित है। यह प्रस्तावना इस विषय के महत्व और प्रासंगिकता को रेखांकित करती है। आज के वैश्वीकृत और बहुसांस्कृतिक समाज में, जहाँ विभिन्न धर्मों और संस्कृतियों के लोग एक साथ रहते हैं, धार्मिक सूचिता की समझ अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। यह न केवल व्यक्तिगत नैतिक विकास में सहायक है, बल्कि सामाजिक सद्भाव और वैश्विक शांति को बढ़ावा देने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस अध्याय में, हम धार्मिक शुचिता के विभिन्न पहलुओं का गहन अध्ययन करेंगे, जिसमें इसकी परिभाषा, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, मूल सिद्धांत, और व्यावहारिक अनुप्रयोग शामिल हैं। साथ ही, हम इस विषय से जुड़ी चुनौतियों और आलोचनाओं पर भी विचार करेंगे, जो छात्रों को एक संतुलित दृष्टिकोण विकसित करने में मदद करेगा। इस प्रकार, यह अध्याय छात्रों को धार्मिक सूचिता के क्षेत्र में एक व्यापक और गहन समझ प्रदान करेगा।

1.2 धार्मिक शुचिता की अवधारणाः एक परिचय

धार्मिक शुचिता की अवधारणा धर्म और नैतिकता के संगम पर आधारित है। यह एक ऐसा दृष्टिकोण है, जो मानव व्यवहार और निर्णयों को धार्मिक मूल्यों और सिद्धांतों के आधार पर निर्देशित करता है। इस अवधारणा का मूल विचार यह है कि धर्म केवल आस्था या अनुष्ठान तक सीमित नहीं है, बल्कि यह जीवन के हर पहलू में नैतिक मार्गदर्शन प्रदान करता है। धार्मिक शुचिता विभिन्न धर्मों में पाए जाने वाले सार्वभौमिक नैतिक मूल्यों पर जोर देती है, जैसे सत्य, अहिंसा, करुणा, न्याय, और समानता। यह अवधारणा व्यक्ति को अपने दैनिक जीवन में इन मूल्यों को अपनाने और उनके अनुसार जीने के लिए प्रेरित करती है। धार्मिक शुचिता का महत्व इस बात में निहित है कि यह व्यक्तिगत नैतिक विकास के साथ–साथ सामाजिक सद्भाव और वैश्विक शांति को बढ़ावा देती है। यह अवधारणा

विभिन्न धर्मों और संस्कृतियों के बीच समानताओं पर ध्यान केंद्रित करके, एक अधिक सहिष्णु और समावेशी समाज के निर्माण में योगदान देती है।

1.3 धार्मिक शुचिता का अर्थ

धार्मिक शुचिता का अर्थ धार्मिक शिक्षाओं और मूल्यों के आधार पर नैतिक जागरूकता और व्यवहार से है। यह एक ऐसी अवधारणा है जो व्यक्ति को अपने धार्मिक विश्वासों के अनुरूप नैतिक निर्णय लेने और कार्य करने के लिए प्रेरित करती है। धार्मिक शुचिता का अर्थ केवल धार्मिक नियमों का अंधानुकरण नहीं है, बल्कि उन नियमों के पीछे के मूल सिद्धांतों को समझना और उन्हें दैनिक जीवन में लागू करना है। यह अवधारणा व्यक्ति को अपने कर्मों के प्रति जागरूक और जिम्मेदार बनाती है, यह सिखाती है कि हमारे हर कार्य का न केवल व्यक्तिगत बल्कि सामाजिक प्रभाव भी होता है। धार्मिक शुचिता का अर्थ विभिन्न धर्मों में पाए जाने वाले सार्वभौमिक मूल्यों जैसे प्रेम, करुणा, न्याय, और सत्य को अपनाना है। यह एक ऐसा दृष्टिकोण है जो व्यक्ति को अपने आध्यात्मिक विकास के साथ–साथ समाज के कल्याण के लिए भी काम करने के लिए प्रेरित करता है। इस प्रकार, धार्मिक शुचिता का अर्थ एक ऐसे जीवन शैली से है जो धार्मिक मूल्यों और नैतिक सिद्धांतों पर आधारित हो।

1.4 धार्मिक शुचिता की उत्पत्ति

धार्मिक शुचिता की उत्पत्ति मानव सभ्यता के प्रारंभिक चरणों में ही देखी जा सकती है। जब से मनुष्य ने अपने अस्तित्व और जगत के बारे में सोचना शुरू किया, तब से ही उसने नैतिक मूल्यों और धार्मिक विश्वासों को एक साथ जोड़कर देखा। प्राचीन सभ्यताओं में, धर्म और नैतिकता अक्सर एक दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े हुए थे। उदाहरण के लिए, प्राचीन मिस्र में मा'अत की अवधारणा, जो सत्य, न्याय और नैतिक व्यवस्था का प्रतीक थी, धार्मिक शुचिता का एक प्रारंभिक रूप था। भारतीय उपमहाद्वीप में, वेदों और उपनिषदों में नैतिक शिक्षाएँ धार्मिक दर्शन का अभिन्न अंग थीं। इसी तरह, यूनानी दार्शनिकों ने भी नैतिकता और धर्म के बीच के संबंध पर गहन चिंतन किया। मध्यकाल में, विभिन्न धर्मों के धर्मगुरुओं और संतों ने धार्मिक सूचिता के विचारों को और अधिक विकसित किया। आधुनिक युग में, धार्मिक सूचिता की अवधारणा ने एक अधिक वैश्विक और समावेशी रूप ले लिया है, जो विभिन्न धर्मों के बीच समानताओं पर जोर देती है और सार्वभौमिक नैतिक मूल्यों की पहचान करती है।

1.4.1 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

धार्मिक सूचिता की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि विभिन्न सभ्यताओं और काल खंडों में फैली हुई है। प्राचीन मेसोपोटामिया में, हम्मुराबी की संहिता धार्मिक और नैतिक नियमों का एक प्रारंभिक उदाहरण थी। प्राचीन मिस्र में, फरओंस को देवताओं का प्रतिनिधि माना जाता था और उनका कर्तव्य था कि वे मा'अत (सत्य और न्याय) के सिद्धांतों को बनाए रखें। भारत में, वेदों और उपनिषदों में धर्म और नैतिकता के बीच गहरा संबंध दिखाई देता है।

बौद्ध धर्म के उदय ने अहिंसा और करुणा जैसे मूल्यों पर जोर दिया। यूनान में, सुकरात, प्लेटो और अरस्तू जैसे दार्शनिकों ने नैतिकता और धर्म के संबंध पर गहन चिंतन किया। रोमन साम्राज्य में, स्टोइक दर्शन ने व्यक्तिगत नैतिकता और सार्वभौमिक नियम पर जोर दिया। मध्यकाल में, ईसाई धर्म और इस्लाम ने अपने–अपने नैतिक सिद्धांतों को विकसित किया। रेनेसां और प्रबोधन काल में, धार्मिक शुचिता पर नए सिरे से विचार किया गया, जिसमें मानवतावाद और तर्कसंगतता के विचारों को शामिल किया गया। आधुनिक युग में, धार्मिक शुचिता की अवधारणा ने एक अधिक वैश्विक और समावेशी रूप ले लिया है।

1.4.2 विभिन्न धर्मों में नैतिक मूल्यों का महत्व

विभिन्न धर्मों में नैतिक मूल्यों का महत्व एक केंद्रीय और सार्वभौमिक तत्व है, जो धार्मिक शुचिता की नींव रखता है। प्रत्येक धर्म अपने अनुयायियों को जीवन जीने के लिए एक नैतिक ढांचा प्रदान करता है, जो व्यक्तिगत और सामूहिक कल्याण को बढ़ावा देता है। इन नैतिक मूल्यों की व्याख्या और अभिव्यक्ति में भले ही कुछ भिन्नताएँ हों, परंतु उनका मूल उद्देश्य समान है – मानवता का उत्थान और एक सद्गुणी जीवन की प्राप्ति।

हिंदू धर्म में धर्म (कर्तव्य) और कर्म (कार्य) के सिद्धांत, बौद्ध धर्म में अष्टांगिक मार्ग, जैन धर्म में अहिंसा का सर्वोच्च स्थान, यहूदी और ईसाई धर्म में दस आज्ञाएँ, इस्लाम में शरीयत के नियम – ये सभी अपने–अपने तरीके से नैतिक जीवन का मार्गदर्शन करते हैं। इन धार्मिक शिक्षाओं में सत्य, करुणा, न्याय, सेवा, और आत्मसंयम जैसे मूल्य सामान्य रूप से पाए जाते हैं।

ये नैतिक मूल्य न केवल व्यक्तिगत आचरण को नियंत्रित करते हैं, बल्कि समाज के संचालन के लिए भी एक आधार प्रदान करते हैं। वे समुदायों को एकजुट करते हैं, सामाजिक सद्भाव को बढ़ावा देते हैं, और मानवीय संबंधों को मजबूत बनाते हैं। इस प्रकार, विभिन्न धर्मों में नैतिक मूल्यों का महत्व धार्मिक शुचिता के व्यापक संदर्भ में एक महत्वपूर्ण और अपरिहार्य तत्व बन जाता है।

1.4.3 भारतीय दर्शन और परंपराओं का प्रभाव

भारतीय दर्शन और परंपराओं ने धार्मिक शुचिता की अवधारणा को गहराई से प्रभावित किया है। वेदों और उपनिषदों में 'ऋत' की अवधारणा, जो सार्वभौमिक नैतिक व्यवस्था को दर्शाती है, धार्मिक शुचिता का एक प्रारंभिक रूप है। भगवद्गीता में कर्मयोग का सिद्धांत, जो निःस्वार्थ कर्म पर जोर देता है, नैतिक जीवन का एक मार्गदर्शक है। बौद्ध धर्म में पंचशील और अष्टांगिक मार्ग, जैन धर्म में अहिंसा का सिद्धांत, और सिख धर्म में सेवा का महत्व, सभी धार्मिक सूचिता के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। आधुनिक काल में, स्वामी विवेकानंद के सार्वभौमिक धर्म के विचार और महात्मा गांधी के सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों ने धार्मिक शुचिता को एक नया आयाम दिया है। इन भारतीय विचारों ने न केवल भारत में बल्कि विश्व स्तर पर भी धार्मिक शुचिता की समझ को प्रभावित किया है।

1.5 धार्मिक शुचिता के मूल सिद्धांत

धार्मिक शुचिता के मूल सिद्धांत विभिन्न धर्मों में पाए जाने वाले सार्वभौमिक नैतिक मूल्यों पर आधारित हैं। इनमें प्रमुख हैंः

1. सत्य और ईमानदारीः सभी धर्म सत्य बोलने और ईमानदारी से जीवन जीने पर जोर देते हैं।
2. अहिंसाः किसी भी प्राणी को हानि न पहुंचाना एक मूलभूत सिद्धांत है।
3. करुणा और दयाः दूसरों के प्रति सहानुभूति और दयालु व्यवहार का महत्व।
4. न्याय और समानताः सभी के साथ निष्पक्ष और समान व्यवहार करना।
5. सेवा और परोपकारः समाज और दूसरों की सेवा करना।
6. क्षमाः दूसरों की गलतियों को माफ करने की क्षमता।
7. आत्मसंयमः अपनी इच्छाओं और व्यवहार पर नियंत्रण रखना।
8. आध्यात्मिक विकासः आत्मज्ञान और आध्यात्मिक उन्नति के लिए प्रयास करना।

ये सिद्धांत व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में नैतिक मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

1.6 धार्मिक शुचिता का व्यावहारिक महत्व

धार्मिक सूचिता का व्यावहारिक महत्व व्यक्तिगत, सामाजिक और वैश्विक स्तर पर देखा जा सकता है।

व्यक्तिगत स्तर परः

1. नैतिक निर्णय लेने में मदद करती है।
2. आत्म–अनुशासन और चरित्र निर्माण में सहायक है।
3. जीवन के उद्देश्य और अर्थ की खोज में मार्गदर्शन करती है।

सामाजिक स्तर परः

1. सामाजिक सद्भाव और एकता को बढ़ावा देती है।
2. न्याय और समानता के मूल्यों को प्रोत्साहित करती है।
3. समुदाय में सहयोग और सेवा की भावना को बढ़ाती है।

वैश्विक स्तर पर :

1. विभिन्न संस्कृतियों और धर्मों के बीच समझ और सहिष्णुता को बढ़ावा देती है।
2. वैश्विक शांति और सहयोग के लिए एक आधार प्रदान करती है।
3. मानवाधिकारों और पर्यावरण संरक्षण जैसे वैश्विक मुद्दों पर सकारात्मक प्रभाव डालती है।

इस प्रकार, धार्मिक शुचिता एक ऐसा उपकरण है जो व्यक्तिगत विकास से लेकर वैश्विक चुनौतियों के समाधान तक में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

1.7 धार्मिक शुचिता की चुनौतियाँ और आलोचनाएँ

धार्मिक शुचिता, अपने महत्व के बावजूद, कुछ चुनौतियों और आलोचनाओं का सामना करती हैः

1. धार्मिक विविधताः विभिन्न धर्मों में नैतिक मूल्यों की व्याख्या में अंतर हो सकता है, जो सार्वभौमिक नैतिक मानकों के निर्धारण में चुनौती पेश करता है।
2. धर्मनिरपेक्षता का मुद्दाः कुछ आलोचक मानते हैं कि नैतिकता को धर्म से अलग रखा जाना चाहिए।
3. वैज्ञानिक दृष्टिकोणः कुछ लोग तर्क देते हैं कि नैतिक निर्णय वैज्ञानिक और तार्किक आधार पर लिए जाने चाहिए, न कि धार्मिक मान्यताओं पर।
4. व्याख्या की समस्याः धार्मिक ग्रंथों की विभिन्न व्याख्याएँ नैतिक दुविधाओं को जन्म दे सकती हैं।
5. आधुनिक समस्याओं का समाधानः प्राचीन धार्मिक शिक्षाएँ आधुनिक जटिल नैतिक मुद्दों का समाधान प्रदान करने में अपर्याप्त हो सकती हैं।
6. धार्मिक कट्टरताः कभी–कभी धार्मिक सूचिता का दुरुपयोग असहिष्णुता या कट्टरता को बढ़ावा देने के लिए किया जा सकता है।

इन चुनौतियों के बावजूद, धार्मिक शुचिता का महत्व बना हुआ है, और इन मुद्दों पर निरंतर संवाद और चिंतन आवश्यक है।

1.8 निष्कर्ष

धार्मिक शुचिता एक बहुआयामी अवधारणा है जो धर्म और नैतिकता के संगम पर स्थित है। यह व्यक्तिगत, सामाजिक और वैश्विक स्तर पर महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसकी उत्पत्ति प्राचीन सभ्यताओं में देखी जा सकती है और यह विभिन्न धर्मों और दर्शनों से प्रभावित होकर विकसित हुई है। धार्मिक शुचिता के मूल सिद्धांत जैसे सत्य, अहिंसा, करुणा, और न्याय सार्वभौमिक मूल्य हैं जो विभिन्न धर्मों में पाए जाते हैं। इसका व्यावहारिक महत्व व्यक्तिगत नैतिक विकास से लेकर वैश्विक शांति और सहयोग तक फैला हुआ है। हालांकि, धार्मिक शुचिता कुछ चुनौतियों और आलोचनाओं का भी सामना करती है, जैसे धार्मिक विविधता के कारण उत्पन्न जटिलताएँ और धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण

के साथ संघर्ष। फिर भी, इन चुनौतियों के बावजूद, धार्मिक सूचिता का महत्व बना हुआ है। यह एक ऐसा उपकरण है जो व्यक्तियों और समाजों को नैतिक मार्गदर्शन प्रदान करता है और विभिन्न संस्कृतियों के बीच समझ और सहिष्णुता को बढ़ावा देता है। अंत में, धार्मिक शुचिता की समझ और अभ्यास एक ऐसे विश्व के निर्माण में योगदान दे सकते हैं जो अधिक न्यायसंगत, शांतिपूर्ण और सहिष्णु हो।

1.9 सारांश

इस अध्याय में हमने धार्मिक शुचिता के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया। हमने देखा कि धार्मिक शुचिता धर्म और नैतिकता के संगम पर आधारित एक अवधारणा है, जो व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में नैतिक मार्गदर्शन प्रदान करती है। इसकी उत्पत्ति प्राचीन सभ्यताओं में देखी जा सकती है और यह विभिन्न धर्मों और दर्शनों से प्रभावित होकर विकसित हुई है। भारतीय दर्शन और परंपराओं ने इसके विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

धार्मिक शुचिता के मूल सिद्धांतों में सत्य, अहिंसा, करुणा, न्याय, और सेवा जैसे सार्वभौमिक मूल्य शामिल हैं। इसका व्यावहारिक महत्व व्यक्तिगत नैतिक विकास, सामाजिक सद्भाव, और वैश्विक शांति में देखा जा सकता है। हालांकि, धार्मिक सूचिता कुछ चुनौतियों का भी सामना करती है, जैसे धार्मिक विविधता के कारण उत्पन्न जटिलताएँ और धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण के साथ संघर्ष। फिर भी, इसका महत्व बना हुआ है क्योंकि यह एक ऐसा उपकरण है जो व्यक्तियों और समाजों को नैतिक मार्गदर्शन प्रदान करता है और विभिन्न संस्कृतियों के बीच समझ और सहिष्णुता को बढ़ावा देता है।

1.10 प्रश्न बोध

निम्नलिखित प्रश्नों पर विचार करें और अपने उत्तरों को लिखें:

1. धार्मिक शुचिता की परिभाषा दें और इसके महत्व पर प्रकाश डालें।
2. धार्मिक शुचिता की उत्पत्ति और विकास पर एक संक्षिप्त नोट लिखें।
3. भारतीय दर्शन और परंपराओं ने धार्मिक शुचिता को कैसे प्रभावित किया है? उदाहरण सहित समझाएं।
4. धार्मिक शुचिता के मुख्य सिद्धांतों की व्याख्या करें और बताएं कि ये कैसे विभिन्न धर्मों में समान रूप से पाए जाते हैं।
5. धार्मिक शुचिता का व्यावहारिक महत्व क्या है? व्यक्तिगत और सामाजिक स्तर पर इसके प्रभावों की चर्चा करें।
6. धार्मिक शुचिता की प्रमुख चुनौतियों और आलोचनाओं का वर्णन करें। आप इन चुनौतियों का समाधान कैसे करेंगे?
7. क्या आप मानते हैं कि आधुनिक समाज में धार्मिक शुचिता प्रासंगिक है? अपने उत्तर के पक्ष में तर्क दें।

8. एक ऐसी स्थिति का वर्णन करें जहां आपने अपने जीवन में धार्मिक शुचिता के सिद्धांतों को लागू किया हो। इसने आपके निर्णय को कैसे प्रभावित किया?
9. धार्मिक शुचिता और धर्मनिरपेक्ष नैतिकता के बीच संबंध पर अपने विचार व्यक्त करें। क्या ये परस्पर विरोधी हैं या एक–दूसरे के पूरक?
10. विभिन्न धर्मों में पाई जाने वाली नैतिक शिक्षाओं की तुलना करें और उनमें समानताएं और अंतर बताएं।

1.11 उपयोगी पुस्तकें

निम्नलिखित पुस्तकें धार्मिक शुचिता के विषय पर गहन समझ विकसित करने में सहायक हो सकती हैं:

1. आनंद, सुभाष. "धर्म और नैतिकताः एक विश्लेषण." नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, 2020.
2. चोपड़ा, दीपक. "द फ्यूचर ऑफ़ गॉडः ए प्रैक्टिकल अप्रोच टू स्पिरिचुअलिटी फॉर अवर टाइम्स." न्यूयॉर्कः हार्मनी बुक्स, 2014.
3. दलाई लामा और हॉवर्ड सी. कटलर. "द आर्ट ऑफ़ हैप्पीनेसः ए हैंडबुक फॉर लिविंग." न्यूयॉर्कः रिवरहेड बुक्स, 2009.
4. गांधी, मोहनदास करमचंद. "सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा." अहमदाबादः नवजीवन प्रकाशन मंदिर, 2019.
5. हिक, जॉन. "एन इंटरप्रिटेशन ऑफ़ रिलिजनः ह्यूमन रिस्पॉन्सेस टू द ट्रांसेंडेंट." येल यूनिवर्सिटी प्रेस, 2004.
6. कुंग, हंस. "ग्लोबल रेस्पॉन्सिबिलिटीः इन सर्च ऑफ़ ए न्यू वर्ल्ड एथिक." न्यूयॉर्कः कॉन्टिन्युम, 1993.
7. नारायण, आर.के. "द इंडियन वे ऑफ़ थिंकिंग." नई दिल्लीः पेंगुइन बुक्स, 2016.
8. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली. "ईस्टर्न रिलिजन्स एंड वेस्टर्न थॉट." ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1989.
9. शर्मा, अरविंद. "हिन्दुइज्म फॉर आवर टाइम्स." नई दिल्लीः ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2019.
10. विवेकानंद, स्वामी. "कर्मयोग." कोलकाताः अद्वैत आश्रम, 2015.

इकाई 02

प्रगतिशील दैवीप्रकाशना

इकाई की रूपरेखाः

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 दैवीप्रकाशन की अवधारणाः एक परिचय

2.3 दैवीप्रकाशन का अर्थ और महत्व

2.4 दैवीप्रकाशन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

2.4.1 प्राचीन भारतीय दर्शन में दैवीप्रकाशन

2.4.2 पाश्चात्य दर्शन में दैवीप्रकाशन की अवधारणा

2.4.3 आधुनिक भारतीय चिंतन में दैवीप्रकाशन

2.5 प्रगतिशील दैवीप्रकाशन के मूल सिद्धांत

2.5.1 मानवीय चेतना और दैवीय ज्ञान का संबंध

2.5.2 सामाजिक न्याय और दैवीप्रकाशन

2.5.3 वैज्ञानिक प्रगति और आध्यात्मिक उन्नति का समन्वय

2.6 प्रगतिशील दैवीप्रकाशन के समकालीन परिप्रेक्ष्य

2.6.1 वैश्वीकरण के युग में दैवीप्रकाशन की प्रासंगिकता

2.6.2 पर्यावरण संरक्षण और दैवीप्रकाशन

2.6.3 तकनीकी विकास और आध्यात्मिक मूल्यों का संतुलन

2.7 निष्कर्ष

2.8 सारांश

2.9 चिंतन के लिए प्रश्न

2.10 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

2.11 उपयोगी पुस्तकें

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य छात्रों को प्रगतिशील दैवीप्रकाशन की अवधारणा से परिचित कराना है। यह अध्याय विद्यार्थियों को इस विचार के ऐतिहासिक विकास, मूल सिद्धांतों और समकालीन महत्व को समझने में मदद करेगा। इसका लक्ष्य है कि छात्र आध्यात्मिक ज्ञान और वैज्ञानिक प्रगति के बीच संतुलन की आवश्यकता को समझें और यह जानें कि कैसे यह दृष्टिकोण वर्तमान वैश्विक चुनौतियों के समाधान में योगदान दे सकता है। अंततः, यह इकाई छात्रों को इस विषय पर गहराई से चिंतन करने और अपने स्वयं के विचारों को विकसित करने के लिए प्रोत्साहित करेगी।

2.1 प्रस्तावना

प्रगतिशील दैवीप्रकाशन एक ऐसी अवधारणा है जो आध्यात्मिक ज्ञान और वैज्ञानिक प्रगति के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करती है। यह विचार मानव जाति के समग्र विकास पर केंद्रित है, जहाँ भौतिक उन्नति और आध्यात्मिक उत्थान एक–दूसरे के पूरक हैं। इस अध्याय में, हम इस अवधारणा की गहराई से पड़ताल करेंगे, इसके ऐतिहासिक विकास को समझेंगे, और इसके वर्तमान महत्व पर विचार करेंगे। प्रगतिशील दैवीप्रकाशन न केवल एक दार्शनिक विचार है, बल्कि एक ऐसा दृष्टिकोण भी है जो समाज और व्यक्ति के सर्वांगीण विकास को प्रोत्साहित करता है। यह प्रस्तावना छात्रों को इस विषय की जटिलताओं और इसके व्यापक प्रभावों के बारे में सोचने के लिए तैयार करेगी।

2.2 दैवीप्रकाशन की अवधारणाः एक परिचय

दैवीप्रकाशन की अवधारणा उस ज्ञान या अंतर्दृष्टि को संदर्भित करती है जो मानव को किसी उच्च शक्ति या दैवीय स्रोत से प्राप्त होती है। यह विचार कई धार्मिक और दार्शनिक परंपराओं में पाया जाता है, जहाँ यह माना जाता है कि मनुष्य को कुछ सत्य या ज्ञान ऐसे स्रोतों से मिलता है जो उसकी सामान्य बुद्धि से परे हैं। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक समय तक, दैवीप्रकाशन की अवधारणा ने मानव चिंतन और विश्वास प्रणालियों को गहराई से प्रभावित किया है। यह अवधारणा अक्सर आध्यात्मिक अनुभवों, धार्मिक ग्रंथों, या गहन आंतरिक ज्ञान से जुड़ी होती है। हालाँकि, आधुनिक संदर्भ में, इसकी व्याख्या और अनुप्रयोग में काफी विविधता देखी जा सकती है, जो इसे एक जटिल और बहुआयामी विषय बनाती है।

2.3 दैवीप्रकाशन का अर्थ और महत्व

दैवीप्रकाशन का अर्थ उस ज्ञान या समझ से है जो मानव को उसकी सामान्य बुद्धि या अनुभव से परे किसी उच्च स्रोत से प्राप्त होता है। यह अवधारणा विभिन्न धार्मिक और दार्शनिक परंपराओं में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। दैवीप्रकाशन का महत्व इस विश्वास में निहित है कि मनुष्य अपने सीमित ज्ञान और अनुभव से परे की सच्चाइयों को

समझ सकता है। यह अवधारणा मानव जीवन के गहन प्रश्नों के उत्तर खोजने में सहायक होती है, जैसे जीवन का उद्देश्य, नैतिकता का आधार, और ब्रह्मांड की प्रकृति। दैवीप्रकाशन व्यक्तिगत और सामूहिक स्तर पर मार्गदर्शन प्रदान करता है, जो लोगों को अपने जीवन और समाज को बेहतर बनाने की प्रेरणा देता है। यह अवधारणा आध्यात्मिक विकास और नैतिक मूल्यों के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

2.4 दैवीप्रकाशन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

दैवीप्रकाशन की अवधारणा का इतिहास उतना ही पुराना है जितना मानव सभ्यता का। प्राचीन काल से ही, विभिन्न संस्कृतियों में इस विचार के प्रमाण मिलते हैं। प्राचीन मिस्र, मेसोपोटामिया, और भारत जैसी सभ्यताओं में दैवीय संदेशों और प्रकाशनों का उल्लेख मिलता है। धार्मिक ग्रंथों जैसे वेद, बाइबल, और कुरान में दैवीप्रकाशन की अवधारणा केंद्रीय स्थान रखती है। मध्यकाल में, दार्शनिकों और धर्मशास्त्रियों ने इस विषय पर गहन चिंतन किया। आधुनिक काल में, दैवीप्रकाशन की व्याख्या में वैज्ञानिक दृष्टिकोण और तर्कसंगतता का समावेश हुआ है। यह ऐतिहासिक विकास दर्शाता है कि दैवीप्रकाशन की अवधारणा समय के साथ कैसे विकसित और परिवर्तित हुई है, जो इसे एक गतिशील और जीवंत विचार बनाती है।

2.4.1 प्राचीन भारतीय दर्शन में दैवीप्रकाशन

प्राचीन भारतीय दर्शन में दैवीप्रकाशन की अवधारणा गहराई से जड़ी हुई है। वैदिक काल से ही, ऋषियों और मुनियों द्वारा प्राप्त दिव्य ज्ञान को महत्वपूर्ण माना जाता था। वेदों को अपौरुषेय, यानी मानव निर्मित नहीं बल्कि दैवीय प्रकाशन माना जाता है। उपनिषदों में आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान की अवधारणाएँ दैवीप्रकाशन के उदाहरण हैं। भगवद्गीता में कृष्ण द्वारा अर्जुन को दिया गया ज्ञान भी दैवीप्रकाशन का एक प्रमुख उदाहरण है। बौद्ध धर्म में बुद्ध की बोधि (ज्ञानोदय) और जैन धर्म में महावीर की केवलज्ञान प्राप्ति भी दैवीप्रकाशन के रूप में देखी जा सकती हैं। इस प्रकार, प्राचीन भारतीय दर्शन में दैवीप्रकाशन विभिन्न रूपों में प्रकट होता है, जो आध्यात्मिक उन्नति और आत्मज्ञान पर केंद्रित है।

2.4.2 पाश्चात्य दर्शन में दैवीप्रकाशन की अवधारणा

पाश्चात्य दर्शन में दैवीप्रकाशन की अवधारणा का विकास यूनानी और रोमन दार्शनिक परंपराओं से होता हुआ ईसाई धर्म तक पहुंचा। प्लेटो के 'आइडियाज़ के सिद्धांत' में दिव्य सत्य की झलक दिखाई देती है। मध्यकालीन ईसाई दर्शन में, सेंट ऑगस्टीन और थॉमस एक्विनास जैसे दार्शनिकों ने दैवीप्रकाशन को ईश्वरीय ज्ञान के रूप में परिभाषित किया। प्रबोधन काल में, दैवीप्रकाशन की अवधारणा को तर्क और विज्ञान के साथ संतुलित करने का प्रयास किया गया। कांट जैसे दार्शनिकों ने नैतिकता के आधार के रूप में दैवीप्रकाशन पर विचार किया। आधुनिक पाश्चात्य दर्शन में, दैवीप्रकाशन की व्याख्या अधिक व्यापक और समावेशी हो गई है, जो केवल धार्मिक अनुभवों तक सीमित नहीं रही।

2.4.3 आधुनिक काल में दैवीप्रकाशन की व्याख्या

आधुनिक काल में दैवीप्रकाशन की व्याख्या में महत्वपूर्ण बदलाव आए हैं। वैज्ञानिक प्रगति और तार्किक चिंतन के प्रभाव में, दैवीप्रकाशन को अधिक व्यापक और समावेशी तरीके से देखा जाने लगा है। कई आधुनिक विचारक दैवीप्रकाशन को केवल धार्मिक अनुभव तक सीमित नहीं मानते, बल्कि इसे मानवीय अंतर्ज्ञान, वैज्ञानिक खोजों, और रचनात्मक प्रेरणा के रूप में भी देखते हैं। मनोविज्ञान के क्षेत्र में, कार्ल युंग जैसे मनोवैज्ञानिकों ने सामूहिक अचेतन की अवधारणा प्रस्तुत की, जो दैवीप्रकाशन के एक प्रकार के रूप में देखी जा सकती है। आधुनिक दर्शन में, दैवीप्रकाशन को अक्सर व्यक्तिगत अनुभव और सार्वभौमिक सत्य के मिश्रण के रूप में देखा जाता है। यह नया दृष्टिकोण दैवीप्रकाशन को अधिक समावेशी और वैज्ञानिक दृष्टि से स्वीकार्य बनाता है।

2.5 प्रगतिशील दैवीप्रकाशन के मूल सिद्धांत

प्रगतिशील दैवीप्रकाशन एक ऐसी अवधारणा है जो परंपरागत दैवीप्रकाशन के विचारों को आधुनिक संदर्भ में पुनर्व्याख्यायित करती है। इसके मूल सिद्धांत निम्नलिखित हैं:

1. समन्वयः यह आध्यात्मिक ज्ञान और वैज्ञानिक प्रगति के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करता है।
2. समावेशिताः यह विभिन्न धर्मों और दर्शनों के विचारों को समाहित करता है।
3. प्रगतिशीलताः यह मानता है कि ज्ञान और समझ समय के साथ विकसित होते हैं।
4. व्यावहारिकताः यह सैद्धांतिक ज्ञान को व्यावहारिक जीवन में लागू करने पर जोर देता है।
5. नैतिकताः यह व्यक्तिगत और सामाजिक नैतिकता के विकास को महत्व देता है।
6. सार्वभौमिकताः यह मानता है कि कुछ मूलभूत सत्य सभी मनुष्यों के लिए समान हैं।

ये सिद्धांत प्रगतिशील दैवीप्रकाशन को एक समग्र और समकालीन दृष्टिकोण प्रदान करते हैं।

2.5.1 आध्यात्मिक उन्नति और वैज्ञानिक प्रगति का समन्वय

प्रगतिशील दैवीप्रकाशन का एक प्रमुख सिद्धांत आध्यात्मिक उन्नति और वैज्ञानिक प्रगति के बीच सामंजस्य स्थापित करना है। यह दृष्टिकोण मानता है कि आध्यात्मिक ज्ञान और वैज्ञानिक खोजें एक–दूसरे के विरोधी नहीं हैं, बल्कि एक–दूसरे के पूरक हो सकते हैं। इस सिद्धांत के अनुसार, आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि वैज्ञानिक अन्वेषण को प्रेरित कर सकती है, जबकि वैज्ञानिक खोजें आध्यात्मिक समझ को गहरा कर सकती हैं। उदाहरण के लिए, ध्यान के आध्यात्मिक अभ्यास का न्यूरोसाइंस में अध्ययन इस समन्वय का एक उदाहरण है। यह दृष्टिकोण मानव ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों के बीच सेतु बनाने का प्रयास करता है, जिससे एक समग्र समझ विकसित हो सके।

2.5.2 मानवीय मूल्यों और प्राकृतिक नियमों का संतुलन

प्रगतिशील दैवीप्रकाशन मानवीय मूल्यों और प्राकृतिक नियमों के बीच संतुलन स्थापित करने पर जोर देता है। यह सिद्धांत मानता है कि प्रकृति के नियम और मानवीय नैतिकता एक–दूसरे से अलग नहीं हैं। इसके अनुसार, प्राकृतिक नियमों की समझ हमें बेहतर नैतिक निर्णय लेने में मदद कर सकती है, जबकि मानवीय मूल्य हमें प्रकृति के

साथ सामंजस्यपूर्ण रहने की प्रेरणा दे सकते हैं। उदाहरण के लिए, पर्यावरण संरक्षण को एक नैतिक जिम्मेदारी के रूप में देखना इस संतुलन का प्रतीक है। यह दृष्टिकोण विज्ञान और नैतिकता को एकीकृत करने का प्रयास करता है, जिससे एक ऐसा दृष्टिकोण विकसित हो सके जो तकनीकी प्रगति और मानवीय कल्याण दोनों को समान महत्व देता है।

2.5.3 सामाजिक न्याय और व्यक्तिगत विकास का सह–अस्तित्व

प्रगतिशील दैवीप्रकाशन सामाजिक न्याय और व्यक्तिगत विकास के बीच सामंजस्य स्थापित करने पर बल देता है। यह सिद्धांत मानता है कि व्यक्तिगत आध्यात्मिक विकास और सामाजिक कल्याण परस्पर जुड़े हुए हैं। इसके अनुसार, व्यक्तिगत चेतना का विकास सामाजिक परिवर्तन का आधार बन सकता है, जबकि न्यायपूर्ण समाज व्यक्तिगत विकास को प्रोत्साहित करता है। उदाहरण के लिए, गांधीजी का 'सर्वोदय' का विचार इस सिद्धांत का एक उत्कृष्ट उदाहरण है, जहाँ व्यक्तिगत नैतिक विकास और सामाजिक न्याय एक साथ चलते हैं। यह दृष्टिकोण व्यक्तिवाद और सामूहिकता के बीच एक संतुलन स्थापित करने का प्रयास करता है, जिससे एक ऐसा समाज बन सके जो व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामूहिक उत्तरदायित्व दोनों को महत्व देता है।

2.6 प्रगतिशील दैवीप्रकाशन का समकालीन महत्व

प्रगतिशील दैवीप्रकाशन की अवधारणा वर्तमान समय में अत्यंत प्रासंगिक है। यह एक ऐसा दृष्टिकोण प्रदान करता है जो आधुनिक जीवन की जटिलताओं से निपटने में सहायक हो सकता है। समकालीन संदर्भ में इसका महत्व निम्नलिखित बिंदुओं में देखा जा सकता हैः

1. वैश्विक समस्याओं का समाधानः यह दृष्टिकोण जलवायु परिवर्तन, गरीबी, और असमानता जैसी वैश्विक चुनौतियों के समाधान में नैतिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का संयोजन प्रस्तुत करता है।
2. अंतर–धार्मिक संवादः यह विभिन्न धर्मों और विचारधाराओं के बीच संवाद को प्रोत्साहित करता है, जो वर्तमान विभाजित दुनिया में महत्वपूर्ण है।
3. तकनीकी नैतिकताः प्रगतिशील दैवीप्रकाशन कृत्रिम बुद्धिमत्ता, जैव प्रौद्योगिकी जैसे क्षेत्रों में नैतिक मार्गदर्शन प्रदान कर सकता है।
4. व्यक्तिगत कल्याणः यह व्यक्तिगत विकास और आध्यात्मिक उन्नति पर जोर देता है, जो तनावपूर्ण आधुनिक जीवन में महत्वपूर्ण है।
5. सामाजिक सामंजस्यः यह व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक उत्तरदायित्व के बीच संतुलन स्थापित करने में मदद करता है।

इस प्रकार, प्रगतिशील दैवीप्रकाशन आधुनिक समाज की कई चुनौतियों के लिए एक समग्र दृष्टिकोण प्रदान करता है।

2.6.1 वैश्विक चुनौतियों के समाधान में भूमिका

प्रगतिशील दैवीप्रकाशन वर्तमान वैश्विक चुनौतियों के समाधान में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। यह दृष्टिकोण जटिल समस्याओं को समग्र रूप से देखने और उनके समाधान में विभिन्न क्षेत्रों के ज्ञान का उपयोग करने पर जोर देता है। उदाहरण के लिए:

1. पर्यावरण संरक्षणः यह दृष्टिकोण प्रकृति के प्रति आध्यात्मिक सम्मान और वैज्ञानिक समझ को जोड़कर पर्यावरण संरक्षण के प्रयासों को मजबूत कर सकता है।
2. शांति स्थापनाः विभिन्न संस्कृतियों और धर्मों के बीच समझ बढ़ाकर, यह अंतरराष्ट्रीय संघर्षों के समाधान में मदद कर सकता है।
3. सामाजिक न्यायः यह व्यक्तिगत नैतिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व पर जोर देकर असमानता को कम करने के प्रयासों को बढ़ावा दे सकता है।
4. स्वास्थ्य चुनौतियाँः मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य को एकीकृत दृष्टिकोण से देखकर, यह स्वास्थ्य सेवा में सुधार ला सकता है।

इस प्रकार, प्रगतिशील दैवीप्रकाशन वैश्विक चुनौतियों के समाधान के लिए एक समग्र और नवीन दृष्टिकोण प्रदान करता है।

2.6.2 मानव जाति के भविष्य पर प्रभाव

प्रगतिशील दैवीप्रकाशन मानव जाति के भविष्य को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। यह दृष्टिकोण एक ऐसे भविष्य की कल्पना करता है जहाँ तकनीकी प्रगति और मानवीय मूल्य सामंजस्य से विकसित होते हैं। इसका प्रभाव निम्नलिखित क्षेत्रों में देखा जा सकता हैः

1. शिक्षाः यह दृष्टिकोण एक ऐसी शिक्षा प्रणाली को प्रोत्साहित कर सकता है जो तकनीकी कौशल और नैतिक मूल्यों को समान महत्व देती है।
2. कार्य संस्कृतिः यह व्यावसायिक सफलता और व्यक्तिगत पूर्णता के बीच संतुलन स्थापित करने वाली कार्य संस्कृति को बढ़ावा दे सकता है।
3. तकनीकी विकासः यह मानवीय मूल्यों के अनुरूप तकनीकी नवाचारों को प्रोत्साहित कर सकता है, जैसे कि मानव–केंद्रित कृत्रिम बुद्धिमत्ता।
4. सामाजिक संरचनाः यह व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामुदायिक कल्याण के बीच बेहतर संतुलन वाले समाज की ओर ले जा सकता है।
5. वैश्विकशासनः यह राष्ट्रीय हितों और वैश्विक उत्तरदायित्वों के बीच सामंजस्य स्थापित करने वाले अंतरराष्ट्रीय सहयोग के नए मॉडल को प्रेरित कर सकता है।

इस प्रकार, प्रगतिशील दैवीप्रकाशन मानव जाति के भविष्य को अधिक समावेशी, टिकाऊ और संतुलित बनाने में योगदान दे सकता है।

2.7 निष्कर्ष

प्रगतिशील दैवीप्रकाशन एक ऐसा दार्शनिक दृष्टिकोण है जो परंपरागत आध्यात्मिक विचारों और आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति के बीच सेतु बनाने का प्रयास करता है। यह अवधारणा मानवीय ज्ञान और अनुभव के विभिन्न क्षेत्रों को एकीकृत करने का प्रयास करती है, जिसमें आध्यात्मिकता, विज्ञान, नैतिकता, और सामाजिक विकास शामिल हैं। प्रगतिशील दैवीप्रकाशन का महत्व इसकी समग्र दृष्टि में निहित है, जो वर्तमान वैश्विक चुनौतियों के समाधान और मानव जाति के भविष्य के लिए एक संतुलित मार्ग प्रस्तुत करता है।

यह दृष्टिकोण व्यक्तिगत विकास और सामाजिक प्रगति के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करता है, जो आधुनिक समाज की जटिलताओं से निपटने के लिए महत्वपूर्ण है। प्रगतिशील दैवीप्रकाशन की अवधारणा हमें याद दिलाती है कि मानवीय ज्ञान और अनुभव के विभिन्न पहलू एक–दूसरे से अलग नहीं हैं, बल्कि एक समग्र समझ के लिए इन सभी का एकीकरण आवश्यक है।

अंत में, यह कहा जा सकता है कि प्रगतिशील दैवीप्रकाशन न केवल एक दार्शनिक अवधारणा है, बल्कि एक ऐसा दृष्टिकोण भी है जो हमें अपने व्यक्तिगत जीवन, समाज और पूरे विश्व को देखने और समझने का एक नया तरीका प्रदान करता है। यह हमें चुनौतियों का सामना करने और अवसरों का लाभ उठाने के लिए एक समग्र और संतुलित दृष्टिकोण अपनाने की प्रेरणा देता है।

2.8 सारांश

प्रगतिशील दैवीप्रकाशन एक ऐसी दार्शनिक अवधारणा है जो परंपरागत आध्यात्मिक विचारों और आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करती है। इस अवधारणा के प्रमुख बिंदु निम्नलिखित हैं:

1. यह मानवीय ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों – आध्यात्मिकता, विज्ञान, नैतिकता और सामाजिक विकास – को एकीकृत करने का प्रयास करती है।
2. इसका उद्देश्य आध्यात्मिक उन्नति और वैज्ञानिक प्रगति के बीच संतुलन स्थापित करना है।
3. यह मानवीय मूल्यों और प्राकृतिक नियमों के बीच सामंजस्य पर जोर देती है।
4. यह व्यक्तिगत विकास और सामाजिक न्याय के बीच संबंध स्थापित करती है।
5. यह वर्तमान वैश्विक चुनौतियों के समाधान के लिए एक समग्र दृष्टिकोण प्रदान करती है।
6. यह मानव जाति के भविष्य के लिए एक संतुलित और टिकाऊ मार्ग प्रस्तुत करती है।

प्रगतिशील दैवीप्रकाशन का महत्व इसकी समग्र दृष्टि में निहित है, जो आधुनिक जीवन की जटिलताओं से निपटने और एक बेहतर भविष्य का निर्माण करने में सहायक हो सकती है।

2.9 चिंतन के लिए प्रश्न

1. प्रगतिशील दैवीप्रकाशन की अवधारणा किस प्रकार परंपरागत दैवीप्रकाशन के विचारों से भिन्न है?
2. आध्यात्मिक उन्नति और वैज्ञानिक प्रगति के बीच संतुलन स्थापित करने के क्या लाभ और चुनौतियाँ हो सकती हैं?
3. प्रगतिशील दैवीप्रकाशन किस प्रकार वर्तमान वैश्विक चुनौतियों, जैसे जलवायु परिवर्तन या सामाजिक असमानता, के समाधान में योगदान दे सकता है?
4. क्या आप मानते हैं कि प्रगतिशील दैवीप्रकाशन का दृष्टिकोण शिक्षा प्रणाली में लागू किया जा सकता है? यदि हाँ, तो कैसे?
5. प्रगतिशील दैवीप्रकाशन के सिद्धांतों को अपने दैनिक जीवन में कैसे लागू किया जा सकता है?
6. क्या प्रगतिशील दैवीप्रकाशन की अवधारणा विभिन्न धर्मों और संस्कृतियों के बीच संवाद को बढ़ावा दे सकती है? अपने विचार व्यक्त करें।
7. तकनीकी विकास और नैतिक मूल्यों के बीच संतुलन स्थापित करने में प्रगतिशील दैवीप्रकाशन की क्या भूमिका हो सकती है?
8. क्या आप मानते हैं कि प्रगतिशील दैवीप्रकाशन का दृष्टिकोण मानव जाति के भविष्य को सकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकता है? अपने उत्तर के पक्ष में तर्क दें।

2.10 उपयोगी पुस्तकें

1. शर्मा, राधाकृष्णन. भारतीय दर्शन. राजपाल एंड सन्ज़, 2018.
2. दास, गुरुचरण. एक अच्छा संतुलनः संतुलन के कार्य. पेंगुइन रैंडम हाउस इंडिया, 2021.
3. त्रिपाठी, विश्वनाथ. हिंदू धर्म का दर्शन. राजकमल प्रकाशन, 2015.
4. चतुर्वेदी, रामस्वरूप. भारतीय दर्शन में मानव. वाणी प्रकाशन, 2017.
5. उपाध्याय, बलदेव. भारतीय दर्शन की रूपरेखा. चौखंबा विद्याभवन, 2019.
6. शर्मा, चंद्रधर. भारतीय दर्शनः आलोचना और अनुशीलन. मोतीलाल बनारसीदास, 2016.
7. सिंह, रामजी. वैदिक दर्शन. चौखंबा संस्कृत प्रतिष्ठान, 2020.
8. द्विवेदी, कपिल. भारतीय ज्ञान परंपरा. प्रभात प्रकाशन, 2018.
9. मिश्र, जयशंकर. आधुनिक भारतीय चिंतन. राजकमल प्रकाशन, 2017.
10. पांडेय, गोविंद चंद्र. बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास. हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2015.

-------00000-------

इकाई – 03
डक रैबिट भ्रम

इकाई की रूपरेखाः

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 डक–रैबिट भ्रम की अवधारणाः एक परिचय

3.3 डक–रैबिट भ्रम का अर्थ और महत्व

3.4 डक–रैबिट भ्रम की उत्पत्ति और विकास

3.4.1 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

3.4.2 जोसेफ जैस्त्रो का योगदान

3.4.3 गेस्टाल्ट मनोविज्ञान का प्रभाव

3.5 डक–रैबिट भ्रम के दार्शनिक निहितार्थ

3.5.1 प्रत्यक्षण और वास्तविकता

3.5.2 ज्ञान मीमांसा के प्रश्न

3.5.3 मन और मस्तिष्क का संबंध

3.6 डक–रैबिट भ्रम का अनुप्रयोग

3.6.1 मनोविज्ञान में

3.6.2 कला और सौंदर्यशास्त्र में

3.6.3 संज्ञानात्मक विज्ञान में

3.7 निष्कर्ष

3.8 सारांश

3.9 चिंतन के लिए प्रश्न

3.10 उपयोगी पुस्तकें

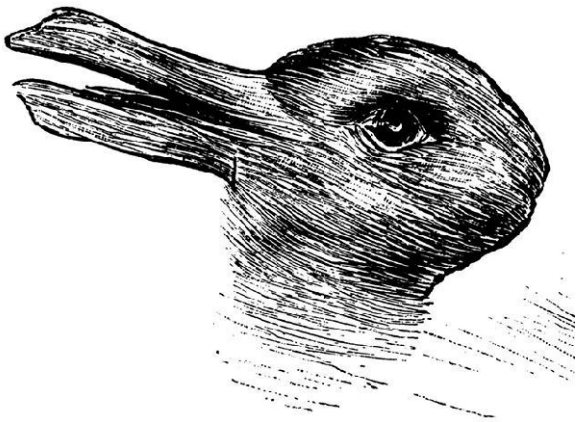

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को डक–रैबिट भ्रम की अवधारणा से परिचित कराना है। यह अध्याय छात्रों को इस प्रसिद्ध दृश्य भ्रम के इतिहास, महत्व और दार्शनिक निहितार्थों को समझने में मदद करेगा। इसका लक्ष्य है कि विद्यार्थी प्रत्यक्षण की प्रकृति, मन और मस्तिष्क के संबंध, तथा वास्तविकता की व्याख्या के बारे में गहराई से सोच सकें। साथ ही, यह इकाई डक–रैबिट भ्रम के विभिन्न क्षेत्रों में अनुप्रयोगों पर प्रकाश डालेगी, जिससे छात्र इस अवधारणा के व्यापक महत्व को समझ सकेंगे। अंततः, यह अध्याय विद्यार्थियों को प्रत्यक्षण, ज्ञान और वास्तविकता के बारे में अपने स्वयं के दार्शनिक विचारों को विकसित करने के लिए प्रोत्साहित करेगा।

3.1 प्रस्तावना

डक–रैबिट भ्रम दर्शनशास्त्र, मनोविज्ञान और संज्ञानात्मक विज्ञान के क्षेत्रों में एक महत्वपूर्ण अवधारणा है। यह एक ऐसा चित्र है जिसे देखकर व्यक्ति या तो एक बतख या एक खरगोश देख सकता है, लेकिन एक साथ दोनों नहीं। यह भ्रम हमारे प्रत्यक्षण की प्रकृति पर गहरे सवाल उठाता है। क्या हम वास्तव में देखते हैं जो वहाँ है, या हमारा मस्तिष्क जो देखना चाहता है, वही देखता है? यह प्रश्न दर्शनशास्त्र में ज्ञान मीमांसा और मन के दर्शन जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों से जुड़ा हुआ है। इस अध्याय में, हम डक–रैबिट भ्रम की अवधारणा का गहन अध्ययन करेंगे, इसके इतिहास और विकास को समझेंगे, और इसके दार्शनिक एवं व्यावहारिक निहितार्थों पर विचार करेंगे। यह प्रस्तावना विद्यार्थियों को इस रोचक विषय के विभिन्न आयामों के बारे में सोचने के लिए तैयार करेगी।

3.2 डक–रैबिट भ्रम की अवधारणाः एक परिचय

डक–रैबिट भ्रम एक प्रसिद्ध दृश्य भ्रम है जिसमें एक ही चित्र को दो अलग–अलग तरीकों से देखा जा सकता है। इस चित्र में एक ऐसी आकृति है जिसे एक दृष्टिकोण से देखने पर बतख की तरह और दूसरे दृष्टिकोण से देखने पर खरगोश की तरह दिखाई देता है। यह भ्रम मानव प्रत्यक्षण की जटिलता को दर्शाता है। यह दिखाता है

कि हमारा मस्तिष्क कैसे एक ही जानकारी की विभिन्न व्याख्याएँ कर सकता है। डक–रैबिट भ्रम की मुख्य विशेषता यह है कि दर्शक एक समय में केवल एक ही रूप (बतख या खरगोश) देख सकता है, दोनों एक साथ नहीं। यह अवधारणा प्रत्यक्षण के सक्रिय प्रकृति पर प्रकाश डालती है। यह दर्शाती है कि हम निष्क्रिय रूप से जानकारी को ग्रहण नहीं करते, बल्कि सक्रिय रूप से उसकी व्याख्या करते हैं। यह भ्रम दर्शनशास्त्र, मनोविज्ञान और संज्ञानात्मक विज्ञान में गहन अध्ययन और चर्चा का विषय रहा है।

3.3 डक–रैबिट भ्रम का अर्थ और महत्व

डक–रैबिट भ्रम दर्शन और मनोविज्ञान के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण अवधारणा है, जो हमारे प्रत्यक्षण की प्रकृति और वास्तविकता के हमारे अनुभव को गहराई से प्रभावित करती है। यह भ्रम एक ऐसी छवि या आकृति को संदर्भित करता है जिसे दो अलग–अलग तरीकों से देखा जा सकता है – एक बतख के रूप में या एक खरगोश के रूप में। इस भ्रम का मूल अर्थ यह है कि हमारा मस्तिष्क एक ही वस्तु को विभिन्न तरीकों से व्याख्यायित कर सकता है, जो हमारे प्रत्यक्षण की सापेक्षता को दर्शाता है।

इस भ्रम का महत्व कई स्तरों पर है। सबसे पहले, यह हमें बताता है कि हमारा प्रत्यक्षण पूर्णतः वस्तुनिष्ठ नहीं है, बल्कि हमारे मस्तिष्क द्वारा निर्मित एक व्याख्या है। दूसरा, यह ज्ञान मीमांसा के मूलभूत प्रश्नों को उठाता है – हम कैसे जानते हैं कि हम जो देख रहे हैं वह वास्तव में क्या है? तीसरा, यह मन और मस्तिष्क के बीच के जटिल संबंध को उजागर करता है, जहाँ हमारी मानसिक स्थिति हमारे प्रत्यक्षण को प्रभावित कर सकती है।

डक–रैबिट भ्रम का महत्व इसके व्यापक अनुप्रयोगों में भी निहित है। मनोविज्ञान में, यह व्यक्तिगत अनुभवों और व्याख्याओं की विविधता को समझने में मदद करता है। कला और सौंदर्यशास्त्र में, यह कलाकृतियों की बहुआयामी प्रकृति को समझने का आधार बनता है। संज्ञानात्मक विज्ञान में, यह मस्तिष्क के कार्य करने के तरीके पर नए शोध के द्वार खोलता है। अंत में, डक–रैबिट भ्रम हमें याद दिलाता है कि वास्तविकता जटिल और बहुआयामी है, और हमारा प्रत्यक्षण हमेशा सीमित और व्यक्तिपरक होता है।

3.4 डक–रैबिट भ्रम की उत्पत्ति और विकास

डक–रैबिट भ्रम की उत्पत्ति और विकास दर्शन और मनोविज्ञान के इतिहास में एक रोचक यात्रा है। यह अवधारणा मूल रूप से 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में सामने आई, जब मनोवैज्ञानिकों और दार्शनिकों ने मानव प्रत्यक्षण की जटिलताओं पर गहन चिंतन करना शुरू किया। इस भ्रम का प्रारंभिक उल्लेख जर्मन पत्रिका 'फ्लिगेंडे ब्लैटर' में 1892 में हुआ, जहाँ एक चित्र प्रकाशित किया गया था जिसे बतख या खरगोश के रूप में देखा जा सकता था। हालांकि, इस अवधारणा को वैज्ञानिक दृष्टि से महत्वपूर्ण बनाने का श्रेय अमेरिकी मनोवैज्ञानिक जोसेफ जैस्त्रो को जाता है, जिन्होंने 1899 में इसका गहन विश्लेषण किया।

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में, गेस्टाल्ट मनोविज्ञान के उदय के साथ, डक–रैबिट भ्रम ने नया महत्व प्राप्त किया। गेस्टाल्ट सिद्धांतकारों ने इस भ्रम का उपयोग यह प्रदर्शित करने के लिए किया कि कैसे मानव मस्तिष्क जटिल पैटर्न को समग्र रूप में देखता है, न कि अलग–अलग हिस्सों के रूप में।

दार्शनिक लुडविग विटगेनस्टीन ने अपनी पुस्तक 'फिलोसोफिकल इन्वेस्टिगेशंस' (1953) में इस भ्रम का उल्लेख किया, जिसने इसे दार्शनिक चर्चा का एक महत्वपूर्ण विषय बना दिया। उन्होंने इस भ्रम का उपयोग यह दिखाने के लिए किया कि कैसे एक ही वस्तु को अलग–अलग तरीकों से देखा और व्याख्यायित किया जा सकता है। वर्तमान में, डक–रैबिट भ्रम न केवल मनोविज्ञान और दर्शन में, बल्कि न्यूरोसाइंस, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, और यहां तक कि कला और डिजाइन जैसे क्षेत्रों में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह हमारे प्रत्यक्षण की प्रकृति, वास्तविकता की हमारी समझ, और हमारे मस्तिष्क के कार्य करने के तरीके पर निरंतर शोध और चिंतन का विषय बना हुआ है।

3.4.1 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

डक–रैबिट भ्रम की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में निहित है, जब मनोविज्ञान एक स्वतंत्र विषय के रूप में उभर रहा था। इस काल में, वैज्ञानिकों और दार्शनिकों ने मानव मन और प्रत्यक्षण की प्रक्रियाओं को समझने के लिए नए तरीकों की खोज शुरू की। 1892 में, जर्मन हास्य पत्रिका 'फ्लिगेंडे ब्लैटर' में एक चित्र प्रकाशित हुआ जो या तो एक बतख या एक खरगोश के रूप में देखा जा सकता था। यह चित्र तुरंत लोकप्रिय हो गया और कई अन्य प्रकाशनों में पुनः प्रकाशित किया गया। इस चित्र ने दर्शकों को आश्चर्यचकित कर दिया और उनमें यह जिज्ञासा जगाई कि कैसे एक ही चित्र दो अलग–अलग जानवरों का प्रतिनिधित्व कर सकता है। इसी दौरान, विल्हेम वुंट जैसे मनोवैज्ञानिक प्रयोगात्मक मनोविज्ञान की नींव रख रहे थे। उन्होंने मानव प्रत्यक्षण और संज्ञान के अध्ययन के लिए वैज्ञानिक विधियों का उपयोग करना शुरू किया। यह काम डक–रैबिट भ्रम जैसी घटनाओं के वैज्ञानिक विश्लेषण का मार्ग प्रशस्त करने में महत्वपूर्ण था।

19वीं शताब्दी के अंत तक, गेस्टाल्ट मनोविज्ञान का उदय हो रहा था, जो प्रत्यक्षण के समग्र स्वरूप पर केंद्रित था। इस दृष्टिकोण ने डक–रैबिट भ्रम जैसी घटनाओं की व्याख्या करने के लिए एक नया ढांचा प्रदान किया। इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि ने डक–रैबिट भ्रम को एक सरल मनोरंजक चित्र से एक गंभीर वैज्ञानिक और दार्शनिक अध्ययन का विषय बनने का मार्ग प्रशस्त किया। यह विकास दर्शाता है कि कैसे एक सामान्य सी दिखने वाली घटना गहन वैज्ञानिक और दार्शनिक अंतर्दृष्टि का स्रोत बन सकती है।

3.4.2 जोसेफ जैस्त्रो का योगदान

जोसेफ जैस्त्रो, एक प्रसिद्ध अमेरिकी मनोवैज्ञानिक, ने डक–रैबिट भ्रम के अध्ययन और प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 1899 में, जैस्त्रो ने अपनी पुस्तक "फैक्ट एंड फेबल इन साइकोलॉजी" में इस भ्रम का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया, जिसने इसे वैज्ञानिक जगत में प्रमुखता दी। जैस्त्रो ने इस भ्रम का उपयोग यह प्रदर्शित करने के लिए किया कि कैसे मानव प्रत्यक्षण सिर्फ आँखों द्वारा प्राप्त जानकारी पर नहीं, बल्कि मस्तिष्क द्वारा इस जानकारी

की व्याख्या पर भी निर्भर करता है। उन्होंने तर्क दिया कि जब हम डक–रैबिट चित्र को देखते हैं, तो हमारी आँखें एक ही जानकारी प्राप्त कर रही होती हैं, लेकिन हमारा मस्तिष्क इसे दो अलग–अलग तरीकों से व्याख्यायित कर सकता है।

जैस्त्रो ने यह भी दर्शाया कि हम एक समय में केवल एक व्याख्या को देख सकते हैं – या तो बतख या खरगोश – लेकिन दोनों को एक साथ नहीं। यह निष्कर्ष प्रत्यक्षण की प्रकृति पर महत्वपूर्ण प्रश्न उठाता है और सुझाव देता है कि हमारा प्रत्यक्षण हमेशा एक निर्वचन है, न कि वास्तविकता का सीधा प्रतिबिंब। इसके अलावा, जैस्त्रो ने इस भ्रम का उपयोग यह दिखाने के लिए किया कि कैसे हमारी पूर्व धारणाएँ और अपेक्षाएँ हमारे प्रत्यक्षण को प्रभावित कर सकती हैं। उन्होंने पाया कि जो लोग पहले बतख देखते थे, वे बाद में खरगोश देखने में कठिनाई महसूस करते थे, और इसके विपरीत। जैस्त्रो के कार्य ने डक–रैबिट भ्रम को मनोविज्ञान और दर्शन में एक महत्वपूर्ण अध्ययन का विषय बना दिया। उनके योगदान ने इस भ्रम को प्रत्यक्षण, संज्ञान, और वास्तविकता की प्रकृति पर गहन चर्चाओं का केंद्र बना दिया।

3.4.3 गेस्टाल्ट मनोविज्ञान का प्रभाव

गेस्टाल्ट मनोविज्ञान, जो 20वीं शताब्दी के प्रारंभ में जर्मनी में विकसित हुआ, ने डक–रैबिट भ्रम की समझ और व्याख्या पर गहरा प्रभाव डाला। गेस्टाल्ट सिद्धांत का मूल विचार है कि "समग्र अपने हिस्सों के योग से अधिक है" – यानी, हम चीजों को अलग–अलग टुकड़ों के रूप में नहीं, बल्कि एक संपूर्ण के रूप में देखते और समझते हैं। मैक्स वेरथाइमर, कुर्ट कोफ्का, और वोल्फगैंग कोहलर जैसे प्रमुख गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों ने डक–रैबिट भ्रम का उपयोग अपने सिद्धांतों को समझाने के लिए किया। उन्होंने तर्क दिया कि जब हम इस भ्रम को देखते हैं, तो हम केवल रेखाओं और आकृतियों को नहीं देखते, बल्कि एक संपूर्ण पैटर्न को देखते हैं जो या तो एक बतख या एक खरगोश का प्रतिनिधित्व करता है।

गेस्टाल्ट सिद्धांत ने यह भी समझाया कि क्यों हम एक समय में केवल एक व्याख्या (बतख या खरगोश) को देख सकते हैं। उनके अनुसार, हमारा मस्तिष्क हमेशा सबसे सरल और स्थिर संरचना को देखने का प्रयास करता है, जो इस मामले में या तो बतख है या खरगोश, लेकिन दोनों एक साथ नहीं। इसके अलावा, गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों ने "आकृति–पृष्ठभूमि" की अवधारणा का उपयोग करके डक–रैबिट भ्रम की व्याख्या की। उन्होंने बताया कि जब हम बतख देखते हैं, तो चोंच "आकृति" बनती है और कान "पृष्ठभूमि" बन जाते हैं, जबकि जब हम खरगोश देखते हैं, तो यह संबंध उलट जाता है। गेस्टाल्ट मनोविज्ञान के इन सिद्धांतों ने डक–रैबिट भ्रम को एक सरल भ्रम से कहीं अधिक बना दिया। इसने इस भ्रम को मानव प्रत्यक्षण और संज्ञान की जटिलताओं को समझने का एक शक्तिशाली उपकरण बना दिया, जिसका प्रभाव आज भी मनोविज्ञान, दर्शन, और संज्ञानात्मक विज्ञान में देखा जा सकता है।

3.5 डक–रैबिट भ्रम के दार्शनिक निहितार्थ

डक–रैबिट भ्रम केवल एक मनोवैज्ञानिक घटना नहीं है, बल्कि इसके गहन दार्शनिक निहितार्थ भी हैं। यह भ्रम हमें प्रत्यक्षण की प्रकृति, वास्तविकता की हमारी समझ, और ज्ञान के स्वरूप के बारे में गंभीर प्रश्न पूछने के लिए प्रेरित करता है।

सबसे पहले, यह भ्रम हमें बताता है कि हमारा प्रत्यक्षण पूर्णतः वस्तुनिष्ठ नहीं है। एक ही चित्र दो अलग–अलग तरीकों से देखा जा सकता है, जो दर्शाता है कि हमारा प्रत्यक्षण वास्तविकता का सीधा प्रतिबिंब नहीं है, बल्कि हमारे मस्तिष्क द्वारा किया गया एक निर्वचन है।

दूसरा, यह भ्रम ज्ञान मीमांसा के मूलभूत प्रश्नों को उठाता है। अगर हम एक ही चीज को दो अलग–अलग तरीकों से देख सकते हैं, तो हम कैसे निश्चित हो सकते हैं कि हमारा कोई भी प्रत्यक्षण सही है? यह प्रश्न हमें ज्ञान की प्रकृति और सीमाओं पर विचार करने के लिए मजबूर करता है।

तीसरा, डक–रैबिट भ्रम मन और मस्तिष्क के बीच के जटिल संबंध को उजागर करता है। यह दिखाता है कि हमारा मानसिक स्थिति और पूर्व अनुभव हमारे प्रत्यक्षण को प्रभावित कर सकते हैं, जो मन–शरीर समस्या पर नए प्रकाश डालता है।

अंत में, यह भ्रम वास्तविकता की प्रकृति पर प्रश्न उठाता है। क्या वास्तविकता वह है जो हम देखते हैं, या यह हमारे प्रत्यक्षण से स्वतंत्र है? यह प्रश्न हमें यथार्थवाद और प्रत्ययवाद जैसे दार्शनिक सिद्धांतों पर पुनर्विचार करने के लिए प्रेरित करता है। इन दार्शनिक निहितार्थों के कारण, डक–रैबिट भ्रम न केवल मनोविज्ञान में, बल्कि दर्शन में भी एक महत्वपूर्ण अध्ययन का विषय बना हुआ है।

3.5.1 प्रत्यक्षण और वास्तविकता

डक–रैबिट भ्रम प्रत्यक्षण और वास्तविकता के बीच के जटिल संबंध को उजागर करता है, जो दर्शन में एक महत्वपूर्ण विषय है। यह भ्रम हमें बताता है कि हमारा प्रत्यक्षण वास्तविकता का सीधा प्रतिबिंब नहीं है, बल्कि हमारे मस्तिष्क द्वारा किया गया एक निर्वचन है। जब हम डक–रैबिट चित्र को देखते हैं, तो हम एक ही समय में दोनों आकृतियों (बतख और खरगोश) को नहीं देख सकते। यह दर्शाता है कि हमारा प्रत्यक्षण चयनात्मक है और हमारे मस्तिष्क की वर्तमान स्थिति पर निर्भर करता है। इससे यह प्रश्न उठता है कि क्या हम कभी वास्तविकता को "जैसा है वैसा" देख पाते हैं, या हमारा प्रत्यक्षण हमेशा आंशिक और पक्षपातपूर्ण होता है।

इस भ्रम से यह भी पता चलता है कि हमारा प्रत्यक्षण परिवर्तनशील है। हम एक ही चित्र को कभी बतख के रूप में और कभी खरगोश के रूप में देख सकते हैं। यह सुझाव देता है कि वास्तविकता स्थिर नहीं है, बल्कि हमारे दृष्टिकोण के साथ बदलती रहती है। दार्शनिक इमैनुएल कांट ने तर्क दिया था कि हम कभी भी "बीइंग–इन–इट्सेल्फ" को नहीं जान सकते, बल्कि केवल उसके प्रतिभास को जान सकते हैं। डक–रैबिट भ्रम इस

विचार का एक मूर्त उदाहरण प्रदान करता है, यह दिखाते हुए कि हमारा प्रत्यक्षण वास्तविकता का एक निर्माण है, न कि उसका सीधा प्रतिबिंब।

यह भ्रम हमें यह भी याद दिलाता है कि हमारा प्रत्यक्षण हमारे पूर्व अनुभवों और अपेक्षाओं से प्रभावित होता है। जो लोग पहले बतख देखते हैं, वे बाद में खरगोश देखने में कठिनाई महसूस कर सकते हैं, और इसके विपरीत। यह दर्शाता है कि हमारा प्रत्यक्षण केवल वर्तमान इनपुट पर नहीं, बल्कि हमारे पिछले अनुभवों पर भी निर्भर करता है। अंत में, डक–रैबिट भ्रम हमें याद दिलाता है कि वास्तविकता जटिल और बहुआयामी हो सकती है, और हमारा प्रत्यक्षण हमेशा सीमित और व्यक्तिपरक होता है। यह हमें प्रोत्साहित करता है कि हम अपने दृष्टिकोण को विस्तृत करें और वास्तविकता के विभिन्न पहलुओं को समझने का प्रयास करें।

3.5.2 ज्ञान मीमांसा के प्रश्न

डक–रैबिट भ्रम ज्ञान मीमांसा (एपिस्टेमोलॉजी) के क्षेत्र में कई महत्वपूर्ण प्रश्न उठाता है। ज्ञान मीमांसा दर्शन की वह शाखा है जो ज्ञान की प्रकृति, सीमाओं और वैधता का अध्ययन करती है। डक–रैबिट भ्रम इस क्षेत्र में निम्नलिखित प्रश्नों को जन्म देता है:

1. ज्ञान की प्रकृतिः अगर हम एक ही चीज को दो अलग–अलग तरीकों से देख सकते हैं (बतख या खरगोश), तो हम कैसे निश्चित हो सकते हैं कि हमारा कोई भी ज्ञान सही है? यह प्रश्न हमें ज्ञान की निश्चितता पर पुनर्विचार करने के लिए मजबूर करता है।

2. प्रत्यक्ष ज्ञान की विश्वसनीयताः डक–रैबिट भ्रम यह प्रश्न उठाता है कि क्या हमारी इंद्रियाँ हमें विश्वसनीय ज्ञान प्रदान करती हैं। अगर हमारी आँखें हमें एक ही चीज के दो अलग–अलग दृश्य दे सकती हैं, तो क्या हम अपनी इंद्रियों पर पूरी तरह से भरोसा कर सकते हैं?

3. व्याख्या का महत्वः यह भ्रम दर्शाता है कि ज्ञान केवल इंद्रिय डेटा का संग्रह नहीं है, बल्कि उस डेटा की व्याख्या भी है। यह हमें ज्ञान प्राप्ति में व्याख्या की भूमिका पर विचार करने के लिए प्रेरित करता है।

4. ज्ञान और परिप्रेक्ष्य : डक–रैबिट भ्रम यह सुझाव देता है कि हमारा ज्ञान हमारे दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। यह सापेक्षवाद के विचार को बल देता है, जो कहता है कि सत्य व्यक्तिगत या सामूहिक दृष्टिकोण पर निर्भर करता है।

5. ज्ञान की सीमाएँ : यह भ्रम हमें याद दिलाता है कि हमारा ज्ञान सीमित और आंशिक हो सकता है। हम एक ही समय में बतख और खरगोश दोनों को नहीं देख सकते, जो सुझाव देता है कि हमारा ज्ञान हमेशा अपूर्ण हो सकता है।

6. ज्ञान और पूर्वधारणाएँ : डक–रैबिट भ्रम दर्शाता है कि हमारी पूर्वधारणाएँ और अपेक्षाएँ हमारे ज्ञान को प्रभावित कर सकती हैं। यह हमें ज्ञान प्राप्ति में पूर्वाग्रहों की भूमिका पर विचार करने के लिए प्रेरित करता है।

इन प्रश्नों के माध्यम से, डक–रैबिट भ्रम ज्ञान मीमांसा के क्षेत्र में गहन चिंतन और विचार–विमर्श को प्रोत्साहित करता है, जो हमारी ज्ञान की प्रकृति और सीमाओं की समझ को गहरा करने में मदद करता है।

3.5.3 मन और मस्तिष्क का संबंध

डक–रैबिट भ्रम मन और मस्तिष्क के बीच के जटिल संबंध पर प्रकाश डालता है, जो दर्शन और मनोविज्ञान में एक महत्वपूर्ण विषय है। यह भ्रम कई तरह से इस संबंध को प्रदर्शित करता हैः

1. प्रत्यक्षण की भूमिका : डक–रैबिट भ्रम दिखाता है कि हमारा मस्तिष्क सक्रिय रूप से प्राप्त जानकारी की व्याख्या करता है। यह एक ही चित्र को दो अलग–अलग तरीकों से देख सकता है, जो बताता है कि प्रत्यक्षण एक निष्क्रिय प्रक्रिया नहीं है, बल्कि मस्तिष्क द्वारा किया गया एक सक्रिय निर्माण है।

2. चेतना का स्वरूप : इस भ्रम से पता चलता है कि हम एक समय में केवल एक व्याख्या (बतख या खरगोश) को चेतन रूप से देख सकते हैं। यह चेतना की प्रकृति के बारे में प्रश्न उठाता है – क्या चेतना एक एकल, एकीकृत अनुभव है या यह विभिन्न प्रक्रियाओं का एक समूह है?

3. अवचेतन प्रक्रियाएँः जब हम डक–रैबिट चित्र को देखते हैं, तो हमारा मस्तिष्क दोनों व्याख्याओं (बतख और खरगोश) को संसाधित करता है, लेकिन हम केवल एक को चेतन रूप से देखते हैं। यह अवचेतन मानसिक प्रक्रियाओं के महत्व को दर्शाता है।

4. मानसिक स्थिति का प्रभाव : हमारी मानसिक स्थिति (जैसे ध्यान, अपेक्षाएँ) यह निर्धारित कर सकती है कि हम पहले क्या देखते हैं – बतख या खरगोश। यह दर्शाता है कि मन की स्थिति मस्तिष्क के कार्य को प्रभावित कर सकती है।

5. मानसिक लचीलापन : हम अपने प्रत्यक्ष को बदल सकते हैं और बतख से खरगोश (या इसके विपरीत) में स्विच कर सकते हैं। यह मस्तिष्क की प्लास्टिसिटी और मन की लचीलेपन को दर्शाता है।

6. मन–शरीर समस्या : डक–रैबिट भ्रम मन और शरीर (या मस्तिष्क) के बीच के संबंध पर प्रश्न उठाता है। क्या मन मस्तिष्क से अलग है या यह मस्तिष्क की गतिविधि का ही एक परिणाम है?

इस प्रकार, डक–रैबिट भ्रम मन और मस्तिष्क के बीच के जटिल संबंध को समझने में मदद करता है, जो दर्शन और न्यूरोसाइंस दोनों में महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्रदान करता है।

3.6 डक–रैबिट भ्रम का अनुप्रयोग

डक–रैबिट भ्रम का अनुप्रयोग विभिन्न क्षेत्रों में व्यापक रूप से देखा जा सकता है। यह केवल एक दिलचस्प मनोवैज्ञानिक घटना नहीं है, बल्कि एक उपकरण है जो हमें मानव मन, प्रत्यक्षण, और वास्तविकता की हमारी समझ के बारे में गहरी अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। इसके कुछ प्रमुख अनुप्रयोग निम्नलिखित हैंः

1. मनोविज्ञान में अनुप्रयोग : मनोवैज्ञानिक इस भ्रम का उपयोग प्रत्यक्षण, संज्ञान, और मस्तिष्क की कार्यप्रणाली को समझने के लिए करते हैं। यह विशेष रूप से गेस्टाल्ट मनोविज्ञान में महत्वपूर्ण है, जो यह समझने पर केंद्रित है कि हम कैसे पैटर्न और संरचनाओं को समग्र रूप में देखते हैं।

2. न्यूरोसाइंस में अनुप्रयोग : न्यूरोवैज्ञानिक इस भ्रम का उपयोग यह समझने के लिए करते हैं कि कैसे मस्तिष्क विभिन्न दृश्य जानकारी को संसाधित करता है और उसकी व्याख्या करता है।

3. दर्शन में अनुप्रयोग : दार्शनिक इस भ्रम का उपयोग प्रत्यक्षण, वास्तविकता और ज्ञान की प्रकृति पर चर्चा करने के लिए करते हैं। यह विशेष रूप से ज्ञान मीमांसा और मन के दर्शन में महत्वपूर्ण है।

4. कला और डिजाइन में अनुप्रयोग : कलाकार और डिजाइनर इस भ्रम से प्रेरित होकर ऐसी कृतियाँ बनाते हैं जो दर्शक के प्रत्यक्षण को चुनौती देती हैं और उन्हें अलग–अलग तरीकों से देखी जा सकती हैं।

5. शिक्षा में अनुप्रयोग : शिक्षक इस भ्रम का उपयोग छात्रों को यह सिखाने के लिए कर सकते हैं कि कैसे एक ही चीज को अलग–अलग दृष्टिकोणों से देखा जा सकता है, जो महत्वपूर्ण सोच को बढ़ावा देता है।

6. मार्केटिंग और विज्ञापन में अनुप्रयोग : मार्केटिंग पेशेवर इस भ्रम के सिद्धांतों का उपयोग ऐसे विज्ञापन बनाने के लिए कर सकते हैं जो दर्शकों का ध्यान आकर्षित करते हैं और उन्हें अलग–अलग तरीकों से व्याख्या किए जा सकते हैं।

इस प्रकार, डक–रैबिट भ्रम का अनुप्रयोग व्यापक और विविध है, जो इसे न केवल एक दिलचस्प वैज्ञानिक घटना बल्कि एक बहुमूल्य शैक्षिक और व्यावहारिक उपकरण भी बनाता है।

3.6.1 मनोविज्ञान में

मनोविज्ञान में डक–रैबिट भ्रम का अनुप्रयोग व्यापक और महत्वपूर्ण है। यह भ्रम मानव मन और व्यवहार के विभिन्न पहलुओं को समझने में मदद करता है। निम्नलिखित कुछ प्रमुख क्षेत्र हैं जहाँ इस भ्रम का उपयोग किया जाता हैः

1. प्रत्यक्षण अध्ययन : डक–रैबिट भ्रम प्रत्यक्षण मनोविज्ञान में एक महत्वपूर्ण उपकरण है। यह दिखाता है कि हमारा प्रत्यक्षण केवल आँखों द्वारा प्राप्त जानकारी पर नहीं, बल्कि मस्तिष्क द्वारा इस जानकारी की व्याख्या पर भी निर्भर करता है।

2. गेस्टाल्ट मनोविज्ञान : गेस्टाल्ट सिद्धांतकारों ने इस भ्रम का व्यापक उपयोग किया है यह समझाने के लिए कि हम चीजों को अलग–अलग हिस्सों के रूप में नहीं, बल्कि एक संपूर्ण के रूप में देखते और समझते हैं।

3. संज्ञानात्मक मनोविज्ञान : यह भ्रम संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं जैसे ध्यान, स्मृति, और निर्णय लेने की प्रक्रिया को समझने में मदद करता है। उदाहरण के लिए, यह दिखाता है कि कैसे हमारा ध्यान एक व्याख्या से दूसरी व्याख्या में स्विच कर सकता है।

4. विकासात्मक मनोविज्ञानः शोधकर्ता इस भ्रम का उपयोग यह समझने के लिए करते हैं कि कैसे बच्चों का प्रत्यक्षण और संज्ञानात्मक क्षमताएँ समय के साथ विकसित होती हैं।

5. सामाजिक मनोविज्ञानः डक–रैबिट भ्रम का उपयोग यह समझाने के लिए किया जाता है कि कैसे लोग एक ही स्थिति को अलग–अलग तरीकों से देख और व्याख्या कर सकते हैं, जो सामाजिक धारणाओं और पूर्वाग्रहों को समझने में मदद करता है।

6. व्यक्तित्व मनोविज्ञानः यह भ्रम व्यक्तित्व के अध्ययन में भी उपयोगी है, यह दिखाते हुए कि कैसे विभिन्न व्यक्तित्व प्रकार अलग–अलग तरीकों से एक ही स्थिति का प्रत्यक्षण कर सकते हैं।

7. नैदानिक मनोविज्ञानः मनोचिकित्सक इस भ्रम का उपयोग रोगियों के साथ यह चर्चा करने के लिए कर सकते हैं कि कैसे एक ही स्थिति को अलग–अलग दृष्टिकोणों से देखा जा सकता है, जो उनके दृष्टिकोण को बदलने में मदद कर सकता है।

8. शैक्षिक मनोविज्ञानः यह भ्रम शिक्षकों और छात्रों को यह समझने में मदद कर सकता है कि कैसे विभिन्न लोग एक ही जानकारी को अलग–अलग तरीकों से समझ और व्याख्या कर सकते हैं।

इस प्रकार, डक–रैबिट भ्रम मनोविज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में एक बहुमूल्य उपकरण है, जो मानव मन और व्यवहार की जटिलताओं को समझने में मदद करता है।

3.6.2 कला और सौंदर्यशास्त्र में

कला और सौंदर्यशास्त्र में डक–रैबिट भ्रम का अनुप्रयोग व्यापक और रचनात्मक है। यह भ्रम कलाकारों, डिजाइनरों और सौंदर्यशास्त्रियों को प्रेरित करता है और उन्हें नए दृष्टिकोण प्रदान करता है। निम्नलिखित कुछ प्रमुख क्षेत्र हैं जहाँ इस भ्रम का उपयोग किया जाता हैः

1. दृश्य कलाः कई कलाकार डक–रैबिट भ्रम से प्रेरित होकर ऐसी कृतियाँ बनाते हैं जो एक से अधिक तरीकों से देखी जा सकती हैं। उदाहरण के लिए, एम.सी. एशर की कृतियाँ अक्सर इस तरह के भ्रम पर आधारित होती हैं।

2. लोगो डिजाइनः कई कंपनियाँ अपने लोगो में इस भ्रम के सिद्धांतों का उपयोग करती हैं, जहाँ एक ही चिह्न को दो अलग–अलग तरीकों से देखा जा सकता है।

3. फैशन डिजाइनः फैशन डिजाइनर कपड़ों और आभूषणों में ऐसे पैटर्न का उपयोग कर सकते हैं जो दर्शक के दृष्टिकोण के आधार पर बदलते प्रतीत होते हैं।

4. आर्किटेक्चरः कुछ आर्किटेक्ट इस भ्रम से प्रेरित होकर ऐसी इमारतें डिजाइन करते हैं जो अलग–अलग कोणों से अलग–अलग दिखाई देती हैं।

5. फिल्म और एनिमेशनः फिल्म निर्माता और एनिमेटर अक्सर इस भ्रम का उपयोग दृश्य प्रभाव बनाने के लिए करते हैं जो दर्शकों को आश्चर्यचकित करते हैं।

6. सौंदर्यशास्त्र का सिद्धांतः सौंदर्यशास्त्री इस भ्रम का उपयोग यह चर्चा करने के लिए करते हैं कि कैसे कला की व्याख्या दर्शक के दृष्टिकोण पर निर्भर करती है।

7. इंटरैक्टिव आर्टः कई कलाकार इस भ्रम के सिद्धांतों का उपयोग ऐसी कलाकृतियाँ बनाने के लिए करते हैं जो दर्शकों की भागीदारी पर निर्भर करती हैं।

8. डिजिटल आर्टः डिजिटल कलाकार अक्सर इस भ्रम का उपयोग ऐसी कृतियाँ बनाने के लिए करते हैं जो दर्शकों को अलग–अलग तरीकों से देखने और व्याख्या करने के लिए प्रोत्साहित करती हैं।

9. कला शिक्षाः कला शिक्षक इस भ्रम का उपयोग छात्रों को यह सिखाने के लिए करते हैं कि कैसे एक ही कलाकृति को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखा और समझा जा सकता है।

10. म्यूजियम क्यूरेशनः संग्रहालय क्यूरेटर इस भ्रम के सिद्धांतों का उपयोग प्रदर्शनियों को इस तरह से व्यवस्थित करने के लिए कर सकते हैं जो दर्शकों को कलाकृतियों को विभिन्न तरीकों से देखने के लिए प्रोत्साहित करता है।

इस प्रकार, डक–रैबिट भ्रम कला और सौंदर्यशास्त्र में एक महत्वपूर्ण अवधारणा है, जो कलाकारों और दर्शकों दोनों को नए और रोचक तरीकों से सोचने के लिए प्रेरित करती है।

3.6.3 संज्ञानात्मक विज्ञान में

संज्ञानात्मक विज्ञान में डक–रैबिट भ्रम का अनुप्रयोग व्यापक और महत्वपूर्ण है। यह भ्रम मानव मस्तिष्क की कार्यप्रणाली, प्रत्यक्षण प्रक्रियाओं, और संज्ञानात्मक क्षमताओं को समझने में मदद करता है। निम्नलिखित कुछ प्रमुख क्षेत्र हैं जहाँ इस भ्रम का उपयोग किया जाता हैः

1. न्यूरल नेटवर्क मॉडलिंगः संज्ञानात्मक वैज्ञानिक इस भ्रम का उपयोग यह समझने के लिए करते हैं कि कैसे मस्तिष्क जटिल दृश्य जानकारी को संसाधित करता है। वे ऐसे न्यूरल नेटवर्क मॉडल विकसित करते हैं जो इस भ्रम जैसी घटनाओं को प्रदर्शित कर सकते हैं।

2. प्रत्यक्षण अध्ययनः यह भ्रम प्रत्यक्षण की जटिलताओं को समझने में मदद करता है, जैसे कि कैसे पूर्व ज्ञान और संदर्भ हमारे प्रत्यक्षण को प्रभावित करते हैं।

3. ध्यान और चेतना अध्ययनः डक–रैबिट भ्रम का उपयोग यह समझने के लिए किया जाता है कि कैसे हम अपना ध्यान एक व्याख्या से दूसरी व्याख्या में स्थानांतरित करते हैं, और यह प्रक्रिया चेतना के स्वरूप के बारे में क्या बताती है।

4. निर्णय लेने की प्रक्रियाः यह भ्रम दिखाता है कि कैसे हम अस्पष्ट या अनिश्चित जानकारी के आधार पर निर्णय लेते हैं, जो निर्णय लेने की प्रक्रिया के अध्ययन में महत्वपूर्ण है।

5. कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI): AI शोधकर्ता इस भ्रम का उपयोग ऐसे एल्गोरिदम विकसित करने के लिए करते हैं जो मानव–जैसी प्रत्यक्षण क्षमताओं का प्रदर्शन कर सकते हैं।

6. भाषा प्रसंस्करणः इस भ्रम के सिद्धांतों का उपयोग यह समझने के लिए किया जाता है कि कैसे मस्तिष्क अस्पष्ट या बहुार्थी भाषा को संसाधित करता है।

7. स्मृति अध्ययनः डक–रैबिट भ्रम यह समझने में मदद करता है कि कैसे हम जानकारी को याद रखते और पुनः प्राप्त करते हैं, विशेष रूप से जब वह जानकारी अस्पष्ट या बहुअर्थी हो।

8. क्रॉस–मॉडल प्रत्यक्षणः यह भ्रम विभिन्न संवेदी माध्यमों (जैसे दृश्य और श्रवण) के बीच संबंधों को समझने में मदद करता है।

9. विकासात्मक संज्ञानः शोधकर्ता इस भ्रम का उपयोग यह समझने के लिए करते हैं कि कैसे संज्ञानात्मक क्षमताएँ जीवन भर विकसित होती और बदलती हैं।

10. संज्ञानात्मक बायस अध्ययनः डक–रैबिट भ्रम का उपयोग यह प्रदर्शित करने के लिए किया जाता है कि कैसे हमारे पूर्वाग्रह और पूर्वधारणाएँ हमारे प्रत्यक्षण और निर्णयों को प्रभावित कर सकते हैं।

इस प्रकार, डक–रैबिट भ्रम संज्ञानात्मक विज्ञान में एक महत्वपूर्ण उपकरण है, जो मानव मन और मस्तिष्क की कार्यप्रणाली को समझने में मदद करता है।

3.7 निष्कर्ष

डक–रैबिट भ्रम, जो प्रथम दृष्टया एक साधारण दृश्य भ्रम प्रतीत होता है, वास्तव में मानव मन, प्रत्यक्षण, और वास्तविकता की हमारी समझ के बारे में गहन अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। इस भ्रम का अध्ययन हमें निम्नलिखित महत्वपूर्ण निष्कर्षों की ओर ले जाता हैः

प्रत्यक्षण की सापेक्षताः डक–रैबिट भ्रम हमें याद दिलाता है कि हमारा प्रत्यक्षण पूर्णतः वस्तुनिष्ठ नहीं है। एक ही चीज को अलग–अलग तरीकों से देखा जा सकता है, जो दर्शाता है कि वास्तविकता हमारे दृष्टिकोण पर निर्भर करती है। मस्तिष्क की सक्रिय भूमिकाः यह भ्रम दिखाता है कि हमारा मस्तिष्क सक्रिय रूप से प्राप्त जानकारी की व्याख्या करता है। प्रत्यक्षण एक निष्क्रिय प्रक्रिया नहीं है, बल्कि मस्तिष्क द्वारा किया गया एक सक्रिय निर्माण है।

ज्ञान की सीमाएँः डक–रैबिट भ्रम हमें याद दिलाता है कि हमारा ज्ञान सीमित और आंशिक हो सकता है। हम एक ही समय में सभी संभावित व्याख्याओं को नहीं देख सकते। संदर्भ का महत्वः यह भ्रम दर्शाता है कि हमारा प्रत्यक्षण संदर्भ, पूर्व अनुभव, और अपेक्षाओं से प्रभावित होता है। मन की लचीलताः हम अपने प्रत्यक्षण को बदल सकते हैं और एक व्याख्या से दूसरी में स्विच कर सकते हैं, जो मानव मन की लचीलता को दर्शाता है। बहुआयामी वास्तविकताः डक–रैबिट भ्रम सुझाव देता है कि वास्तविकता जटिल और बहुआयामी हो सकती है, एक एकल, निश्चित दृश्य के बजाय। अंतःविषय महत्वः यह भ्रम दर्शन, मनोविज्ञान, न्यूरोसाइंस, कला, और कई अन्य क्षेत्रों में महत्वपूर्ण है, जो इसके व्यापक अनुप्रयोग और महत्व को दर्शाता है। नवाचार का स्रोतः कला, डिजाइन, और प्रौद्योगिकी में, यह भ्रम नए विचारों और दृष्टिकोणों का स्रोत रहा है।

निष्कर्षतः, डक–रैबिट भ्रम हमें याद दिलाता है कि दुनिया को देखने और समझने के कई तरीके हैं। यह हमें प्रोत्साहित करता है कि हम अपने दृष्टिकोण को व्यापक बनाएं, दूसरों के दृष्टिकोणों को समझें, और वास्तविकता की जटिलताओं को स्वीकार करें। यह भ्रम न केवल एक दिलचस्प वैज्ञानिक घटना है, बल्कि एक दार्शनिक प्रतीक भी है जो हमें अपने प्रत्यक्षण और ज्ञान पर पुनर्विचार करने के लिए प्रेरित करता है।

3.8 सारांश

डक–रैबिट भ्रम एक प्रसिद्ध दृश्य भ्रम है जिसमें एक ही चित्र को दो अलग–अलग तरीकों से देखा जा सकता है – या तो एक बतख के रूप में या एक खरगोश के रूप में। यह भ्रम मनोविज्ञान, दर्शन, और संज्ञानात्मक विज्ञान में एक महत्वपूर्ण अवधारणा है। डक–रैबिट भ्रम दर्शनशास्त्र और मनोविज्ञान का एक महत्वपूर्ण अवधारणात्मक प्रयोग है जो हमारे प्रत्यक्षण की प्रकृति पर प्रकाश डालता है। यह भ्रम दर्शाता है कि कैसे एक ही चित्र को दो अलग–अलग तरीकों से देखा जा सकता है – एक बतख के रूप में या एक खरगोश के रूप में। इसकी उत्पत्ति 19वीं शताब्दी के अंत में हुई, जब जोसेफ जैस्त्रो ने इसे लोकप्रिय बनाया।

गेस्टाल्ट मनोविज्ञान के सिद्धांतों से प्रभावित, यह भ्रम बताता है कि हमारा मस्तिष्क कैसे जटिल पैटर्न को समझने के लिए सरल आकृतियों का उपयोग करता है। यह प्रत्यक्षण और वास्तविकता के बीच के संबंध पर गहन दार्शनिक प्रश्न उठाता है, जैसे कि क्या हम वास्तव में चीजों को वैसा ही देखते हैं जैसा वे हैं।

ज्ञान मीमांसा के क्षेत्र में, यह भ्रम यह प्रश्न उठाता है कि हम अपने इंद्रियों पर कितना भरोसा कर सकते हैं। यह मन और मस्तिष्क के बीच के जटिल संबंध को भी उजागर करता है, यह दर्शाता है कि हमारी मानसिक प्रक्रियाएँ हमारे प्रत्यक्षण को कैसे आकार देती हैं। यावहारिक रूप से, इस भ्रम का उपयोग मनोविज्ञान में मानसिक प्रक्रियाओं

का अध्ययन करने, कला में नए दृष्टिकोण विकसित करने, और संज्ञानात्मक विज्ञान में मस्तिष्क की कार्यप्रणाली को समझने के लिए किया जाता है।

अंत में, डक–रैबिट भ्रम हमें याद दिलाता है कि हमारा प्रत्यक्षण हमेशा निरपेक्ष नहीं होता, बल्कि यह हमारे अनुभवों, विश्वासों और मानसिक प्रक्रियाओं से प्रभावित होता है। यह हमें वास्तविकता की प्रकृति और हमारे ज्ञान की सीमाओं पर गहराई से विचार करने के लिए प्रेरित करता है।

3.9 चिंतन के लिए प्रश्न

डक–रैबिट भ्रम हमारे मानसिक प्रक्रियाओं और प्रत्यक्षण के बारे में कई गहन प्रश्न उठाता है। इन प्रश्नों पर विचार करना हमें अपने अनुभवों और वास्तविकता के बारे में गहराई से सोचने के लिए प्रेरित करता हैः

1. क्या हमारा प्रत्यक्षण वास्तविकता का सही प्रतिनिधित्व करता है?
2. हमारे पूर्व अनुभव और ज्ञान हमारे वर्तमान प्रत्यक्षण को कैसे प्रभावित करते हैं?
3. क्या हम कभी किसी चीज़ को पूरी तरह से निष्पक्ष दृष्टिकोण से देख सकते हैं?
4. मस्तिष्क कैसे एक ही समय में दो विरोधाभासी धारणाओं को संसाधित करता है?
5. डक–रैबिट भ्रम हमें ज्ञान की प्रकृति के बारे में क्या सिखाता है?
6. क्या यह भ्रम बताता है कि हमारी वास्तविकता एक मानसिक निर्माण है?
7. इस भ्रम का दैनिक जीवन में क्या महत्व है?
8. कला और विज्ञान में इस भ्रम का क्या योगदान है?

3.10 उपयोगी पुस्तकें

डक–रैबिट भ्रम के विषय पर और अधिक जानने के लिए निम्नलिखित पुस्तकें और लेख सहायक हो सकते हैं:

1. जैस्त्रो, जोसेफ. "द मांइड्स आई." पॉपुलर साइंस मंथली, वॉल्यूम 54, 1899, पृष्ठ 299–312.
2. कोहलर, वोल्फगैंग. गेस्टाल्ट साइकोलॉजीः एन इंट्रोडक्शन टू न्यू कॉन्सेप्ट्स इन मॉडर्न साइकोलॉजी. लिवराइट पब्लिशिंग कॉरपोरेशन, 1947.
3. ग्रेगरी, रिचर्ड एल. आई एंड ब्रेनः द साइकोलॉजी ऑफ सीइंग. वर्ल्ड यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी, 1966.
4. कुन, थॉमस एस. द स्ट्रक्चर ऑफ साइंटिफिक रेवोल्यूशंस. यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, 1962.

5. मर्लो–पोंटी, मौरिस. फेनोमेनोलॉजी ऑफ पर्सेप्शन. रूटलेज, 2002.

6. गोम्ब्रिच, ई.एच. आर्ट एंड इल्यूजनः ए स्टडी इन द साइकोलॉजी ऑफ पिक्टोरियल रिप्रेजेंटेशन. फाइडन, 1960.

7. डेनेट, डेनियल सी. कॉन्शसनेस एक्सप्लेंड. लिटिल, ब्राउन एंड कंपनी, 1991.

----------00000----------

इकाई 04

परिमार्जित तत्त्वमीमांसा

इकाई की रूपरेखाः

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 आधुनिक भारतीय दर्शन में तत्त्वमीमांसाः एक परिचय

4.3 आधुनिक भारतीय तत्त्वमीमांसा का अर्थ और महत्व

4.4 आधुनिक भारतीय तत्त्वमीमांसा की उत्पत्ति

4.4.1 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

4.4.2 पाश्चात्य दर्शन का प्रभाव

4.4.3 परंपरागत भारतीय दर्शन का पुनर्मूल्यांकन

4.5 आधुनिक भारतीय तत्त्वमीमांसा के मुख्य विचारक और उनके सिद्धांत

4.5.1 स्वामी विवेकानंद

4.5.2 श्री अरबिंदो

4.5.3 रवींद्रनाथ टैगोर

4.5.4 महात्मा गांधी

4.5.5 डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन

4.6 आधुनिक भारतीय तत्त्वमीमांसा की मुख्य विशेषताएँ

4.6.1 अद्वैतवाद का नवीन व्याख्यान

4.6.2 आध्यात्मिकता और भौतिकवाद का समन्वय

4.6.3 मानवतावाद और विश्वबंधुत्व

4.6.4 प्रकृति और पर्यावरण के प्रति नया दृष्टिकोण

4.7 आधुनिक भारतीय तत्त्वमीमांसा की समकालीन प्रासंगिकता

4.8 निष्कर्ष

4.9 सारांश

4.10 प्रश्न बोध

4.11 उपयोगी पुस्तकें

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य छात्रों को आधुनिक भारतीय दर्शन में तत्त्वमीमांसा के विकास, महत्व और प्रासंगिकता से परिचित कराना है। यह इकाई छात्रों को 19वीं और 20वीं शताब्दी के प्रमुख भारतीय दार्शनिकों के विचारों और उनके द्वारा प्रस्तुत तत्त्वमीमांसीय दृष्टिकोणों का गहन अध्ययन करने में मदद करेगी। इसका लक्ष्य है कि छात्र पारंपरिक भारतीय दर्शन और पाश्चात्य विचारधाराओं के बीच हुए संवाद और समन्वय को समझ सकें। साथ ही, वे आधुनिक भारतीय तत्त्वमीमांसा की विशिष्टताओं, जैसे अद्वैतवाद का नवीन व्याख्यान, आध्यात्मिकता और भौतिकवाद का समन्वय, तथा मानवतावाद और विश्वबंधुत्व के सिद्धांतों को आत्मसात कर सकें। यह इकाई छात्रों को वैश्विक संदर्भ में भारतीय दार्शनिक विचारों के योगदान और महत्व को समझने में सक्षम बनाएगी, साथ ही उन्हें समकालीन विश्व की चुनौतियों के संदर्भ में इन विचारों की प्रासंगिकता पर चिंतन करने के लिए प्रेरित करेगी।

4.1 प्रस्तावना

आधुनिक भारतीय दर्शन में तत्त्वमीमांसा एक महत्वपूर्ण और गतिशील क्षेत्र है, जो भारतीय चिंतन परंपरा और पाश्चात्य दर्शन के बीच संवाद का परिणाम है। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से शुरू होकर, यह धारा भारतीय दार्शनिक चिंतन के पुनरुत्थान और पुनर्व्याख्या का प्रतीक बनी। इस काल में भारतीय दार्शनिकों ने पारंपरिक भारतीय दर्शन की गहराइयों में उतरते हुए उसे आधुनिक संदर्भों में पुनर्व्याख्यायित किया। इस प्रक्रिया में उन्होंने पाश्चात्य दर्शन, विज्ञान और सामाजिक–राजनीतिक विचारधाराओं से भी संवाद किया। इस इकाई में हम आधुनिक भारतीय तत्त्वमीमांसा के विकास, इसके प्रमुख प्रवक्ताओं, मुख्य सिद्धांतों और समकालीन प्रासंगिकता का अध्ययन करेंगे। यह अध्ययन हमें न केवल भारतीय दर्शन की समृद्ध परंपरा को समझने में मदद करेगा, बल्कि वैश्विक दार्शनिक परिदृश्य में भारतीय चिंतन के योगदान को भी रेखांकित करेगा। साथ ही, यह हमें वर्तमान समय की जटिल चुनौतियों के संदर्भ में इन विचारों की प्रासंगिकता पर गंभीरता से विचार करने का अवसर प्रदान करेगा।

4.2 आधुनिक भारतीय दर्शन में तत्त्वमीमांसाः एक परिचय

आधुनिक भारतीय दर्शन में तत्त्वमीमांसा एक विशिष्ट और समृद्ध क्षेत्र है, जो पारंपरिक भारतीय दर्शन और पाश्चात्य विचारधाराओं के सम्मिलन से उत्पन्न हुआ है। यह धारा मुख्यतः 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से 20वीं शताब्दी के मध्य तक विकसित हुई। इस काल में भारतीय दार्शनिकों ने अपनी सांस्कृतिक विरासत और पाश्चात्य ज्ञान के बीच एक रचनात्मक संवाद स्थापित किया। इस प्रक्रिया में उन्होंने वेदांत, उपनिषद, बौद्ध दर्शन जैसी पारंपरिक अवधारणाओं को आधुनिक संदर्भ में पुनर्व्याख्यायित किया। साथ ही, उन्होंने पाश्चात्य दर्शन, विज्ञान और सामाजिक–राजनीतिक सिद्धांतों से भी संवाद किया। इस धारा के प्रमुख प्रवक्ताओं में स्वामी विवेकानंद, श्री अरबिंदो, रवींद्रनाथ टैगोर, महात्मा गांधी और डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन जैसे चिंतक शामिल हैं। इन विचारकों ने अद्वैतवाद,

आध्यात्मिकता, मानवतावाद और विश्वबंधुत्व जैसे सिद्धांतों को नए सिरे से परिभाषित किया। आधुनिक भारतीय तत्त्वमीमांसा ने न केवल भारतीय दर्शन को नया आयाम दिया, बल्कि वैश्विक दार्शनिक चिंतन को भी समृद्ध किया।

4.3 आधुनिक भारतीय तत्त्वमीमांसा का अर्थ और महत्व

आधुनिक भारतीय तत्त्वमीमांसा का अर्थ है – वास्तविकता, ज्ञान और मूल्यों के बारे में वे मौलिक प्रश्न जो आधुनिक भारतीय दार्शनिकों ने उठाए और उनके उत्तर जो उन्होंने प्रस्तुत किए। यह धारा पारंपरिक भारतीय दर्शन और आधुनिक पाश्चात्य विचारों के बीच एक सेतु के रूप में कार्य करती है। इसका महत्व कई स्तरों पर है। प्रथम, इसने भारतीय दार्शनिक परंपरा को नवीन संदर्भों में पुनर्जीवित किया, जिससे इसकी निरंतरता और प्रासंगिकता बनी रही। द्वितीय, इसने पूर्व और पश्चिम के बीच एक सार्थक संवाद स्थापित किया, जिससे वैश्विक दर्शन समृद्ध हुआ। तृतीय, इसने आधुनिक विश्व की चुनौतियों, जैसे वैज्ञानिक प्रगति, सामाजिक परिवर्तन और राजनीतिक उथल–पुथल, के संदर्भ में भारतीय चिंतन को नए सिरे से परिभाषित किया। चतुर्थ, इसने राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन और स्वतंत्र भारत के निर्माण में वैचारिक आधार प्रदान किया। पंचम, इसने विज्ञान और अध्यात्म, भौतिकवाद और आध्यात्मिकता के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। अंत में, इसने वैश्विक शांति, पर्यावरण संरक्षण और मानवीय मूल्यों जैसे समकालीन मुद्दों पर महत्वपूर्ण दृष्टिकोण प्रस्तुत किए।

4.4 आधुनिक भारतीय तत्त्वमीमांसा की उत्पत्ति

आधुनिक भारतीय तत्त्वमीमांसा की उत्पत्ति 19वीं शताब्दी के भारतीय समाज में हुए गहन परिवर्तनों की पृष्ठभूमि में हुई। यह काल भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ था, जब भारत ब्रिटिश शासन के अधीन था और पाश्चात्य शिक्षा, विज्ञान और दर्शन का प्रभाव बढ़ रहा था। इस परिस्थिति ने भारतीय बुद्धिजीवियों को अपनी सांस्कृतिक और दार्शनिक विरासत पर पुनर्विचार करने के लिए प्रेरित किया। राजा राममोहन रॉय जैसे सुधारकों ने इस प्रक्रिया की शुरुआत की, जिन्होंने पाश्चात्य तर्कवाद और भारतीय आध्यात्मिकता के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया। इसके बाद, स्वामी विवेकानंद ने वेदांत दर्शन को वैश्विक मंच पर प्रस्तुत किया और उसे आधुनिक संदर्भ में पुनर्व्याख्यायित किया। श्री अरबिंदो ने भारतीय योग परंपरा और पाश्चात्य विकासवाद के बीच एक समन्वय प्रस्तुत किया। रवींद्रनाथ टैगोर ने भारतीय संस्कृति और पाश्चात्य मानवतावाद के बीच सेतु बनाया। महात्मा गांधी ने भारतीय आध्यात्मिकता और सामाजिक–राजनीतिक कार्य को जोड़ा। डॉ. राधाकृष्णन ने भारतीय दर्शन को अकादमिक रूप से पाश्चात्य दर्शन के साथ संवाद में प्रस्तुत किया। इस प्रकार, आधुनिक भारतीय तत्त्वमीमांसा पारंपरिक और आधुनिक, पूर्व और पश्चिम के बीच एक रचनात्मक संवाद के रूप में विकसित हुई।

4.4.1 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

आधुनिक भारतीय तत्त्वमीमांसा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि 18वीं शताब्दी के अंत और 19वीं शताब्दी की शुरुआत में निहित है। इस काल में भारत ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के अधीन था, जो एक महत्वपूर्ण परिवर्तन का समय

था। ब्रिटिश शासन ने भारत में पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली की शुरुआत की, जिसने भारतीय बुद्धिजीवियों को पाश्चात्य ज्ञान और विचारधाराओं से परिचित कराया। इसी दौरान, प्राच्यविदों ने प्राचीन भारतीय ग्रंथों का अध्ययन और अनुवाद शुरू किया, जिससे भारतीय बौद्धिक परंपरा का पुनःआविष्कार हुआ। इस पृष्ठभूमि में, भारतीय समाज में सुधार आंदोलन शुरू हुए, जैसे ब्रह्म समाज और आर्य समाज, जिन्होंने पारंपरिक भारतीय मूल्यों और आधुनिक विचारों के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। साथ ही, राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन की शुरुआत ने भारतीय पहचान और स्वाभिमान के प्रश्नों को उठाया। इन सभी कारकों ने मिलकर एक ऐसा वातावरण तैयार किया जहाँ भारतीय चिंतक अपनी परंपराओं और आधुनिक विचारों के बीच संवाद स्थापित कर सकें। इस प्रक्रिया में, उन्होंने न केवल पाश्चात्य दर्शन का गहन अध्ययन किया, बल्कि अपनी दार्शनिक विरासत को भी नए दृष्टिकोण से देखा। यह ऐतिहासिक पृष्ठभूमि आधुनिक भारतीय तत्त्वमीमांसा के विकास के लिए उर्वर भूमि बनी, जिसमें परंपरा और आधुनिकता का अद्वितीय संगम देखने को मिला।

4.4.2 पाश्चात्य दर्शन का प्रभाव

पाश्चात्य दर्शन का प्रभाव आधुनिक भारतीय तत्त्वमीमांसा के विकास में महत्वपूर्ण रहा है। ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली के माध्यम से भारतीय बुद्धिजीवियों को प्लेटो, अरस्तू, कांट, हेगेल जैसे पाश्चात्य दार्शनिकों के विचारों से परिचय मिला। इसने उन्हें अपने दर्शन को नए दृष्टिकोण से देखने और व्याख्या करने का अवसर दिया। उदाहरण के लिए, स्वामी विवेकानंद ने अद्वैत वेदांत की व्याख्या में हेगेल के द्वंद्वात्मक दर्शन का प्रभाव दिखाया। श्री अरबिंदो ने डार्विन के विकासवाद को भारतीय आध्यात्मिक विकास के सिद्धांत में समाहित किया। राधाकृष्णन ने भारतीय दर्शन को पाश्चात्य दार्शनिक शब्दावली में प्रस्तुत किया। पाश्चात्य तर्कवाद और वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने भारतीय चिंतकों को अपने दर्शन को अधिक व्यवस्थित और तार्किक ढंग से प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित किया। हालांकि, यह प्रभाव एकतरफा नहीं था; भारतीय दार्शनिकों ने पाश्चात्य विचारों का आलोचनात्मक मूल्यांकन भी किया और कई मामलों में उनकी सीमाओं को रेखांकित किया।

4.4.3 परंपरागत भारतीय दर्शन का पुनर्मूल्यांकन

आधुनिक भारतीय तत्त्वमीमांसा में परंपरागत भारतीय दर्शन का पुनर्मूल्यांकन एक केंद्रीय प्रक्रिया रही है। इस काल के दार्शनिकों ने वेद, उपनिषद, भगवद्गीता, और दर्शनशास्त्र जैसे प्राचीन ग्रंथों का गहन अध्ययन किया और उन्हें आधुनिक संदर्भ में पुनर्व्याख्यायित किया। उदाहरण के लिए, स्वामी विवेकानंद ने अद्वैत वेदांत को व्यावहारिक और सामाजिक रूप से प्रासंगिक बनाया। श्री अरबिंदो ने वैदिक दर्शन को आधुनिक मनोविज्ञान और विकासवाद के साथ जोड़ा। महात्मा गांधी ने गीता के कर्मयोग को राजनीतिक और सामाजिक कार्य से जोड़ा। इस प्रक्रिया में, इन चिंतकों ने न केवल प्राचीन विचारों को नया जीवन दिया, बल्कि उन्हें वैश्विक दर्शन के साथ संवाद में लाया। यह पुनर्मूल्यांकन भारतीय दर्शन को जड़ परंपरा से मुक्त कर उसे गतिशील और समकालीन बनाने का प्रयास था। इसने

भारतीय दर्शन को आधुनिक विश्व की चुनौतियों का सामना करने में सक्षम बनाया और उसकी वैश्विक प्रासंगिकता को रेखांकित किया।

4.5 आधुनिक भारतीय तत्त्वमीमांसा के मुख्य विचारक और उनके सिद्धांत

आधुनिक भारतीय तत्त्वमीमांसा के विकास में कई प्रमुख विचारकों का योगदान रहा है। स्वामी विवेकानंद ने अद्वैत वेदांत को आधुनिक संदर्भ में प्रस्तुत किया और धर्म के व्यावहारिक पहलू पर जोर दिया। उन्होंने सार्वभौमिक धर्म और मानव एकता के विचार को प्रतिपादित किया। श्री अरबिंदो ने अतिमानस की अवधारणा प्रस्तुत की और आध्यात्मिक विकासवाद का सिद्धांत दिया। उन्होंने भौतिक और आध्यात्मिक जीवन के समन्वय पर बल दिया। रवींद्रनाथ टैगोर ने मानवतावाद और प्रकृति के साथ मानव के संबंध पर अपने विचार रखे। उन्होंने विश्वमानवता और सांस्कृतिक समन्वय के सिद्धांत को आगे बढ़ाया। महात्मा गांधी ने सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों को राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में लागू किया। उन्होंने कर्मयोग को व्यावहारिक जीवन में उतारा। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने भारतीय दर्शन को पाश्चात्य दर्शन के साथ तुलनात्मक रूप से प्रस्तुत किया और आध्यात्मिक मानवतावाद का विचार दिया। इन सभी विचारकों ने भारतीय तत्त्वमीमांसा को नए आयाम दिए और उसे वैश्विक स्तर पर प्रासंगिक बनाया।

4.6 आधुनिक भारतीय तत्त्वमीमांसा की मुख्य विशेषताएँ

आधुनिक भारतीय तत्त्वमीमांसा की कुछ प्रमुख विशेषताएँ हैं जो इसे विशिष्ट बनाती हैं। पहली है अद्वैतवाद का नवीन व्याख्यान, जिसमें एकता और विविधता के बीच संतुलन स्थापित किया गया है। दूसरी है आध्यात्मिकता और भौतिकवाद का समन्वय, जहाँ आध्यात्मिक मूल्यों को भौतिक प्रगति के साथ जोड़ा गया है। तीसरी विशेषता है मानवतावाद और विश्वबंधुत्व का सिद्धांत, जो सभी मनुष्यों की एकता और समानता पर बल देता है। चौथी है प्रकृति और पर्यावरण के प्रति नया दृष्टिकोण, जो मानव और प्रकृति के बीच सामंजस्य पर जोर देता है। पांचवीं विशेषता है धर्म और विज्ञान का समन्वय, जहाँ वैज्ञानिक दृष्टिकोण को आध्यात्मिक अनुभव के साथ जोड़ा गया है। छठी है व्यक्तिगत और सामाजिक नैतिकता का संतुलन, जो व्यक्तिगत विकास और सामाजिक उत्तरदायित्व पर समान बल देता है। सातवीं विशेषता है सार्वभौमिक धर्म का विचार, जो सभी धर्मों की मूल एकता पर जोर देता है। ये विशेषताएँ आधुनिक भारतीय तत्त्वमीमांसा को एक समग्र और समन्वयात्मक दृष्टिकोण प्रदान करती हैं।

4.7 आधुनिक भारतीय तत्त्वमीमांसा की समकालीन प्रासंगिकता

आधुनिक भारतीय तत्त्वमीमांसा की समकालीन प्रासंगिकता कई स्तरों पर देखी जा सकती है। वैश्वीकरण के युग में, इसका विश्वबंधुत्व का सिद्धांत अंतरराष्ट्रीय समझ और शांति के लिए महत्वपूर्ण है। पर्यावरण संकट के समय में, इसका प्रकृति के साथ सामंजस्य का दृष्टिकोण पर्यावरण संरक्षण के प्रयासों को प्रेरित कर सकता है। तकनीकी प्रगति के युग में, इसका आध्यात्मिकता और भौतिकवाद के समन्वय का विचार संतुलित विकास का मार्ग दिखा

सकता है। बढ़ते सांप्रदायिक तनाव के बीच, इसका सार्वभौमिक धर्म का सिद्धांत धार्मिक सहिष्णुता को बढ़ावा दे सकता है। व्यक्तिवाद के युग में, इसका व्यक्तिगत और सामाजिक नैतिकता का संतुलन सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना जगा सकता है। वैज्ञानिक प्रगति के समय में, इसका धर्म और विज्ञान के समन्वय का दृष्टिकोण दोनों क्षेत्रों के बीच सार्थक संवाद को प्रोत्साहित कर सकता है। इस प्रकार, आधुनिक भारतीय तत्त्वमीमांसा समकालीन विश्व की कई चुनौतियों के लिए प्रासंगिक दृष्टिकोण और समाधान प्रस्तुत करती है।

4.8 निष्कर्ष

आधुनिक भारतीय तत्त्वमीमांसा भारतीय दार्शनिक चिंतन की एक महत्वपूर्ण धारा है जो परंपरा और आधुनिकता के बीच सेतु का काम करती है। यह न केवल प्राचीन भारतीय दर्शन का पुनर्मूल्यांकन है, बल्कि उसे समकालीन संदर्भ में पुनर्व्याख्यायित करने का प्रयास भी है। इसने भारतीय दर्शन को वैश्विक मंच पर प्रासंगिक बनाया है और पूर्व–पश्चिम संवाद में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इसकी प्रमुख विशेषताएँ – अद्वैतवाद का नवीन व्याख्यान, आध्यात्मिकता और भौतिकवाद का समन्वय, मानवतावाद और विश्वबंधुत्व – आज भी प्रासंगिक हैं और वैश्विक चुनौतियों के समाधान में मदद कर सकती हैं। हालांकि, यह भी महत्वपूर्ण है कि इस धारा की आलोचनात्मक समीक्षा की जाए और इसे आगे विकसित किया जाए ताकि यह 21वीं सदी की जटिल वास्तविकताओं का सामना कर सके। अंत में, आधुनिक भारतीय तत्त्वमीमांसा हमें याद दिलाती है कि दर्शन केवल अकादमिक चर्चा का विषय नहीं है, बल्कि जीवन के व्यावहारिक पहलुओं से जुड़ा होना चाहिए। यह हमें एक ऐसे दृष्टिकोण की ओर ले जाती है जो वैश्विक और स्थानीय, व्यक्तिगत और सामूहिक, भौतिक और आध्यात्मिक के बीच संतुलन स्थापित करता है। इस प्रकार, आधुनिक भारतीय तत्त्वमीमांसा न केवल भारतीय दर्शन का एक महत्वपूर्ण अध्याय है, बल्कि वैश्विक दार्शनिक चिंतन में भारत का एक महत्वपूर्ण योगदान भी है।

4.9 सारांश

आधुनिक भारतीय तत्त्वमीमांसा 19वीं और 20वीं शताब्दी के दौरान विकसित हुई एक दार्शनिक धारा है जो पारंपरिक भारतीय दर्शन और पाश्चात्य विचारों के बीच संवाद का परिणाम है। इसकी उत्पत्ति ब्रिटिश शासन के दौरान हुई सामाजिक–राजनीतिक परिवर्तनों और बौद्धिक जागरण से जुड़ी है। प्रमुख विचारकों जैसे स्वामी विवेकानंद, श्री अरबिंदो, रवींद्रनाथ टैगोर, महात्मा गांधी और डॉ. राधाकृष्णन ने इस धारा को आकार दिया। इसकी मुख्य विशेषताओं में अद्वैतवाद का नवीन व्याख्यान, आध्यात्मिकता और भौतिकवाद का समन्वय, मानवतावाद और विश्वबंधुत्व शामिल हैं। यह धारा पारंपरिक भारतीय दर्शन का पुनर्मूल्यांकन करते हुए उसे आधुनिक संदर्भ में प्रासंगिक बनाने का प्रयास करती है। इसकी समकालीन प्रासंगिकता वैश्वीकरण, पर्यावरण संरक्षण, धार्मिक सहिष्णुता और नैतिक मूल्यों जैसे क्षेत्रों में देखी जा सकती है। यह धारा भारतीय दर्शन को वैश्विक स्तर पर प्रतिष्ठित करने में महत्वपूर्ण रही है और आज भी वैश्विक चुनौतियों के समाधान में योगदान दे सकती है।

4.10 प्रश्न बोध

1. आधुनिक भारतीय तत्त्वमीमांसा की उत्पत्ति और विकास पर प्रकाश डालिए।
2. स्वामी विवेकानंद के दार्शनिक योगदान की विवेचना कीजिए।
3. आधुनिक भारतीय तत्त्वमीमांसा में आध्यात्मिकता और भौतिकवाद के समन्वय को कैसे देखा गया है? उदाहरण सहित समझाइए।
4. आधुनिक भारतीय तत्त्वमीमांसा की समकालीन प्रासंगिकता पर एक निबंध लिखिए।
5. श्री अरबिंदो के 'अतिमानस' की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
6. महात्मा गांधी के दार्शनिक विचारों का मूल्यांकन कीजिए।
7. आधुनिक भारतीय तत्त्वमीमांसा में मानवतावाद और विश्वबंधुत्व के सिद्धांत की व्याख्या कीजिए।
8. डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के दार्शनिक योगदान पर एक टिप्पणी लिखिए।
9. आधुनिक भारतीय तत्त्वमीमांसा में परंपरागत भारतीय दर्शन के पुनर्मूल्यांकन की प्रक्रिया को समझाइए।
10. क्या आधुनिक भारतीय तत्त्वमीमांसा वर्तमान वैश्विक चुनौतियों का सामना करने में सक्षम है? अपने विचार व्यक्त कीजिए।

4.11 उपयोगी पुस्तकें

1. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली. "भारतीय दर्शन." राजपाल एंड सन्स, 2018.
2. शर्मा, चंद्रधर. "भारतीय दर्शनः आलोचना और अनुशीलन." मोतीलाल बनारसीदास, 2015.
3. दासगुप्ता, सुरेंद्रनाथ. A History of Indian Philosophy" Cambridge University Press, 2009.
4. चट्टोपाध्याय, देबीप्रसाद. "Indian Philosophy A Popular Introduction" People's Publishing House, 1993.
5. मूर्ति, के. सत्चिदानंदा. "Revelation and Reason in Advaita Vedānta." "Columbia University Pre. 1959.
6. सिंह, रामजी. "भारतीय दर्शन की रूपरेखा." मोतीलाल बनारसीदास, 2017.
7. हिरियन्ना, एम. "Outlines of Indian Philosophy" Motilal Banarsidass, 2005.
8. द्विवेदी, कपिल. "आधुनिक भारतीय चिंतन." राजकमल प्रकाशन, 2016.
9. रॉय, राममोहन. "The English Works of Raja Rammohun Roy" Cosmo Publications, 1982.
10. विवेकानंद, स्वामी. "The Complete Works of Swami Vivekananda" Advaita Ashrama, 2013.

Uttar Pradesh Rajarshi Tandon
Open University

MAPH-114 (N)

समकालीन धार्मिक समस्याएं

खण्ड -2 धार्मिक सहिष्णुता 45

इकाई-5 सहिष्णुता की जड़े 49

इकाई-6 सहिष्णुता के विभिन्न अर्थ 58

इकाई-7 सहिष्णुता के साधन 65

इकाई-8 सहिष्णुता के आधार स्तंभ 72

खण्ड - 2

धार्मिक सहिष्णुता

खण्ड परिचय -

धर्म एक व्यापक शब्द है। जब हम इसके दार्शनिक निकस की बात करते हैं तो पाते हैं कि यह मौलिक कर्त्तव्य या मूलकर्त्तव्य या मूलगुण है। धार्मिक सहिष्णुता का यदि हम साधारण अर्थ ग्रहण करे तो वह सहनशील भाव जो अन्य धार्मिक सम्प्रदायों को मानने वालों के प्रति दिखाया जाय। मनुष्य एक सामाजिक प्राजी है। समाज में रहते हुए वह विभिन्न प्रकार के उपागमों में लिप्त रहता है। चूंकि वह जिज्ञासु भी है अत: उसके मन में धर्म के प्रति तरह-तरह की जिज्ञासा का उदय होता रहता है। हम विश्व में अनेक धर्मों के अस्तित्व का ज्ञान है। प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय अपने रीतिरिवाज के आधार पर सामाजिक क्रियान्वयनों को संयाकित करता रहता है। मनुष्य के अन्दर यह भाव भी व्याप्त रहता है कि वह जिस रीति-रिवाय युक्त धार्मिक सम्प्रदाय का पालन कर रहा है वही सबसे उपयुक्त और अच्छा है। जब प्रत्येक सामाजिक समुदाय अपने-अपने धर्म के प्रति यही भाव रखता है तो उसमें संघर्ष होता है। इसी संघर्ष को कम करने या खत्म करने के लिए धार्मिक सहिष्णुता हमें यह बाती है कि भले ही हम अपने जीवन में व्याप्त धार्मिक घटनाओं को सर्वोत्तम स्वीकार करे परन्तु अन्य धर्मों के प्रति कुटुता का भाव न रखें। कटुता विहीन धार्मिक आचरण ही धार्मिक सहिष्णुता जैसी अवधारणा का परिपोषक है। प्रस्तुत खण्ड में धार्मिक सहिष्णुता के अर्थस्वरूप वर्तमान समय में धार्मिक कटटरता को दूर करने, सभी धर्मों के प्रति समभाव रखने, दूसरे सम्प्रदाय के धर्म के प्रति सहनशीलता का भाव रखने तथा सभी धर्मों के अलग-अलग व्याप्त सम्प्रदायों को सुअवसर प्रदान करने, सविस्तार धर्म के प्रति समर्पण भाव रखकर सभी धर्मों के प्रति सहिष्णु भाव प्रकट करने की व्याख्या से प्रेरित है।

वस्तुत: यह अनादिकाल से ही देखा गया है कि मनुष्य की जिज्ञासा और विवके उसे अन्य प्राणियों से अलग करती है। सभ्यता की यात्रा क्रम में यह प्रारम्भ से ही देखा गया है कि मानव किसी न किसी धार्मिक सम्प्रदाय के अधीन रहकर ही अपना जीवन-यापन करता रहा है। आदिम धर्म से लेकर आधुनिक ईश्वरवाद तथा उससे भी आगे बढ़कर मानवतावाद तक यही परम्परा देखने को मिलती रही है। यदि वैदिक परम्परा की बात भी जाय तो यह मिलता है कि एक ही सत् है जिसे लोग विभिन्न रूप देते हैं -

एकं सत्विप्रा वहुधा वदन्ति।

सामान्यत: मनुष्य में ऐसी अवधारणा या प्रेरणा डाल दी गयी है कि वह ईश्वर को खोजे और उसे प्राप्त करने का प्रयास करे। मनुष्य सदैव इसी में संतान रहता है। यही कारण है मनुष्य के भीतर सदैव धर्म की आग जकती रहती है। सामान्य रूप से यह भी कहा जा सकता है कि यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि मानव में पूर्ण हो जाने की महती उत्प्रेरणा पायी जाती है और वह सतत् इसके किए प्रयास करता रहता है।

धर्म एवं धार्मिक सम्प्रदाय का पालन करते-करते जब-जब इस बात का लोगों को भान हो जाता है कि सभी धर्म सापेक्ष और अधूरे है तो लोगों में सभी धर्मों के प्रति एक उदार भाव उत्पन्न होता है। इसे ही हम धार्मिक

सहिष्णुता का भाव कह सकते है। धार्मिक सहिष्णुता से अभिप्राय यह है कि अपने से भिन्न किसी भी अन्य धर्म के अनुयायियों को परेशान न करना, उन्हें उनके धर्मों की रीतियों के पालन करने में पूरी छूट प्रदान करना। धार्मिक सहिष्णुता धर्म की आध्यात्मिकता की परिपक्वता एवं बौद्धिक व्यापकता के साथ-साथ उदारता का भी परियापक होती है। धार्मिक सापेक्षता के माध्यम से यह ज्ञान होता है कि सभी धर्मों में कुछ-न-कुछ ऐसे तत्व अवश्यमेव ही होते हैं जो सभी धर्मों के अनुयाथियों को लाभ पहुँचा सकते हैं। हम कह सकते हैं कि धार्मिक सहिष्णुता के आधार पर ही धर्मों की पारस्परिक संगोष्ठी निर्भर करती है। जब यह लोगों को प्रतीत हो जाता है कि सभी धर्म अधूरे और सापेक्ष हैं तो लोगों को सभी धर्मों के प्रति एकरूपता का भान होता है और सभी धर्मों के प्रति एक ऐसे भाव का जन्म होता है जिसमें उदारता सन्निहित होती है। चूंकि सभी मानवों की सभ्यता, परम्परा, सभ्यता संस्कृति एक समान नहीं पायी जाती है अत: हमें भगवतगीता के उद्धरण से यह शिक्षा प्राप्तम होती है कि विभिन्न प्रकार के व्रूक्ति अवश्य होंगे और उनकी मानसिक प्रकृति के अनुसार देवता और उसी अनुरूप धर्म भी विभिन्न प्रकार के होंगे। चूंकि धर्म मानव का स्वभावगण है इसलिए धर्म के बिना मानव नहीं रह सकता है।

अत: धर्म में निहित स्पर्धा तथा अन्य धर्मों के प्रति विरोध भाव को कम किया जा सकता है, कम से कम चिन्तन स्तर पर भेदभाव दूर करने का प्रयास किया जा सकता है। चिन्तन स्तर को व्यावहारिक स्वरूप प्रदान करने के लिए आवश्यक है कि सभी धर्मों में निहित विचारों की जानकारी सभी मानवों को हो और वे सभी अन्य धर्मों में वर्णित मनोभावों का भी सम्मान करें।

धार्मिक सहिष्णुता की अवधारणा यदि वास्तव में देखी जाय तो सामाजिक एवं धार्मिक वैमनस्यता दूर करने का सबसे सटीक एवं उपयुक्त उपाय दिखायी देता है। वर्तमान समय में तो इसकी अत्यन्त ही आवश्यकता है। यदि देखा जाय तो पूर्व में और वर्तमान में बहुत से युद्ध धर्म के सन्दर्भ में लड़े जा रहे हैं। मेरा धर्म सबसे अच्छा का भाव यदि युद्ध का कारक बन सकता है तो मेरे धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों में सच्चाई है का भाव उन युद्धों को बिराम भी दे सकता है। धार्मिक सहिष्णुता की विचारधास समाज में व्याप्त उन धार्मिक बुराइयों पर नियन्त्रण कर सकती है जो कि चुनौती के रूप में विद्यमान हैं। हम ईकाइयों के अध्ययन में यह देखेंगें कि धार्मिक सहिष्णुता की आवश्यकता क्यों पड़ी? धार्मिक सहिष्णुता किस प्रकार स्थापित की जा सकती है एवं धार्मिक सहिष्णुता को स्थापित करने में हमें किस प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है? धार्मिक सहिष्णुता की जड़े कहाँ से प्रारम्भ होती हैं? धार्मिक सहिष्णुता के विभिन्न प्रकार के अर्थों, इत्यादि का अध्ययन हम इकाईयों में करेगें।

इकाई – 05

सहिष्णुता की जड़े

इकाई की रूपरेखा -

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 धार्मिक सहिष्णुता का अवधारणात्मक परिचय

5.3 धार्मिक सहिष्णुता अवधारणा का उदय

5.4 धार्मिक सहिष्णुता एवं धार्मिक एकता

5.5 धार्मिक सहिष्णुता एवं सर्वधर्म समन्वय

5.6 धार्मिक सहिष्णुता के अर्थ

5.7 धार्मिक सहिष्णुता का भौतिक स्वरूप

5.8 धार्मिक सहिष्णुता के उपाय

5.9 धार्मिक सहिष्णुता की सम्भावना

5.10 धर्म एवं धार्मिक सहिष्णुता-वर्तमान परिपेक्ष्य में

5.11 धार्मिक सहिष्णुता में बाधाएं

5.12 धर्म सापेक्षता एवं धार्मिक सहिष्णुता

5.13 धार्मिक सहिष्णुता का व्यापक दृष्टिकोण

5.14 निष्कर्ष

5.15 सारांश

5.16 प्रश्न बोध

5.17 उपयोगी पुस्तकें

5.0 उद्देश्य

यह निर्विवाद सत्य है कि प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी धर्म या धार्मिक सम्प्रदाय की रीतियों को मानने वाला होता ही है। वह एक अतीन्द्रिय सत्ता में आस्था एवं विश्वास प्रकट करता है। मनुष्यों ने उसी आस्था एवं विकास को लेकर विभिन्न धर्मों की सृष्टि की है। विभिन्न देशों में बंटा हुआ मानव अपने-अपने धर्म की वृद्धि के लिए निरन्तर प्रयास करता रहता है। स्वधर्म विकास एवं उसी धर्म की प्रधानता को स्वीकार कराने की चाह समाज एवं राष्ट्र में संघर्ष उत्पन्न करती है और सामाजिक अराजकता, साम्प्रयिकता, साम्प्रदायिक संघर्ष, उन्मेष, अवसाद एवं हिंसा का उदय होता है। प्रस्तुत खण्ड धार्मिक सहिष्णुता का उद्देश्य हमें इस बात का अध्ययन करने की ओर संकेत करता है कि क्या कोई ऐसा उपाय है जिसमें ऊपर वर्णित समस्याओं का कमोवेश समाधान हो सके।

इस ईकाई का मुख्य उद्देश्य है कि हम धार्मिक सहिष्णुता की अवधारणा, उसके अर्थ एवं उत्पत्ति विषयक विचारों को समझ सकें। आगे हम सहिष्णुता के विभिन्न अर्थ, ऐतिहासिक विकास, धार्मिक सहिष्णुता की सम्भावना एवं इसकी आवश्यकता पर चर्चा करेंगे इसके अलावा हम यह भी समझने का प्रयास करेंगे कि वर्तमान समय में धर्मों की प्रतिस्थापना और वर्चस्व को लेकर जो विद्वेष पूर्ण परिस्थितियाँ है, उनका निदान कैसे किया जाय। अन्त में यह ईकाई छात्र-छात्राओं धर्म व धार्मिक सहिष्णुता के विचारों की आलोचनात्मक समझ विकसित करने में मदद करेंगी जो उन्हें धर्म एवं समाज के बारे में अपने स्वयं के विचारों को आकार देने में सहायक होगी।

5.1 प्रस्तावना

धर्म भारतीय दर्शन का वह आधार बिन्दु है जो मनुष्यों को सच्चे अर्थों में उसके जीवन का उद्देश्य बताने में सहायक होता है और इसीलिए मानव जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। वस्तुत: धार्मिक सहिष्णुता की यह ईकाई हमें यह बताने का प्रयास करती है कि विभिन्न धर्मों में एक स्वर से शान्ति, प्रेम, सहभाव, सत्मार्ग, सदाचरण, सेवा त्याग इत्यादि की शिक्षा दी जाती है तो संघर्ष, हिंसा एवं धार्मिक वैचारिक मतभेद क्यों होते रहते हैं जिससे कि मानव सामाजिक जीवन कष्टमय एवं अशान्त हो जाता है।

कोई भी धर्म ऐसा नहीं है जो मानवीय गुणों के स्वभाव के अथवा स्वाभाविक आचरण के विरूद्ध उपदेश देता हो। इसी सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि - "धर्म कहीं बाहर से नहीं आता बल्कि व्यक्ति के आभ्यन्तर से ही उदित होता है।" मेरी यह आस्था है कि धर्म के विचार मनुष्य की रचना में ही सन्निहित हैं और यह बात इस सीमा तक सत्य हैं कि चाहकर भी मनुष्य धर्म का त्याग तब तक नहीं कर सकता जब तक उसका शरीर, मन, मस्तिष्क एवं जीवन है। इसीलिए अपने-अपने धर्म की प्रधानता को स्थापित करने के लिए विश्व में जितना रक्तपात, द्वेष, घृणा, उपद्रव, तनाव धर्म के कारण हुआ है, और हो रहा है उतना अन्य किसी कारण से नही। प्रस्तुत ईकाई में धर्म हम सर्वधर्म समन्वय , अन्य धर्मों के प्रति सहनशील भाव, धार्मिक एकता इत्यादि की सम्भावनाओं पर वैचारिक

चर्चा करेंगे जो कि छात्रों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी और और वे अपने भविष्य जीवन में इसका अनुप्रयोग करते हुए बुराइयों से बचने का प्रयास कर सकते है।

5.2 धार्मिक सहिष्णुता का अवधारणात्मक परिचय

मनुष्य विवेकशील प्राणी है और निरन्तर अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए कार्य करता रहता है। मनुष्य के जीवन की महत्वपूर्ण कड़ी धर्म है जिसको वह कभी छोड़ नहीं सकता है। धर्म के आपसी संघर्षों के विराम के लिए एक ऐसी विचारधारा या अवधारणा का होना अतिआवश्यक है जो कि मनुष्यों को यह बता सके कि संसार में सभी धार्मिक सम्प्रदाय वही शिक्षा देते हैं जो मानव जीवन की सामाजिक उन्नतिशीलता एवं आचरण के लिए सर्वथा उपयुक्त होती है। यह इकाई इस विचारों से भी संकलित है कि क्या संसार में कोई ऐसा धर्म हो सकता है जो कि सभी धर्मों की वैचारिकता को एक साथ समन्वित कर सके? क्या सभी मानव द्वारा आचरित धर्मों को एक सूत्र में बाधा जा सकता है? धार्मिक सहिष्णुता की अवधारणा उसी प्रश्न का सटीक उत्तर है। यह अवधारणा यह व्यक्त करती है कि केवल सहिष्णुता के आधार पर ही मनुष्य समदर्शी ही सकता है। सबको समान देखने या समझने के लिए विषम दृष्टि का त्याग आवश्यक है। इस दृष्टि के कारण ही ऊँच-नीच का भेदभाव उत्पन्न होता है तथा इसी भाव से ही हिंसा आदि को प्रश्रय मिलता है।

अतः इस भाव का त्याग करना आवश्यक है और यह त्याग तभी सम्भव है जब हम धार्मिक सहिष्णुता की अवधारणा को स्वीकार करें। धार्मिक सहिष्णुता को अवधारणा के रूप में स्वीकार करना एवं इसका अध्ययन इसलिए भी महत्वपूर्ण हो जाता है कि जब तक यह ऐसे स्वरूप में प्रस्तुत नहीं होती तब तक समाज के प्रत्येक व्यक्ति को धर्म के सटीक एवं धर्म में उदारता एवं सहनशीलता के भाव का पूर्ण ज्ञान नहीं हो सकता है। इसीलिए धार्मिक सहिष्णुता का अवधारणात्मक अध्ययन छात्रों के लिए आवश्यक है। यह अवधारणा सर्व–धर्म आदि, समभाव, सहभाव, सहनशीलता तथा उदारता की तरफ मानव कर्मों को प्रेरित करती है।

5.3 धार्मिक सहिष्णुता . आधारणा का उदय

हालाँकि मनुष्य की चिन्तनशीलता उसके उत्पत्ति काल से ही है परन्तु ज्ञानोदय की कुछ ऐसी समस्याएं जिसमें धर्म भी है, के समाधान की चर्चा 1600 के दशक में शुरू हुई जब राजनीति एवं धर्मनीति अनाचरण के भाव से प्रकट होने लगी थी मनुष्य को व्यक्ति समझा जाने लगा था तो कुछ टिप्पड़ी कारों ने धार्मिक सहिष्णुता के सिद्धातों को तैयार करना और इसके आधार पर अवधारणात्मक कानूनी संहिताओं को बक देना शुरू किया था। धार्मिक असहमति के प्रति राज्य की नीति के उत्तर के रूप में धार्मिक सहिष्णुता नागरिक सहिष्णुता के बीच एक अन्तर विकसित सिद्धान्त के रूप में प्रस्फुटित हुआ। यदि हम धार्मिक सहिष्णुता विचारधारा की ऐतिहासिक यात्रा देखें तो सहिष्णुता से सम्बन्धित अधिकांश घटनाओं, लेखों में प्रमुख राज्य धर्म के सम्बन्ध में अल्पसंख्यक की स्थिति असहमतिपूर्ण दृष्टिकोण शामिल हैं, हालाँकि धर्म समाजशास्त्रीय भी है और सहनशीलता के अभ्यास का हमेशा एक राजनैतिक पहलू भी रहा है।

सहिष्णुता के उदय की बात करें तो हमें प्राप्त होता है कि जिस इतिहास और विभिन्न संस्कृतियों का अवलोकन, जिसमें सहिष्णुता का अभ्यास किया गया है और जिन तरीकों से इस तरह की विरोधाभासी अवधारणा एक मार्गदर्शक के रूप में विकसित हुई है। यदि हम इस - अवधारणा के उदय की बात को तो पुरातन काल में धार्मिक सहिष्णुता को फारस के अचमेनिद सम्प्रदाय की उल्लेखनीय विशेषता के रूप में वर्णित किया गया है जिसके उदाहरण स्वरूप साइरस द ग्रेट ने विभिन्न शहरों के सभी धर्मों से सम्बन्धित पवित्र स्थानों के जीर्णोद्धार में सहायता की। साइरस के बारे में कहा जाता है कि उसने 539-530 ईसा पूर्व में यहूदियों को बेवीलोन की कैद से मुक्त किया था और उन्हें अपने वतन लौटने की भी अनुमति दी थी। इसी प्रकार के अन्य उदाहरण मध्य युग, बौद्ध एवं जैन धर्मों में सहिष्णुता सन्दर्भित मिलते हैं जो कि यह दर्शाती है कि सहिष्णुता की मांग उसी समय से है जब से धर्मों के मध्य संघर्ष या अपने ही धर्म को प्रधान मानने की प्रकृति है।

5.4 धार्मिक सहिष्णुता एवं धार्मिक एकता

सभी धार्मिक सम्प्रदाय एक ही शक्तिशाली परमतत्व की उपासना करते हैं। उपासना पद्धति अलग–अलग हो सकती है या होती भी है। चूंकि परमतत्व असीम एवं अनन्त है अत: ऐसा भी हो सकता है धर्म के विभिन्न सम्प्रदाय एक ही तत्व तक पहुँचने के सम्प्रदाय है। नाम में एवं पथ में भेद है किन्तु अभीष्ट में भेद नहीं है। मार्गों में भिन्नता हो सकती है परन्तु लक्ष्य एक ही है। इस अनन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति का जो मार्ग है वह सहिष्णुता का भाव है। डॉ राधाकृष्णन का कथन है कि सभी धर्मों का उद्देश्य सर्वोच्च सत्ता-आत्मा की उपलब्धि है।

सभी मार्गों से एक ही अजर एवं अमर आत्मा की उपलब्धि तभी सम्भव है जब हम सभी धर्मों के प्रति उदारभाव रखें। धर्म का केन्द्र बिन्दु मूल्य है। धार्मिक मूल्य स्वाभाविक एवं आध्यात्मिक दोनों हुआ करते हैं और यही कारण हैं संसार और अध्यात्म दोनों का कल्याण धर्म के कारण होता है। अहिंसा, ब्रह्मचर्य, सत्य, अस्तेय इत्यादि मूल्यों का निषेध नहीं किया जा सकता है। विभिन्न धर्मों के परिपोषित विभिन्न मार्गों का यदि समन्वय हो जाय तो धार्मिक एकता सम्भव हो सकती है और यह धार्मिक समन्वय केवल उसी दशा में हो सकता है जब प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय अन्य धार्मिक सम्प्रदाय के प्रति समभाव एवं उदारता का भाव रखे। अतः धार्मिक एकता तथा सर्वधर्मसमन्वय कभी भी धार्मिक सहिष्णुता के बिना नहीं हो सकता है।

5.5 धार्मिक सहिष्णुता एवं सर्व धर्म समन्वय

सभी धर्मों का मूल सिद्धान्त एक है तो क्या ऐसा भी हो सकता है कि सभी धर्म समन्वित हो जाय। यह कल्पना ही प्रतीत होती हैं क्योंकि कि प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय अपने ही धर्म को बड़ा बताने एवं विश्वधर्म के योग्य होने का दावा करता है। इसके लिए त्याग की आवश्यकता होगी कि वह सभी धर्मों के मूल गन्तव्य के आधार पर धार्मिक आचरण करना शुरू करे। डॉ. भगवान दास ने भी डॉ. राधाकृष्णन के समान ही विचार रखते हुए कहा है कि ''जब तक मानव धार्मिक एकता को स्वीकार नहीं करेगा तब तक वह आन्तरिक प्रेम में नहीं बंध सकता है।''

जिस प्रकार मानव समाज का संगठन आवश्यक है उसी प्रकार उसके लिए धार्मिक एकता आवश्यकता है। उनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'समन्वय' है जिसमें उन्होंन कहा हैं कि जब तक सभी धर्मों के प्रति मूल सैद्धान्तिक एकता का भाव उत्पन्न नहीं होता तब तक सभी धर्मों का समन्वय नहीं किया जा सकता है। मूल सैद्धान्तिक एकता का भाव तभी उत्पन्न हो सकता है तब व्यक्ति या मानव की वैचारिक शक्ति सहिष्णु हो। सभी धर्मों का आदर करने वाली हो। धर्म को जब हम गुण मानकर उसका पालन करेंगे तो धार्मिक समन्वय स्थापित हो सकता है। सहिष्णु भाव से आवश्यक गुणों में समता तथा आकस्मिक गुणों में विषमता का प्रदर्शन कर हम सर्वधर्म समन्वय थी तरफ बढ़ सकते हैं।

5.6 धार्मिक सहिष्णुता के विभिन्न अर्थ

जिस विचारधारा के अनुसार विभिन्न धर्मों के मध्य सहभाव या एक दूसरे के प्रति सहनशीलता प्रकट की जाय तो वह धार्मिक सहिष्णुता कहलाती है। सहिष्णुता शब्द अंग्रेजी शब्द 'टालरेशन' का अनुवाद है जिसका अर्थ है -सहन कर लेना।" यहाँ सहन कर लेना का आशय यह है कि यदि किसी धर्म सम्प्रदाय विशेष में कोई ऐसी बात उल्लिखित है जो मेरे अपने धर्म सम्प्रदाय से मेक नहीं खाती तो भी यदि हम सक्षम एवं प्राधिकारी हैं तो दूसरे धर्म सम्प्रदाय की बातों का आदर करना। दूसरे शब्दों में हम धार्मिक सहिष्णुता को "सर्वधर्म समभाव" के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। वास्तव में धार्मिक सहिष्णुता का यह अर्थ अधिक सटीक एवं उचित दिखायी देता है जहाँ दूसरे धर्मों के प्रति एक समान भाव रखने की सलाह दी गयी है जैसा कि हम अपने धर्म के प्रति रखते हैं।

सभी विचारक इस मत से सहमत दिखायी देते है। ऐनसाइक्लोपीडिया आफ रीलिजन एण्ड एथिक्स खण्ड XII पृ. 360 पर टालरेशन शब्द की जो व्याख्या की गयी है उसमें धर्म सहिष्णुता का अभीष्ट अर्थ व्यक्त नहीं हो पाता है। महात्मा गाँधी जी ने भी कहा है कि सभी धर्म सच्चे हैं किन्तु अपूर्ण हैं। उनकी अपूर्णता दूर करने के लिए आवश्यक है कि सभी धार्मिक सम्प्रदाय एक साथ मिलकर कार्य करें और सभी धार्मिक सम्प्रदाय एक दूसरे के प्रति समादर भाव प्रदर्शित करें।

5.7 धार्मिक सहिष्णुता का मौलिक स्वरूप

धार्मिक सहिष्णुता का अर्थ बहुत ही व्यापक है। इसके अर्थ के साथ ही साथ इसकी प्रकृति एवं इसका स्वरूप भी व्यापक है। सामाजिक समरसता के लिए धार्मिक सहिष्णुता की नितान्त आवश्यकता है। सामाजिक शान्ति बिना सहिष्णुता के स्थापित नहीं हो सकती है। सहिष्णुता साधारणतः सहनशीलता है। जो व्यक्ति अपने विरुद्ध भी कही गयी किसी बात को सहन कर जाता है वह सहनशील अथवा सहिष्णु कहलाता है परन्तु धर्म के क्षेत्र में सहिष्णुता दूसरे धर्मों के प्रति समदार भाव प्रकट करने के लिए प्रेरित करती है।

यहाँ एक बात में अवश्य उल्लिखित करना चाहूँगा कि कोई धर्म अपने विकास में सदियाँ खर्च करता है। विकास भी अवस्था में ऐसा हो सकता है कि कुछ ऐसी भी बातें हो जो समयानुकूल न हों जिसके कारण संघर्ष उत्पन्न होता है, इसी संघर्ष को विराम देने के लिए हम पाते हैं कि धार्मिक सहिष्णुता में एकता का भाव, समभाव,

समादर भाव, सहनशीलता का भाव, समेकित अन्तर्दृष्टि विद्यमान रहती है। यही धार्मिक सहिष्णुता का वास्तविक स्वरूप है। जो कि मौलिक है, जिसमें परिवर्तन की गुंजाइश नहीं है।

5.8 धार्मिक सहिष्णुता के उपाय

एक बात को स्पष्ट है कि धार्मिक विरोध को समाप्त करने के लिए धार्मिक सहिष्णुता या धार्मिक सहनशीलता की आवश्यकता है। यहाँ महत्वपूर्ण प्रश्न है कि धर्म के क्षेत्र में मनुष्य सहिष्णु बने कैसे? बाहय प्रतिरोध और अपने धर्म की ही प्रधानता के वर्चरूव को मनुष्य दर किनार कैसे करे? वास्तव में यह कठिन प्रश्न है क्योंकि धर्म का सम्बन्ध आन्तरिक आस्था से है जिसके अनुसार व्यक्ति जीवनयापन करता है। अपने धर्म की व्युत्पन्न आन्तरिक आस्था के विरुद्ध कोई भी बात सुनकर व्यक्ति उत्तेजित हो जाता तथा हिंसा आदि पर उतार हो जाता है तो कैसे उसके मन में अन्य धर्मों के प्रति समभाव उत्पन्न किया जाये? धर्म दर्शन में इसके निराकरण के लिए कुछ उपाय बताये गये है -

(क) अन्तर्दृष्टि - मनुष्य को सभी धर्मों का मूल्यांकन स्वविवेकयुक्त अन्तर्दृष्टि से करना चाहिए क्योंकि हम जानते हैं कि धर्म का वाहय रूप तो भिन्न हो सकता है परन्तु आन्तरिक शिक्षा एक ही होती है।

(ख) धर्म की मौलिकता - धर्म के मौलिक तत्व की शिक्षा का अनुसरण करना चाहिए न कि उसके आकस्मिक गुणों का अनावश्यक बातों का त्याग आसानी से किया जा सकता है क्योंकि ये बातें धर्म का मौलिक स्वरूप नहीं होती बल्कि बाहर से थोपी हुई होती है।

(ग) सम्प्रदायवाद का निराकरण - धर्म की गति सम्प्रदाय में जाकर समाप्त होती है। एक सम्प्रदाय के लोगों में पारस्परिक प्रेम की भावना बढ़ती है और दूसरे सम्प्रदाय के प्रति नकारात्मकता। हमें यह मानना चाहिए कि कोई भी सम्प्रदाय धर्म का शरीर है उसकी आत्मा नहीं।

(घ) अन्धविश्वास का निराकरण - धार्मिक संघर्षो का मूलकारण अधविश्वास है। हम अपनी आँखे बन्द करके उन धर्माचार्यों की बातें मान लेते ळैं जो कि उनके स्वार्थ या ऐसो आराम के लिए होती हैं। हमें अन्धविश्वास को खत्म करने का प्रयास करना चाहिए।

5.9 धार्मिक सहिष्णुता की सम्भावना

धार्मिक सहिष्णुता वह विचारधारा है जो वास्तव में यदि सभी लोग स्वीकार कर लें तो आदर्शात्मक समाजवाद की स्थापना हो सकती है। अन्तर्दृष्टि, विवेक एक अन्य प्रकार का व्यापक दृष्टिकोण अपनाकर यदि मानव सामाजिक जीवन व्यतीत करे तो धार्मिक सहिष्णुता भाव की सम्भावना हो सकती है। परन्तु वर्तमान समय में शिक्षा का जो भौतिकवादी स्वरूप है वह इसमें बाधा उत्पन्न करता है। वैज्ञानिक प्रगति ने और भी कुठाराघात किया है कि लोगों ने धर्म के प्रति उदासीनता का भाव रखना ही श्रेयस्कर समझा है।

यदि हम इस उदासीनता की सकारात्मक चर्चा करें तो हमें दो दृष्टिकोण प्राप्त होते हैं - प्रथम धार्मिक कट्टरता के प्रति उदारता एवं द्वितीय धर्म के मूल उद्देश्यों के प्रति नकारात्मकता। यदि प्रथम पालित हो तो सहिष्णुता सम्भव है और यदि द्वितीय तो हम सहिष्णुता को केवल किताबों में ही पढ़ सकते है।

5.10 धर्म एवं धार्मिक सहिष्णुता वर्तमान परिप्रेक्ष्य में

वास्तव में वर्तमान युग वैज्ञानिक प्रगति का युग है जहाँ तर्क को स्थान प्राप्त है। धर्म तर्क का विषय नहीं हो सकता है। धर्म आस्था का विषय होता है। ध्यातव्य है कि प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी धर्म को वैज्ञानिक होते हुए भी सामाजिक जीवन पद्धति के लिए अपनाता है। आवश्यकता इस बात की है कि हम यह जाने कि यह जो आस्था है वह जिस विश्वास पर आधारित है वह किस अर्थ में सच्ची एवं पूर्ण है। विश्वास से जहाँ धर्म में गहराई आती है वहीं दृढ़वादिता, रूढ़िवादिता एवं संघर्ष का भी स्थान मिलता है। हास्यास्पद विश्वासों पर भी हम संघर्ष के लिए उतारू हो जाते हैं। ईसाइयों का ईश्वर धरती पर कबूतर के रूप में आता है तो हिन्दुओं का ईश्वर नरसिंह के रूप में अवतरित होता है। ऐसे ही अन्य धर्मों में अनेक विश्वास है जो कि विज्ञानसम्मत न होने के कारण आधुनिक युग में पोषणीय नहीं है। यदि धर्म को सत्य अनुभूति का दिग्दर्शन न कराया जाय तो विभिन्न धर्मों की मौलिकता के आधार पर धर्म एकता का भाव उत्पन्न हो सकता है और इसी धार्मिक एकता के आधार पर धार्मिक सहिष्णुता को आधारित किया जा सकता है।

5.11 धार्मिक सहिष्णुता में बाधाएं

धार्मिक सहिष्णुता का भाव तभी उत्पन्न हो सकता है जब हमें अन्य धर्मों के मौलिक तत्वों का भी ज्ञान हो। वास्तविकता तो यह है कि हम अपने–अपने धर्मों के प्रति इतने ज्यादा एकासीन हैं कि अन्य धर्मों का नाम आते ही हमारे अन्दर घृणा एवं तिरस्कार का भाव उत्प्न्न होने लगता है। धार्मिक सहिष्णुता के प्रतिस्थापन के लिए जिन मूल तत्वों की आवश्यकता होती है यदि हम उन तत्वों का सर्वांगीण अनुप्रयोग नहीं करते तो हम धार्मिक सहिष्णुता का भाव उत्पन्न नहीं कर सकते और अन्य धर्मों के व्यक्तियों को इस भाव को उत्पन्न करने के लिए शिक्षा दे सकते है। धार्मिक सहिष्णुता की प्रतिस्थापना में जो बाधाएं दिखायी देती है उनमें प्रमुख रूप से अन्तर्दृष्टि का अभाव, धर्म के मौलिक स्वरूप की अज्ञानता, धर्मों के प्रति व्यापक एवं सकारात्मक दृष्टिकोण का अभाव, साम्प्रदायिक भाव और अन्ध विश्वास इत्यादि है जो धार्मिक सहिष्णुता के लिए बाधा स्वरूप है।

5.12 धर्म सापेक्षता एवं धार्मिक सहिष्णुता

धार्मिक सहिष्णुता आधाररूप में धर्म के प्रति एक सापेक्ष भाव का निराकरण करती है परन्तु यह भी सत्य है कि सर्वप्रथम किसी धर्मतत्व की उपासना नहीं हो सकती है। यह उपासना केवल परम अतीत के चित्रण अथवा प्रतीक की हो सकती है और यह चित्रण या प्रतीक किसी व्यक्ति को धर्म उपायना के लिए बाध्य करता है। यही बाध्यता धर्म सापेक्षता कहलाती है। यदि हम सापेक्षता के सकारात्मक अर्थ को ग्रहण करे तो हमें यह ज्ञात होता है विभिन्न धर्म केवल एक ही निरपेक्ष सत् का प्रतिपादन करते रहते हैं। श्री रामकृष्ण परम हँसने ने धार्मिक सहिष्णुता के लिए

धार्मिक सापेक्षता के सकारात्मक दृष्टिकोण्ध को अपनाते हुए एक उदाहरण द्वारा इसे व्याख्यायित करने का प्रयास किया है - एक जंगल में कुछ व्यक्ति गये और एक कीड़े को देखा। किसी को कीड़ा हरा, किसी को लाल किसी को पीला तो किसी को सफेद दिखायी दिया। वह कीड़ा एक पेड़ पर था। उस पेड़ के नीचे एक व्यक्ति रहा करता था। पूछने पर उस व्यक्ति ने बताया कि यह कीड़ा विभिन्न रंगों में दिखलायी पड़ता है परन्तु उसका कोई रंग नहीं है। ये जो रंग हैं वे हमारी आंखों के है। इसी प्रकार हम विभिन्न धर्मों के माध्यम से सत्य को देखने का प्रयास करते हैं जबकि सत्य सभी की दृष्टि के परे है। विभिन्न धर्म उपासना के विभिन्न नाम है जो कि केवल पद्धति प्रयोग के लिए उपयुक्त हैं, लब्धि के लिए नहीं।

5.13 धार्मिक सहिष्णुता का व्यापक दृष्टिकोण

धार्मिक सहिष्णुता की अवधारणा हमें इस बात की शिक्षा देती है कि दूसरे धर्मों के प्रति हमें व्लापक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए अर्थात दूसरे धर्मों का मूल्यांकन करते समय हमें संकीर्णता का त्याग करना चाहिए। दूसरे धर्म में यदि अपने धर्म की जड़ों को खोजा जायेगा तो विवाद उत्पन्न होगा। प्राय : हम दूसरे के धर्म का मूल्यांकन करते समय केवल उस धर्म के दुर्गुणों पर ही ध्यान देते है उनके सहगुणों पर नहीं। कोई भी धर्म ऐसा नहीं है जिममें दुर्गुण न हो और सत्गुण न हो। संकीर्णता के कारण हम अपने ही धर्म को श्रेष्ठ मान लेते हैं। इसका निराकरण करके ही हम व्यापक दृष्टिकोण अपना सकते है और दूसरों के धर्मों का सम्मान करते हुए धार्मिक सहिष्णुता की अवधारणा को प्रचलित कर सकते हैं।

5.14 निष्कर्ष

धार्मिक सहिष्णुता की अवधारणा जिसका अर्थ है कि सभी धर्मों के प्रति समादर भाव रखा जाये एक ऐसी विचारधारा के रूप में उल्लिखित है जिसमें सामाजिक जीवन व्यतीत करने वाले मनुष्यों में धर्म की वास्तविकता का ज्ञान कराना प्रमुख लक्ष्य है। वास्तव में धार्मिक सहिष्णुता की जड़े मानव के विवेकयुक्त ज्ञानमण्डल में आच्छादित हैं जिसमें सभी धर्मों के प्रति व्यापक दृष्टिकोण अपनाने, दूसरे धर्मों के प्रति सहनशीलता का भाव रखने, दूसरों के धर्मों में केवल दुर्गुण न खोजने इत्यादि ऐसी ऐसी शिक्षा में ओत–प्रोत है कि सहअस्तित्व, स्वतन्त्रता एवं सहिष्णुता किसी भी देश की संस्कृति के पनपने एवं विकास करने के लिए अनिवार्य हैं और ये सभी विशेषताएं भारत में देखी जाती हैं। इसका कारण है कि यहाँ अनेक धर्मों का अस्तित्व रहा है। विभिन्न धर्मों के अस्तित्व से प्रमाण मिलता है कि भारत में धर्म सहिष्णुता एवं विचारों की स्वतन्त्रता व्याप्त है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि धार्मिक सहिष्णुता भारत में मूल्य के रूप में तभी हिन्दू धर्म के ऋषि ने कहा है –

अयं निजः परोवेति गणनां लघु चेतसाम्।

उदारचरितानां तु बसुधैव कुटुम्बकम्।।

5.15 सारांश

उपर्युक्त ईकाई का सारांश यह है कि - जब हम कहते हैं कि सहानुभूति, मित्रता या सद्भाव से ही काम न ही चलेगा हमें परस्पर एक दूसरे की सहायता करनी होगी तो उसका अभीष्ट अर्थ यही है कि हमें एक दूसरे के धर्मों के प्रति सहगामी बनना पड़ेगा। केवल सहिष्णुता तो गुप्त रूप से घृणा का ही भाव है। जब हम सहिष्णुता के प्रेरक तत्वों को देखते हैं तो पाते हैं कि एक ऐसी शक्ति हमें प्रेरित करती है जिसके आगे असहयोग, असहिष्णुता, असहनशीलता के भाव क्षीण हो जाते हैं और सभी दुर्बलाताएं अयोग्य हो जाती हैं। सारांश यह है कि धर्म सहिष्णुता सर्वधर्म समभाव है और उससे भी आगे जाकर कह सकते हैं कि सभी धर्मों में सहभागिता है। सहभागिता में दृष्टिकोण महत्वपूर्ण होता है। यदि हमारा दृष्टिकोण समभाव का हैं तो सभी धर्म मूलत: समान दिखलायी देंगे और यदि विषम भाव है तो हमें अपना धर्म ही सर्वोच्च दिखायी देगा।

5.16 प्रश्न बोध

(1) धार्मिक सहिष्णुता के मौलिक स्वरूप की व्याख्या कीजिए।

(2) क्या धार्मिक एकता ही धार्मिक सहिष्णुता है? समीक्षा कीजिए।

(3) भारतीय दर्शन एवं परम्पराओं के आधार पर धार्मिक सहिष्णुता की विवेचना कीजिए।

(4) सर्वधर्म समन्वय और धार्मिक सहिष्णुता के मध्य सम्बन्ध निरूपित कीजिए।

5.17 उपयोगी पुस्तके

(1) धर्म दर्शन परिचय - डॉ. हृदयनारायण मिश्र

(2) धर्म दर्शन – डॉ. बी. एन. सिंह

(3) सामान्य धर्म दर्शन एवं दार्शनिक विशेषता या कूब मसीह

(4) धर्म दर्शन की मूल समस्याएं – डॉ. वेद प्रकाश वर्मा

इकाई – 06
सहिष्णुता के विभिन्न अर्थ

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 सहिष्णुता का आशय

6.3 सहिष्णुता एवं धार्मिक सहिष्णुता

6.4 धार्मिक सहिष्णुता के विभिन्न अर्थ

6.5 सहिष्णुता एवं सहभागिता

6.6 सहिष्णुता के उपाय

6.7 धर्म सहिष्णुता के प्रश्न का कारण

6.8 धार्मिक सहिष्णुता और न्याय

6.9 निष्कर्ष

6.10 सारांश

6.11 प्रश्नबोध

6.12 उपयोगी पुस्तकें

6.0 उद्देश्य

मनुष्य विवेकशील प्राणी है। विवेकशीलता उसका मौलिक लक्षण है परन्तु वह सांसारिक जीवन में जब कमी ऐसी स्थिति में होता है जहाँ उसे विवेकशील निर्णरू लेने में कठिनाई होती है तो वह वास्तव में सांसारिक जीवन में आबद्ध होता है। सांसारिक जीवन में समाज, धर्म एवं नैतिकता के भाव के तहत उसे जीवन यापन करना होता है। धर्म मनुष्य के जीवन का अनिवार्य अंग है। वह कभी भी धर्म से अलग नहीं रह सकता है। धर्म में रहते हुए जब मनुष्य सहिष्णु भाव का प्रदर्शन करता हैं तो उसे सहनशील तथा ज बवह अपने ही धर्म के वर्चस्व की स्थापना करना चाहता है तो उसे धर्मान्ध की संज्ञा से नवाजा जाता है। प्रस्तुत ईकाई का उद्देश्य मूल: मनुष्य के सामाजिक जीवन में सहिष्णुता के भाव के प्रति सामाजिकता के परिप्रेक्ष्य में सहनशील होने एवं सहिष्णुता के वास्तविक अर्थ का विवेचन करती है। मनुष्य विकासक्रम की यात्रा में धर्म एवं धर्मों की सृष्टि करता है। दूसरे शब्दों में कह सकते है कि मनुष्य चाहकर भी धर्म का त्याग तब तक नहीं कर सकता है जब तक उसका शरीर है, मस्तिष्क है, मन है और जीवन है। इस प्रकार विश्व में हमें धर्म के विभिन्न रूप मिलते हैं। इस ईकाई का उद्देश्य छात्र/छात्राओं को सहिष्णुता के विभिन्न अर्थों से अवगत कराना है।

6.1 प्रस्तावना

धार्मिक सहिष्णुता के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए हमें स्वामी विवेकानन्द की उक्ति का सहारा लेना पड़ता है जहाँ उन्होंने कहा था कि धर्मों की विभिननता होते हुए भी एक समरसता भी है। धर्म की अभ्यान्तरिकता, एकसुरता और उसके द्वारा मानव-मानव के बीच शान्ति, प्रेम, सहभाव, सदाचरण तथा मेक स्थापित करना ही सच्चे अर्थों में सहिष्णुता है। परन्तु हम उपर्युक्त वर्णित अनुक्रमों का पाठन न करते हुए रक्तपात, द्वेष, घृणा, उपद्रव तनाव इत्यादि की उत्पत्ति करते हैं जो कि धर्म के कारण ही होता है। मेरा धर्म सच्चा है और तुम्हारा धर्म झूठा के भाव से हम दूसरों के धर्मों के प्रति सहनशील नहीं ही पाते है। प्रस्तुत ईकाई में हमने सहिष्णुता के विभिन्न अर्थों के बारे में चर्चा की है जिससे मनुष्य के सामाजिक जीवन में धार्मिक उन्माद कम से कम हो, लोगों में समरसता का भाव उत्पन्न हो और सभी मनुष्य एक दूसरे के धर्मों के प्रति सहनशील हो। इस सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि जिस धर्म में नेतृत्व करने की क्षमता हो उसे सर्वोपरि रहना चाहिए और अन्य धर्मों के अनुयायियों को भी उस धर्म के प्रति सम्मान प्रकट करना चाहिए। उन्होंने आगे कहा था - ईसाई, मुसलमान आदि अनेकों ने धर्म के नाम पर मार–काट मचाई है। इनके घोर अत्याचार से पृथ्वी भर गयी है। इन्होंने अनेक बार मानव रक्त से धरती को लाल किया है। धर्म के नाम पर ऐसा अत्याचार विभिन्न देशों में देखा जा सकता है। स्वामी जी की उपरोक्त बातें इस बात पर बल देती हैं कि कुछ धर्मों के अनुयायियों ने सहिष्णुता के भाव की प्रतिस्थापना में सबसे ज्यादा समस्या पैदा की है।

6.2 सहिष्णुता का आशय

विभिन्न धर्मों के बीच सद्भाव या एक दूसरे धर्म के प्रति सहानुभूति प्रकट करना ही धार्मिक सहिष्णुता है। सहिष्णुता का सीधा अर्थ सहनशीलता होती है। सहनशीलता का तात्पर्य यह होता है कि हम दूसरे धर्मों की पूजा पद्धति एवं आचरण विज्ञान का सम्मान करें न कि केवल अपने ही धर्म की प्रशंसा करते रहे और दूसरे धर्म की निन्दा। धर्म सहिष्णुता का आशय है कि सर्व धर्म समादर, सहनशीलता, सद्भाव, समभाव, उदारता आदि। ये शब्द वास्तव में जो अर्थ उजागर करते हैं वह सहिष्णुता की सटीक व्याख्या नहीं करता है। सही अर्थ में सहिष्णुता का आशय है कि जब लोगों को यह प्रतीत हो जाता है कि सभी धर्म अधूरे और सापेक्ष हैं तब लोगों में सभी धर्मों के प्रति उदार भाव उत्पन्न हो जाता है। यह उदारभाव का उत्पन्न होना ही सहिष्णुता को प्रकट करता है। धार्मिक सहिष्णुता धर्म की आध्यात्मिकता की परिपक्वता, बौद्धिक व्यापकता एवं उदारता का परिचायक होती है। धार्मिक सापेक्षता के ज्ञान के साथ यह भी प्रतीत होता है सभी धर्मों में कुछ न कुछ ऐसे तत्व अवश्य होते हैं जो सभी धर्मों के अनुयायियों को धार्मिक लाभ पहुँचा सकते हैं। अत: सहिष्णुता के आधार पर ही धर्मों की पारस्परिक संगोष्ठी निर्भर करती है।

6.3 सहिष्णुता एवं धार्मिक सहिष्णुता

सहिष्णुता का सीधा अर्थ है सहनशीलता। जब यह सहनशीलता का भाव धर्म के सन्दर्भ में होता है तो इसे धार्मिक सहिष्णुता की संज्ञा दी जाती है। वस्तुतः सहनशीलता एक पारिवारिक लक्षण है। परिवार में कई बार ऐसे अवसर आते हैं जब किसी न किसी को त्याग एवं धैर्य का पालन करते हुए कुछ बातों पर सहनशील होना पड़ता है तभी पारिवारिक ढांचा सुरक्षित रहता है। इसी प्रकार धर्म के प्रति भी जब हम दूसरे धर्मों के प्रति सहनशील होते हैं तो सच्चे अर्थों में धार्मिक सहिष्णुता की अवधारणा की स्थापना करते है परन्तु सही तो यह है कि इस समय संसार में जितने भी धर्म हैं उन्हें निकट भविष्य में समाप्त या कम नहीं किया जा सकता है। इतना ही नहीं इन धर्मों में से किसी धर्म को उत्कृष्ट या निकृष्ट प्रमाणित करना भी सम्भव नहीं दिखायी देता है ऐसी स्थिति में हमारे समक्ष विचारणीय प्रश्न यह है कि इस समय विश्व के विभिन्न धर्मों में जो संघर्ष दिखायी दे रहा है उसे किस प्रकार समाप्त या कम किया जाय और सभी धर्मावलम्बियों में परस्पर सौहार्द्र की उत्पत्ति कैसे हो? संसार में विद्यमान अनेक धर्मों की बैमनस्यता को देखते हुए व्यावहारिक दृष्टि से इस समस्या का कोई समाधान खोजना बहुत आवश्यक है। समाधान भी ऐसा होना चाहिए जो सभी मनुष्यों के लिए हितकर हो और जिसे व्यावहारिक रूप से क्रियान्वित भी किया जा सके। मुझे धार्मिक उन्माद की समस्या हेतु दो समाधान दिखायी पड़ते हैं - सर्वधर्म समभाव का मार्ग तथा पूर्ण धर्म निरपेक्षता का मार्ग। सर्वधर्म समभाव का मार्ग ही धार्मिक सहिष्णुता के रूप में व्याख्यायित है।

6.4 धार्मिक सहिष्णुता के विभिन्न अर्थ

जब हम धार्मिक सहिष्णुता के अर्थ की चर्चा करते हैं तो हमें इस बात का ज्ञान होना चाहिए कि सहिष्णुता का सटीक अर्थ क्या है? सहिष्णुता अंग्रेजी शब्द Toleration का हिन्दी शब्दार्थ है। परन्तु यह केवल शब्दार्थ है भावार्थ नहीं। भावार्थ की बात की जाय तो सबसे सटीक अर्थ महात्मा गाँधी के सर्व समभाव रूपी प्रचलित शब्दों में प्रकट होता है। महात्मा गाँधी का यह बताने का जो दृष्टिकोण है वह अहिंसावादी है। गाँधी जी ने कहा था कि- अहिंसा हमें दूसरे धर्मों के लिए बराबरी का समभाव पथ प्रदर्शित कराती है। केवल आदर एवं सहिष्णुता अहिंसा के लिए काफी नहीं है। दूसरे धर्मों के लिए समभाव रखने के मूल में अपने धर्म की अपूर्णता का स्वीकार आ ही जाता है। अगर हम अपूर्ण हैं तो हमारी कल्पना का धर्म भी अपूर्ण है। स्वतन्त्र धर्म सम्पूर्ण है। हमारा माना हुआ धर्म अपूर्ण है उसमे ंहमेशा हेर फेर होने की सम्भावना बनी रहती है। ऐसा होते रहने से ही हमारे मन में यह विचार उत्पन्न होगा कि यदि हमारा धर्म अपूर्ण है तो दूसरे के धर्म में जो पूर्ण तत्व हैं उनका अध्ययन एवं अनुसरण किया जाय। यदि हम मनुष्यों द्वारा माने गये सभी धर्मों को इसी तरह अपूर्ण माने तो किसी भी धर्म के प्रति अनादर भाव या ऊँचा-नीचा का भाव ही नहीं उत्पन्न होता है। सभी धर्म सच्चे हैं लेकिन अपूर्ण हैं। समभाव होने पर भी हम उनमें दोष देख सकते हैं। हमे अपने धर्म में भी दोष देखना चाहिए। जब हम ऐसा करते हैं तो सच्चे अर्थों में धार्मिक सहिष्णुता प्रदर्शित करते हैं। गाँधी जी द्वारा दिये गये तर्कों एवं मतों से सारांशतः कहा जा सकता है कि धर्म-सहिष्णुता का अर्थ है - सर्वधर्म समभाव। सर्वधर्म समभाव से ही किसी अन्य धर्म के प्रति कट्टरता खत्म या कम की जा सकती है। इसी से संकीर्णता का भी प्रशमन होता है। धार्मिक सहिष्णुता के सर्व धर्म - समभाव की पोषकता को ध्यान में रखते हुए स्वामी रामकृष्णदेव ने कहा था - कि गलत बातें किस धर्म में नहीं है। सभी कहते हैं कि मेरी घडी सही चल रही है परन्तु कोई भी घड़ी बिल्कुल सही नहीं चलती। सभी घड़ियों को बीच-बीच में सूर्य के साथ मिलाना पड़ता है। अतः सामान्यतः सर्वधर्म समभाव ही धार्मिक सहिष्णुता का सच्चा अर्थ है।

6.5 सहिष्णुता एवं सहभागिता

धर्म सहिष्णुता में स्वामी विवेकानन्द ने एक नयी कड़ी का समावेश किया है - जिसे गाँधीजी ने भी किसी न किसी रूप में स्वीकार किया है, वह है उदार सहभागिता। सभी धर्मों के प्रति सहिष्णु होना ही पर्याप्त नहीं है। स्वामी जी कहते हैं कि सहानुभूति, भिल्लता एवं समभाव से ही काम नहीं चलेगा हमें एक दूसरे की परस्पर सहायता भी करनी होगी। जिसका अर्थ यही हैं कि हमें एक दूसरे के धर्मों में सहभागी होना पड़ेगा। केवल सहिष्णुता तो गुप्त रूप में घृणा का ही भाव है। एक लाचारी एवं विवशता है। यह बात इससे भी स्पष्ट होती है जब हम सहिष्णुता या टालरेन्श के प्रेरक तत्वों को देखते हैं। सहनशीलता या सहिष्णुता की भावना मनुष्य में तब आती है जब वह किसी शक्ति का अवरोध अपनी अयोग्यता एवं निर्षकता के कारण नहीं कर पाता। इसका एक तत्व अयोग्यता एक निर्बलता है तथा दूसरा प्रेरक तत्व उदासीनता है। तीसरा प्रेरक तत्व सान्त्वना प्राप्त करने की इच्छा। चौथा प्रेरक तत्व बौद्धिक है

जिसके द्वारा यह देखा जाता है कि शक्ति कोई उपाय नहीं। इसीलिए गाँधी जी ने टालरेन्स के स्थान पर सर्वधर्म समभाव का नाम रखा और विवेकानन्द ने तो इससे भी आगे बढ़कर सहभागिता का नाम दिया बिना सहभागिता के धार्मिक सहिष्णुता, अंशत: भी पूर्ण नहीं हो सकती है। एक सटीक उदाहरण देते हुए स्वामी जी ने "भारत में प्रचलित सनातन या हिन्दू धर्म को प्रेरक शक्तिवाला बताया और कहा कि इसी भारतवर्ष में हिन्दुओं ने ईसाइयों के लिए चर्च एवं मुस्लिमों के लिए मस्जिदों का निर्माण कराया है और अभी भी बनवा रहे हैं। ऐसा ही करना पड़ेगा। वे हमें चाहे जितनी घृणा की दृष्टि से देखें, चाहे जितनी पशुता दिखायें, चाहे जितनी निष्ठुरता दिखायें अथवा अत्याचार करें हम ईसाइयों के धर्म और मुसलमानों के धर्म के प्रति सम्मान करना नहीं छोड़ेंगे।" सही अर्थो में यही सटीक एवं उपयुक्त उदाहरण है सहभागिता का। इसी सहभागिता के भाव द्वारा ही धार्मिक सहिष्णुता की कल्पना की जा सकती है। जब तक प्रत्येक मनुष्य एक दूसरे के प्रति सहमागी का भाव नहीं रखेगा तब तक धर्मों के एक दूसरे के प्रति समभाव या सहिष्णुता की कल्पना नहीं की जा सकती है।

6.6 सहिष्णुता के उपाय

धार्मिक सहिष्णुता स्थापित कैसे की जाय यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। यह समस्या उठती है कि विभिन्न धर्मों के प्रति सहिष्णुता या सहभागिता कैसे सम्भव है? यह प्रश्न आज धर्म विचारकों के सम्मुख उपस्थित होता है। इसके विषय में व्यावहारिक एवं वैचरिक दोनों दृष्टियों से निर्णय लेने की आवश्यकता है। इसके सन्दर्भ में कुछ निर्णायक कदम उठाने की आवश्यकता है। सम्प्रदायों, कर्मकाण्डों, हठवादिता अज्ञानता का होना तथा समुचित दृष्टिकोण का न होना भी धार्मिक विषमता या असहिष्णुता के कारण के रूप में गिनाये जा सकते हैं। इन्हें दूर करने के लिए उपाय ढूंढना मानव संस्कृति की सुरक्षा एवं विकास के लिए आवश्यक है। जिन उपायों के माध्यम से धार्मिक सहिष्णुता प्रभावी हो सकती है उनमें प्रमुख रूप से आध्यात्मिक और नैतिक रूप में धर्मों में समानता की जरूरत है। सभी धर्मों के सनतो और आथार्यों के बीच समानता है इससे इनकार नहीं किया जा सकता। धर्म की व्यावहारिकता के प्रति समुचित दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है। व्यावहारिकता से तात्पर्य है - धर्म विशेष की क्रियाविधि। समभाव के लिए आवश्यक है कि व्यावहारिक क्रियाविधि को सम्पन्न करारने के लिए धर्म विशेष को स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिए। सम्प्रदाय विशेष को धर्म की वास्तविकता से अलग करके देखने की भी आवश्यकता है। डॉ. राधाकृष्णन ने कहा था कि– धर्म वह हैं जो मनुष्य के अस्तित्व को अर्थ तथा एकता प्रदान करता है। भाषा, रहन-सहन, देवस्थानों की पवित्रता एवं उनकी रक्षा हेतु विभिन्न उपायों को निगमित करने की आवश्यकता भी पड़ती रहती है। अपने-अपने धर्मों के प्रचार को महत्व नहीं देना चाहिए। सभी धर्मों के अनुयायियों को अधिकार पर कम कर्त्तव्य पर अधिक ध्यान देने के लिए उत्साहित करना एक ऐसा उपाय है जहाँ धार्मिक वैमनस्यता को कम किया जा सकता है। प्रमुख उपाय है कि सभी शिक्षण स्थानों में धार्मिक शिक्षण का पाठ्यक्रम निर्धारित किया जाय जिसमें सभी धर्मों के मूल तत्वों की जानकारी हो तथा उन मूल तत्वों से सार्वभौम धर्म की प्रतिष्ठा सन्दर्भित गति को बल देने की बात करें। उपरोक्त वर्णित उपाय ऐसे हैं जो धार्मिक सहिष्णुता के सही अर्थ को प्रकट करते हैं।

6.7 धार्मिक सहिष्णुता के प्रश्न का कारण

धार्मिक सहिष्णुता क्यों आवश्यक है? जैसा प्रश्न विभिन्न धर्म के अनुयायी कर सकते है और करते रहते हैं। उनका कथन है कि सभी मनुष्य अपने-अपने धर्म का पालन करें तथा दूसरे धर्मों के प्रारूप पर हस्तपक्षेप न करें। प्रमुख समस्या तब उठती है जब हम देखते हैं कि संसार में हिंसा धर्मों के कारण ही उत्पन्न होती रती है। विभिन्न धर्मों के अलग-अलग प्रारूप, उनकी अलग-अलग पूजा पद्धतियाँ और उससे भी उधर अपने ही धर्म को सर्वश्रेष्ठ बताने की कवायद समाज एवं राष्ट्र में वैमनस्य का भाव रखती है। इसलिए यह आवश्यक है कि वर्तमान विश्व जिन तमाम कठिनाइयों का सामना कर रहा है उनमें से तमाम का कारण धर्म ही है। अपने धर्म की प्रमुखता बताना कई देशों का लक्ष्य हो गया है। इसलिए यह आवश्यक हो गया है कि यदि संसार में रक्त पात और हिंसा से बचना हैं तो धर्म सहिष्णुता, धर्म सहनशीलता, धर्म एकता, सर्वधर्म समन्वय जैसी विचार धाराओं को शिक्षा मे ंसम्मिलित कर उनका सामाजिक अनुप्रयोग करना होगा अन्यथा की दृष्टि में मनुष्य संसार की तमाम कठिनाइयाँ धर्म के कारण ही झेलता रहेगा।

6.8 धार्मिक सहिष्णुता और न्याय

धर्म में यदि नैतिकता और न्याय का अभाव होता है तो पूर्णता नहीं आती है। इसलिए धर्म में सुलहकुल की नीति होनी चाहिए। सुलहकुल की नीति धार्मिक सहिष्णुता और न्याय की नीति होती है। इसे हम एक उदाहरण द्वारा समझ सकते हैं - महान शासक अकबर ने अपने शासनकाल में फतेहपुर सीकरी में इबादतखाना बनवाया था जिसमें विभिन्न धर्मों के आचार्यों को उनके अपने-अपने सिद्धान्तों की व्याख्या के लिए बुलाया जाता था। इससे यह तय किया जाता था कि सभी सिद्धान्त एकपक्षीय और एकांगी तो नहीं है। अन्त में यह धारण पक्की हो जाती थी कि सत्य किसी विशेष धर्म तक सीमित नहीं है। विभिन्न धर्म अन्तिम सत्ता तक पहुँचने के लिए अलग-अलग मार्ग हैं। किसी भी पक्ष से ईश्वर तक पहुँचा जा सकता है। यही समझकर उन्होंने संस्कृत की अनेक पुस्तकों का फारसी में अनुवाद कराया। महाभारत का तो अनुवाद (रज्मनामा) बदाउनी ने किया। रामायण और हरिवंश पुराण के भी कुछ अंशों का अनुवाद फारसी में कराया गया। धर्म में देवस्थानों का भी अत्यधिक महत्व होता है। अकबर ने मन्दिर निर्माण को भी प्रमुखता दी थी। इन मन्दिरों में हिन्दू-मुस्लिम वास्तुकला का सम्मिश्रण देखा जा सकता है। धर्मों में इसी प्रकार के अनेक आदर्श आज भी अनुकरणीय है। यदि इसी प्रकार के सुलह कुल का आदर्श विभिन्न धार्मिक सम्प्रदाय अपनायें तो धर्म का अस्तित्व और भी बेदाग होगा तथा एक दूसरे धर्मों के प्रति राग–द्वेष की स्थिति से भी छुटकारा मिलेगा। वास्तव में तभी धार्मिक सहिष्णुता का भाव उत्पन्न हो सकता है और यह स्थिति सम्पूर्ण न्याय की स्थिति कही जा सकती है।

6.9 निष्कर्ष

उपरोक्त अध्ययन हमें यह बताता है कि धार्मिक सहिष्णुता के जिन विभिन्न अर्थों को हम अपनी अध्ययन पद्धति में अपनाते हैं वे किस प्रकार धार्मिक सहिष्णुता के सटीक अर्थ को व्याख्यायित करते हैं। धार्मिक सहिष्णुता केवल

सहनशीलता ही नहीं अपितु सहभागिता तथा समभाव भी प्रदर्शित करती है। यदि वास्तव में हम सभी धर्मों के प्रति समभाव रखें और केवल समभाव ही न रखकर सभी धर्मों के क्रिया-कलापों में सहभागी बने तो एक आदर्श एवं उत्कृष्ट समाज का निर्माण कर सकते हैं। उपरोक्त अध्ययन से हम इस बिन्दु पर पहुँचते हैं कि जिस उदारवाद एवं समभाव की चर्चा धार्मिक सहिष्णुता की अवधारणा में अपेक्षित है बह हिन्दु धर्म में प्राचीन काल में ही पायी जाती रही है। हिन्दू धर्म सनातन धर्म कहा जाता है जिसका अर्थ चिर-नवीन होता है। हिन्दु धर्म की सहिष्णुता का पता इससे भी चलता है कि इस धर्म ने कभी दावा नहीं किया कि केवल हिन्दू धर्म से ही अन्तिम सत्ता की प्राप्ति की जा सकती है। निष्कर्षत: धार्मिक सहिष्णुता के विभिन्न अर्थों को सहभागिता एवं समभाव की विचारधारा के अन्तर्गत पूर्ण रूप से प्राप्त कर सकते हैं।

6.10 सारांश

उपरोक्त वर्णित ईकाई का सारांश है कि सामाजिक जीवन व्यतीत करने वाले मनुष्यों में यदि परस्पर समभाव धार्मिक एवं सामाजिक क्रियाकलापों में बना रहे तो संघर्ष की न्यूनता होगी। विशेष तौर पर जब हम यह देखते और जानते हैं कि सभी धर्मों के रास्ते उसी अन्तिम सत्ता तक पहुँचते हैं तो हम दूसरे धर्मों के प्रति समादर का व्यवहार क्यों नहीं करते है? हम धर्म सहिष्णु क्यों नहीं हो पाते हैं? हमें न्याय प्रिय एवं सहभागी होने के लिए त्याग की आवश्यकता है। धैर्य की भी आवश्यकता है, विवेक की आवश्यकता है। विवेक का प्रयोग करते हुए यदि हम दूसरे धर्मों को भी महत्व देंगे तो समाज विकसित होगा और आपसी मन-मुटाव, हिंसा आदि में कमी आयेगी।

6.11 प्रश्न बोध

(1) धार्मिक सहिष्णुता के विभिन्न अर्थों की व्याख्या कीजिए।

(2) क्या धार्मिक सहिष्णुता सहभागिता है? अपने विचार प्रस्तुत कीजिए

(3) वर्तमान समय में क्या धर्म समन्वय सम्भव है? अपना मत प्रस्तुत कीजिए।

(4) धार्मिक सहिष्णुता स्थापित करने के उपायों की सविस्तार व्याख्या कीजिए।

6.12 उपयोगी पुस्तकें

(1) धर्म दर्शन की मूल समास्याएं - वेदप्रकाश वर्मा

(2) धर्म दर्शन – डॉ. बी. एन. सिंह

(3) धर्म दर्शन परिचय - डॉ. हृदय नारायण मिश्र

.....000.....

इकाई – 07

सहिष्णुता के साधन

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 सहिष्णुता की परिभाषा

7.3 धार्मिक सहिष्णुता का स्वरूप

7.4 सहिष्णुता का महत्व

7.5 कर्त्तव्य आधारित सहिष्णुता

7.6 सहिष्णुता व्यवहारिकता के प्रति समुचित दृष्टिकोण

7.7 विज्ञानानुगत सहिष्णुता

7.8 सहिष्णुता एवं पवित्रता

7.9 निष्कर्ष

7.10 सारांश

7.11 प्रश्नबोध

7.12 उपयोगी पुस्तकें

7.0 उद्देश्य

सहिष्णुता का पर्यायवाची शब्द सहनशीलता भी है। सहिष्णुता या सहनशीलता से तात्पर्य है कि विविधता, विभिन्नता, विरोधाभास, अपवाद को सहन करने की आदत, स्वभाव प्रकृति तथा सहमति। मूल अर्थ है कि अपने अतिरिक्त दूसरों के व्यक्तित्व, बात-व्यवहार, रीति-रिवाज, धर्म-सम्प्रदाय के प्रति आदर भाव या समभाव प्रदर्शित करना। हमारे अन्दर यह भाव होना चाहिए कि दूसरे व्यक्ति भी सही हो सकते है। दूसरा धर्म भी सही हो सकता है इत्यादि। इस ईकाई का उद्देश्य छात्र/छात्राओं को यह बताना है कि सहिष्णुता प्राप्त करने के लिए किन साधनों की आवश्यकता पड़ती है। क्या भौतिक साधन सहिष्णुता की उत्पत्ति में सहायक हो सकते हैं? शून्य सहिष्णुता साधन क्या है। कार्यस्थल पर शून्य सहिष्णुता नीति क्या है? इत्यादि। साधनों को वर्णित करने से पूर्व यह अवश्य जान लेना चाहिए कि नियम-विनियम सभी को स्पष्ट रूप से बताये जाये तथा उनके अधिकारों के साथ-साथ कर्त्तव्य भाव का भी बोध कराया जाय। इस ईकाई में हम उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति करते हुए अध्ययन करेंगे।

7.1 प्रस्तावना

सहिष्णुता को प्राप्त करने के लिए हमें किन साधनों की आवश्यकता पड़ती है, का अध्ययन हम इस ईकाई में करेंगे। स्पष्ट है कि सहिष्णुता में उन चीजों को स्वीकार करना शामिल है जिनसे हम पूर्व में असहमत हैं, जिन्हें हम अस्वीकार करते रहे हैं या नापसन्द करते रहे हैं। ध्यातव्य है कि ब्रिटानिका डिक्शनरी में सहनशीलता या सहिष्णुता को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि सहिष्णुता किसी नियम या कानून के किसी भी प्रकार से उल्लंघन न करने की अनुमति देने की नीति है। हम इस ईकाई में इस बात का भी अध्ययन करेंगे कि हम जिन साधनों से सहिष्णु हो सकते हैं क्या उनके पालन में कठिनाई है। क्या उन कठिनाइयों को दूर किया जा सकता है। सहिष्णुता प्राप्त करने के उपाय क्या हैं? यही उपाय ही साधन हैं। सरल शब्दों में कह सकते हैं कि सहिष्णुता तब होती है जब आप उन लोगों को स्वीकार करते हैं जो अपनी जाति, संस्कृति, आदतों और यहाँ तक कि विश्वासों और रीति-रिवाजों में भी भिन्न हैं। हमें अपने दोस्तों को स्वीकार करने की आदत हो जाती है चाहे वे हमसे कितने भी भिन्न या अलग क्यों न हो इसी प्रकार जब हम अपने से अलग धर्मों को स्वीकार करते है तो हम उन साधनों का प्रयोग करते हुए रहते हैं जो हमें सहिष्णु बनाते हैं।

7.2 सहिष्णुता की परिभाषा

सहिष्णुता दूसरों के प्रति निष्पक्ष एवं वह वस्तुनिष्ठ रवैया है और आमतौर पर यह व्यक्ति की ओर से एक सचेत प्रयास होता है। सहिष्णुता व्यष्टि, समुदाय, राज्य या समूह में हो सकती है। सहिष्णुता को इसके अन्य पर्यायवाची शब्दों के माध्यम से भी व्याख्यायित किया जा सकता है - अनुमति, स्वीकृति, समानता निष्पक्षता और तुल्ता इत्यादि। दूसरो शब्दों में हम कह सकते हैं कि - सहिष्णुता किसी ऐसी चीज का सामना करने और उसे सहने की क्षमता है जो बिना नकारात्मक राय व्यक्त किये अलग और विवादास्पद हो। सामान्यत: सहिष्झुता शब्द की शुरूआत पन्द्रहवीं

शताब्दी के प्रारम्भ में लैटिन शब्द टालरेंटिया से हुई थी। इस शब्द का मूल अर्थ कठिनाई को सहन करना या सहायता प्रदान करना था। सहिष्णुता को उन लोगों के प्रति निष्पक्ष और वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिनकी जीवन शैली अलग हो। हमारी जीवन शैली में सहिष्णुता के स्तर को खुशी और सन्तुष्टि के स्तरों के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है।

7.3 धार्मिक सहिष्णुता का स्वरूप

धार्मिक सहिष्णुता का शाब्दिक अर्थ है कि दूसरे धर्मों की क्रियाविधि को भी सहन करना। इस दृष्टि से धार्मिक सहिष्णुता का स्वरूप है कि जिन धर्मों की आदतों, विचारों, रीतिरिवाज, पूजा पद्धति आदि में भिन्नता है उनके प्रति भी एक वस्तुनिष्ठ, न्यायोचित तथा सम्मानपूर्ण अभिव्यक्ति बनाये रखना तथा उनके प्रति किसी भी प्रकार की आक्रामकता से बचना। नकारात्मक अर्थ में सहिष्णुता का अर्थ विरोधियों को सहन करने की क्षमता से है। वर्तमान में इसका सकारात्मक अर्थ प्रयोग में आता है जिसका आशय है अपने विरोधी धर्म के विचारों का सम्मान करना, उन्हें सुनने समझने की ताकत रखना और यदि उनका पक्ष तार्किक है तो उसे स्वीकार करना इत्यादि। धार्मिक सहिष्णुता दूसरे धर्मों के विचारों और कार्यों के प्रति उदारभावना का सुझाव देती है। अल्पसंख्यकों के प्रति सहिष्णुता का अर्थ हैं कि उस आचरण की अनुमति देना या सहना जिसके साथ कोई सहमत नहीं है। सहिष्णुता का स्वरूप इतना व्यापक है कि यदि व्यक्ति या समुदाय में विरोधी धर्मों की बातों को सुनने या उनके विचारों को सहन करने की ताकत उत्पन्न हो जाय तो समाज और राजनीति दोनों ही सच्चे अर्थ में लोकतान्त्रिक कहे जाते हैं।

सहिष्णुता से नैतिक प्रगति होती है। यदि व्य9क्ति दूसरों के प्रति सहिष्णु व्यवहार करता है तो धीरे–धीरे दूसरों को भी इससे प्रेरणा मिलती है कि वे अन्य लोगों के प्रति सहिष्णु एवं सहनशील व्यवहार करें जिससे चिन्तन एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को बढ़ावा मिलता है। वर्तमान समय में जितनी भी घटनाएं आतंकवाद, नष्टवाद, सामुदायिक हिंसा इत्यादि की घटनाएं घटित ही रही है उनका एकमात्र एवं सटीक निराकरण केवल सहिष्णुता के मार्ग को अपनाना है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि शान्ति एवं परम्परा सद्भाव के लिजए सहिष्णुता के अथवा कोई विकल्प नहीं है।

7.4 सहिष्णुता का महत्व

सहिष्णुता किसी व्यक्ति की उस मान्यता को सहन करने की क्षमता है जिससे वह सहमत नहीं हो रहा होता है। सहिष्णुता इसलिए महत्वपूर्ण है क्यों कि यह एक ऐसा सामंजस्यपूर्ण खुशहाल समाज को बढ़ावा देती है जिसमें परस्पर प्रेम की भावना सन्निहित होती है। वैज्ञानिक व्याख्या हमें यह बताती है कि मानव मस्तिष्क में प्रति सेकेण्ड अरबों विचार या प्रतिक्रियाएं उत्पन्न करने की क्षमता होती है। इसका अर्थ यह हैं कि मनुष्य के पास अपने जीवन के सभी क्षेत्रों में सचेत विचार-विमर्श के बिना कार्य करने और विचार करने की क्षमता है जिसके परिणामस्वरूप उन लोगों के साथ विरोधाभाजी घटनाएं घटित हो सकती हैं जो उनके अनुरूप व्यवहारों / विचारों या कार्यों को स्वीकार वहीं कर सकते हैं या नहीं करते है, जिसके कारण अलग-अलग टकराव उत्पन्न होता है। इसके विपरीत यदि मानव

मस्तिष्क उन विचारों को उत्पन्न करता है जो कि ऐसे है जिनमें सहिष्णुता या सहनशीलता का भाव होता है तो सहनशीलता हमें किसी नकारात्मक प्रतिस्पर्धा में भाग लेने की अनुमति नहीं देती है बल्कि यह अनुमति देती है कि हम समझें कि दूसरों के मस्तिष्क में क्या चल रहा है और उस अनुरूप अपने आचरण एवं व्यवहार को क्रियान्वित करें। विदित है कि जब तक हम लोग एक-दूसरे के साथ सद्भाव रखना नहीं सीखते तब तक कोई भी सभ्यता सिर नहीं उठा सकती। पारस्परिक सद्भाव विकास की प्रथम सीढ़ी है - एक दूसरे के धार्मिक विश्वास के प्रति सहानुभूति प्रकट करना। अत: निहितार्थ है कि बिना सहिष्णुता के सृजनशील एवं सर्जनशील समाज का निर्माण नहीं हो सकता है। यदि सामाजिक गतिविधियाँ एक दूसरे की विरोधी रहती हैं तो विकास के स्थान विनाश की सम्भावना बनी रहती है। अत: सहिष्णुता सामाजिक समरसता, रागद्वेष दूर करने तथा सद्भाव बनाये रखने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

7.5 कर्त्तव्य आधारित सहिष्णुता

प्राय: हम देखते हैं कि विभिन्न मनुष्यों मनुष्यों या विभिन्न धर्मों के बीच इस बात को लेकर टकराव उत्पन्न होते हैं कि अमुक बात करने और उसकी रक्षा करने का हमें अधिकार है। कर्त्तव्यविहीन अधिकार शून्य होता है। जब हम कर्त्तव्य करते हैं तब अधिकार की बात कर सकते हैं। वास्तव में हमारे नैतिक आधार पर के बारे में चिन्ता करना उचित है। हम एक ऐसी दुनियाँ में रहते हैं जहाँ अधिक से अधिक प्रभावशाली व्यक्ति इस विश्वास को सिखा रहे हैं कि कर्त्तव्य के वाद ही अधिकार की उत्पत्ति होती है। परन्तु हम केवल अधिकार की बात करते है, कर्त्तव्य की नही।

नैतिक सापेक्षवाद का दर्शन जो यह मानता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए सही और गलत का चुनाव करने के लिए स्वतन्त्र है। इस स्वतन्त्रता को कई लोगों ने स्वच्छन्दता में परिवर्तित कर दिया है। कई धार्मिक नेता परम कानून निर्माता के रूप में परमेश्वर के अस्तित्व की शिक्षा तो देते हैं परन्तु जब उनके कर्त्तव्य की बारी आती है तो वे मुंह मोड़ लेते हैं। यह मतभेद जो कर्त्तव्य और अधिकार में अधिकार को महत्व देने वाला है वह वास्तव में सहिष्णुता का द्योतक नहीं है। इस प्रकार के मतभेदों के दृष्टिकोण से हमारे कर्त्तव्य के प्रति सहिष्णुता और सम्मान पैदा होगा। दूसरों की मान्यताओं के प्रति हमारी सहिष्णुता और सम्मान हमें उन सत्यों के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को त्यागने के लिए बाध्य नहीं करता जिन्हें हम समझते है और जिनका अनुबन्ध हमने कर्त्तव्य के रूप में किया है। अतः हमे सर्वप्रथम वह कर्त्तव्य करना चाहिए जिससे दूसरों की मान्यताओं के प्रति सहिष्णुता और सम्मान का भाव उत्पन्न करता हो।

7.6 सहिष्णु व्यवहारिकता के प्रति समुचित दृष्टिकोण

सहिष्णुता के प्रति हमारे व्यावहारिक दायित्व का निर्वहन करना आवश्यक हो जाता है क्योंकि प्राय: यह देखा जाता है कि धर्मों की लड़ाई केवल वैचारिक स्तर पर ही नहीं है बल्कि अधिकाधिक व्यावहारिक स्तर पर भी संघर्ष देखने को मिलता रहता है। यहाँ पर व्यवहारिकता से तात्पर्य हैं धर्म विशेष की क्रिया विधि जैसे –कीर्तन, भजन, नमाज, प्रेयर, अपतिष्मा आदि ये जो क्रियाएं जिस धर्म में नहीं होती वह इन क्रियाओं को बिलकुल भी महत्व नहीं देता बल्कि निन्दा करता रहता है या इनके प्रति संकीर्णता और कट्टरता का भाव प्रकट करते हुए इनको अव्यवहारिक एवं झूठ मानता

है। उसका कथन है कि ये क्रियाएं अपरिहार्य हैं। सहिष्णुता या समभाव के लिए आवश्यक है कि इन क्रियाओं को सम्पन्न करने के लिए धर्म विशेष को स्वतंत्रता होनी चाहिए। परन्तु अन्य धर्मो के प्रति यह दृष्टिकोण नहीं होना चाहिए कि बाधा उत्पन्न हो। व्यवहारिकता वाली सहिष्णुता में सहभागिता और समभाव का प्रदर्शन होना चाहिए न कि निषेधात्मक रूप से दूसरों के अधिकारों को शून्य बताकर उनको तिरस्कृत करने की प्रवृत्ति। इस प्रकार की व्यवहारिक निषेधात्मकता को सहिष्णुता या सहनशीलता द्वारा ही दूर कर सकते हैं। आवश्यकता इस बात की है हमारा दृष्टिकोण सकारात्मक हो। यदि हमारा दृष्टिकोण सकारात्मक रहता है तो निश्चित तौर पर समुचित भी होगा। व्यावहारिक रूप से यदि हम समभाव एवं आपसी प्रेम तथा दूसरों के धर्मों की क्रियाविधि में दखल नहीं देते हैं तो सच्चे अर्थ में सहिष्णुता के सिद्धान्त का अनुपालन होगा जिससे सामाजिक एवं वैयक्तिक स्तर पर स्वस्थ राष्ट्र का निर्माण कर सकते हैं।

7.7 विज्ञानानुगत सहिष्णुता

विज्ञानमयी सहिष्णुता या विज्ञानानुगत सहिष्णुता का सीधा अर्थ यह है कि सहनशीलता या सद्भाव जैसे गुण केवल धार्मिक नहीन रहकर वैज्ञानिक भी होने चाहिए। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं घर्म को केवल विश्वास सम्मत ही नहीं बल्कि विज्ञानसम्मत भी बनाने का प्रयास होना चाहिए। धार्मिक सहिष्णुता तभी उत्पन्न हो सकती है जब धर्म केवल अन्धविश्वासों एवं कुरीतियों पर ही आधारित न हो। विभिन्न धर्मों में भिन्नता एवं विद्वेष इसलिए भी है कि वह केवल विश्वासों पर ही आधारित है। तर्क के लिए कोई स्थान नहीं है। विश्वास से जहाँ धर्म में गहराई तो आती है वहीं दृढ़वादिता, रूढ़िवादिता एवं संधर्ष भी होता रहता है। अतार्किक एवं हास्यास्पद विश्वासों पर भी धर्म के अन्धे अनुयायियों का सत्य टिका रहता है जो संघर्ष की स्थिति उत्पन्न करता है। ईसाई का ईश्वर घरती पर कबूतर के रूप में आता है तो हिन्दू धर्म में ईश्वर नृसिंह के रूप में प्रकट होता है। ऐसे ही मुस्लिम एवं अन्य धर्मों के विश्वास है जो विज्ञानसम्मत न होने के कारण हास्यापद हैं और संघर्ष के प्रारम्भ बिन्दु हैं। विश्वासों में चाहे जितनी भिन्नता है परन्तु विज्ञान और गणित में भिन्नता नहीं पायी जाती है। हाँ यह बात भी है कि सभी का मानक विज्ञान और गणित हो भी नहीं सकता है। यदि धर्म को सत्यानुभूति का दर्शन कराया जाय तो एकता आ सकती है और एकता पर धार्मिक सहिष्णुता को भी आधारित किया जा सकता है।

7.8 सहिष्णुता एवं पवित्रता

पवित्रता का आशय है कि बिना राग द्वेष के अन्य धर्मों के प्रति सदाचारित विचारों को प्रकट करते रहना। पवित्र धर्म सहिष्णुता तभी उत्पन्न हो सकती है जब धर्म सम्प्रदाय विशेष अपने कर्त्तव्य पालन में तत्परता दिखाये और ऐसे अधिकार की माँग न करे जो दूसरे धर्म या सम्प्रदाय के लिए घातक सिद्ध हो। गाँधी जी ने इसी बिन्दु को ध्यान में रखते हुए हिन्दू-मुस्लिम की पवित्र एकता की बात कही थी। उन्होंने कहा था कि दोनों को में अपना कर्त्तव्य करने के बजाय, अपने कर्त्तव्य का पालन करने के बजाय, कर्त्तव्य पालन के पश्चात अधिकार प्राप्त करने के बजाय केवल कर्त्तव्य विहीन अधिकार प्राप्ति पर जोर दे रही है। वे कर्त्तव्य करना भूल गयी है।

धर्म सहिष्णुता के लिए आवश्यक है कि पवित्र मन से अपनी सीमा में रहते हुए सार्वभौमिकता को दृष्टि में रखते हुए पवित्र कर्त्तव्य का पालन करे और ऐसे अधिकार की माँग करें जो कटुता और संघर्ष न उत्पन्न करता हो। गाँधी जी ने कहा था कि कर्त्तव्य के समय साधन की पवित्रता अति आवश्यक है। सभी धर्मों के प्रति सहिष्णु होने का मतलब है कि सभी धर्मों को समान रूप से समझना। न किसी को बड़ा समझना न किसी को छोटा। किसी भी धर्म की निन्दा न करना। सभी धर्म के मान्य धर्म ग्रन्थों का निष्पक्ष अध्ययन करना तथा उनमें वर्णित उपदेशों या ज्ञान का पवित्र मन से पालन करना। दूसरे धर्मों के ग्राह्य अंशों को अपने धर्म में लेने में संकोच न करना इत्यादि पवित्रता का घोतक है। यदि इस प्रकार के कर्त्तव्य परायण बोध से कोई भी कार्य किया जायेगा तो निश्चित तौर पर पवित्र सहिष्णुता या पवित्रता पर आधारित सहिष्णुता की अवधारणा और उसके क्रियान्वयन को बक मिलेगा।

7.9 निष्कर्ष

सहिष्णुता के साधन रूपी ईकाई में अध्ययन के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सहिष्णुता रूपी गुण प्राप्त करने के लिए जिन साधनों की जरूरत पड़ती है वे सभी हमारे जीवन शैली एवं विचार शैली पर निर्भर करते है। कर्त्तव्य पराणयता एक प्रमुख पहलू है जिसका पालन करते हुए हम सहिष्णुता प्राप्त कर सकते हैं। सहिष्णुता प्राप्त करने के लिए यह भी आवश्यक है कि धर्मों का प्रचार न किया जाय क्योंकि धर्मविशेष का प्रचार धर्म के प्रति उन्माद उत्पन्न करता है जिससे आम लोगों में संघर्ष की सम्भावना बनी रहती है और धार्मिक असहिष्णुता उत्पन्न होती है। इस सन्दर्भ में महात्मा गाँधी की उक्ति का चित्रण करना आवश्यक है जहाँ उन्होंने कहा था - इसलिए में कहता हूँ कि हमें भाषण या लेख के जरिये धर्म प्रचार करने की आवश्यकता नहीं है। हमें हमारे धर्ममय जीवन को खुली किताब की तरह रखना चाहिए जिसे हर कोई पढ़ सके। अगर मैं धर्म प्रचारकों को समझा सकता तब न तो कहीं अविश्वास होता और न सन्देह होता और न ही विद्वेष कूटरचना का किसी भी प्रकार का नामोनिशान होता। निष्कर्षत: कह सकते हैं कि सहिष्णुता के साधनों का प्रयोग करके हम धार्मिक सहनशीलता को बढ़ावा दे सकते हैं।

7.10 सारांश

इस ईकाई में हमने सहिष्णुता के साधनों का अध्ययन किया हमने देखा कि किस प्रकार सहिष्णुता प्राप्त करने के लिए हमें धार्मिक एवं सामाजिक आचरण करना चाहिए। हमने यह भी देखा कि किस प्रकार पवित्र कर्त्तव्यपरायण बोध रूपी साधन से हम सच्ची धार्मिक सहिष्णुता को सामाजिक एवं व्यापक स्तर पर व्याख्यायित एवं क्रियान्वित कर सकते हैं। हमने इस ईकाई में इस बात का भी विस्तृत अध्ययन किया कि सहिष्णुता को अन्धविश्वासों से कैसे दूर किया जाय।

अन्धविश्वासों से उत्पन्न संघर्ष को किस प्रकार रोका जाय? सहिष्णुता यदि विज्ञान सम्मत होगी तो संघर्ष कम होने की सम्भावना है। साथ ही साथ हमने इस ईकाई में सहिष्णुता की व्यवहारिता, सहिष्णुता का साधनमय स्वरूप, सहिष्णुता की पवित्रता एवं सहिष्णुता की कर्त्तव्यपरापणयता को भी विस्तृत रूप से जानने का प्रयास किया। हमने इस ईकाई में धार्मिक सहिष्णुता के साधनों का महत्व, सत्य एवं नैतिक आयामों के साथ-साथ इस बात की भी चर्चा की किस प्रकार हमारा व्यावहारिक कियाकलाप सहिष्णुता को प्रभावित करता है। अन्त में हमने देखा कि सहिष्णुता के

विचारधारा की प्रासंगिता क्या है? विश्वशान्ति के लिए सहिष्णुता के अतिरिक्त कोई अन्य विकल्प नहीं है। अन्ततः हम पाते हैं कि सहिष्णुता के माध्यम से हम वर्तमान युग की राष्ट्रीय, धार्मिक एवं सामाजिक समस्याओं के समाधान का प्रयास कर सकते हैं।

7.11 प्रश्न बोध

(1) धार्मिक सहिष्णुता के विभिन्न साधनों की सविस्तार चर्चा कीजिए।

(2) "धार्मिक सहिष्णुता कर्त्तव्य की सकारात्मक मांग करती है न कि केवल अधिकार की"। इस मत से आप कहाँ तक सहमत है अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।

(3) व्यावहारिक सहिष्णुता पर पूर्ण निबन्ध लिखिए।

(4) क्या धार्मिक सहिष्णुता अन्धविश्वासों पर आधारित है? अपना मत प्रस्तुत कीजिए।

7.12 उपयोगी पुस्तकें

(1) धर्म दर्शन – डॉ. वी. एन. सिंह

(2) धर्म दर्शन परिचय - डॉ. हृदय नारायण मिश्र

(3) धर्म दर्शन की मूल समस्यां - वेद प्रकाश वर्मा

(4) सामान्य धर्म दर्शन एवं दार्शनिक विशेषण - याकूब मसीह

इकाई – 08

सहिष्णुता के आधार स्तम्भ

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 सहिष्णुता और शिक्षा

8.3 धर्म सहिष्णुता का प्रतीक–हिन्दू धर्म

8.4 सर्वधर्म समन्वय और धार्मिक सहिष्णुता

8.5 धार्मिक सहिष्णुता एवं आन्तरिक आस्था

8.6 धार्मिक सहिष्णुता का सापेक्षवादी दृष्टिकोण

8.7 भारतीय संस्कृति - सहिष्णुता का स्तम्भ

8.8 निष्कर्ष

8.9 सारांश

5.10 प्रश्नबोध

8.11 उपयोगी पुस्तकें।

8.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य सहिष्णुता के उन आधारों की तलाश करना है जो सहिष्णुता की अवधारणा को जीवंत बनाये रखने में सहायक होते हैं। वास्तव में धार्मिक सहिष्णुता आध्यात्मिक मूल्यों, विश्वासों और प्रथाओं की सराहना करने की क्षमता को संदर्भित करती हैं जो आपको अपने से अलग हैं। वर्तमान समय में दुनियां में मौजूद धर्मों और आध्यात्मिक विश्वसों की अत्यन्त विविधता के कारण यह लक्ष्य अत्यन्त दुस्कर है। इस ईकाई में मतभेदों की समानता किस प्रकार लायी जाय, पर भी अध्ययन किया जायेगा। समाज में लोगों के बीच सामन्जस्य बनाये रखने के लिए धार्मिक सहिष्णुता पर टिकी है वे कितने सार्थक हैं, इसका भी अध्ययन इस ईकाई में किया जायेगा।

8.1 प्रस्तावना

इस ईकाई में धार्मिक सहिष्णुता के उन आधार स्तम्भों की चर्चा की जानी है जिससे धर्म सामाजिक जीवन व्यतीत करने वाले मनुष्यों की जीवन शैली हेतु बह समन्वय स्थापित करता है जहाँ धर्म मानव जीवन के सभी पक्षों को प्रभावित करने वाली उस व्यापक अभिवृत्ति के रूप में प्रकट होता है जो सर्वाधिक मूल्यवान, पवित्र सर्वज्ञ तथा शक्तिशाली समझे जाने वाले आदर्श और अलौकिक उपास्य विषय के प्रति अखण्ड आस्था और पूर्ण प्रतिवहता के फलस्वरूप उत्पन्न होती है। वह मनुष्य के दैनिक आचरण तथा प्रार्थना, पूजा, पाठ जप तप एवं वाह्य कर्मकाण्ड में भी दिखायी देती रहती है। धार्मिक सहिष्णुता वह आधार है जो समाज में शान्ति एवं वैमनस्य को समाप्त किया जा सकता है परन्तु हमारे समक्ष इस प्रकार समन्वय स्थापित करने के लिए विभिन्न समास्याएं दिखायी देती है। व्यावहारिक दृष्टि से सभी धर्मों के प्रति सभी धर्मों से सम्बन्धित मनुष्यों को सहज बनाने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। समस्या यह भी उत्पन्न होती है कि सभी विध्मान धर्मों में से किसी एक धर्म को उत्कृष्ट और किसी अन्य धर्म को निकृष्ट बताना या प्रमाणित करना सम्भव व वांछनीय नहीं है। इस ईकाई में हम अध्ययन करेंगे कि किन आधारों पर हम संसार के अनेक धर्मों में विद्यमान वैमनस्य को व्यावहारीक दृष्टि से किस प्रकार समाप्त किया जा सकता है?

8.2 सहिष्णुता और शिक्षा

वर्तमान समाज में धर्म का स्वरूप विकृत हो गया है। लोगों को शिक्षाप्रद धर्म से घृणा होने लगी है। कुछ लोग तो पाखण्डी, धर्मावलम्बियों की कार्यप्रणाली को भी समाज विरोधी स्वीकार करने लगे हैं। लोग धर्म को संसार विरोधी समझने लगे हैं। धर्म के नाम पर धर्म के संरक्षक अनेक प्रकार के कुकृत्य करते और कराते हैं। वर्तमान समय में यह आम धारणा है कि धर्म जनता विरोधी और शासक समर्थक है। धर्माचार्यों या धार्मिक सम्प्रदायों ने सदैव शासकों का साथ दिया है। निरंकुश शासन को भी ईश्वरीय आदेश बताकर जनता का शोषण होता रहा है। इन्हीं कुरीतियों को दूर करने के लिए आवश्यक है कि धर्म के प्रति जनता को शिक्षित बनाया जाय। नैतिकता और धर्म की शिक्षा में सहिष्णुता हमारे विश्वासों की मापन प्रणाली है जिसमें उनके विकल्पों की सम्भावनाओं को ध्यान में रखा जाता है। शिक्षा ही वह माध्यम है जिससे लोगों को धर्म की वास्तविकता से परिचित किया जा सकता है। इस प्रकार की शिक्षा

परिवार, समाज तथा स्कूलों में व्यापक स्तर से देने की आवश्यकता है। स्कूलों में छात्र/छात्राओं को एक–दूसरे के साथ मिलजुल कर रहना तथा खेलना शामिल है। इसके लिए सहिष्णुता की सीध में बच्चों को बचपन से ही उनकी विविधता की सराहना करना सिखाकर उनके बीच बेहतर सम्बन्धों को बढ़ावा देता है। सहिष्णुता की शिक्षा प्रदान करने से शिक्षार्थियों को सकारात्मक नागरिकता हासिल करने में मदद मिलती है। हमें सहिष्णुता की अवधारणा की शिक्षा सांस्कृतिक परिस्थितियों के आधार पर देनी चाहिए। सभी धर्म प्रचारक यदि धर्म की शिक्षा सार्वभौम धर्म के रूप में प्रचारित करें तो प्रारम्भ से ही लोगों के मन दूसरे के धर्मों के प्रति सामंजस्य की भावना का विकास हो सकता है। यहाँ हम प्रमुख रूप से चार प्रकार के क्षेत्रों में शिक्षा प्रदान करते हुए सहिष्णुता का विकास कर सकते हैं - (1) धार्मिक सन्दर्भों में सहिष्णुता दूसरों की मान्यताओं और प्रथाओं के प्रति एक सम्मानजनक रवैया है, ऐसा रवैया जो सदैव दृढ़धर्मिता या सन्देह द्वारा उत्पन्न होता रहता है। हमें इसकी उत्पत्ति हेतु विभिन्न आधारों को खत्म करने की शिक्षा देनी चाहिए। (2) राजनीतिक सन्दर्भ में इस बात पर जोर नहीं दिया जाना चाहिए दूसरे क्या मानते है और क्या सोचते हैं बल्कि इस बात पर जोर दिया जाना चाहिए कि लोग क्या करते हैं। हमें इसे शिक्षा द्वारा सहिष्णु राजनैतिकता की तरफ अग्रसर करना चाहिए। (3) सहिष्णुता की अवधारणाओं की एक सामान्य विशेषता है जो अन्तर-धार्मिक प्रवचन और राजनीति में आकार लेती है। यह मान लिया जाता है कि दूसरों द्वारा किये गये कर्मो को आसानी से समझा जा सकता है। ऐसी सलझ की शिक्षा देनी चाहिए कि दूसरों के धर्म भी हमारे धर्म ही जैसा क्रियाविधियों का जन्म देते है (4) नैतिकतापरक शिक्षा प्रदान करनी चाहिए हम शिक्षा द्वारा ही सहिष्णुता और नैतिकता की स्थापना कर सकते है।

8.3 धर्म सहिष्णुता का प्रतीक-हिन्दू धर्म

भारतवर्ष एक ऐसा देश है जहाँ विभिन्न धर्मों के लोग प्रयास करते हैं। भारत की ऐसी परम्परा रही है कि प्रारम्भ से ही यहाँ धार्मिक सहिष्णुता और स्वतन्त्रता को स्थान मिला है। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि यहाँ विभिन्न धर्मों के समन्वय वाली तस्वीर भी मिलती है। भारत के संविधान में भी अनेकता में एकता का प्रावधान है। सह अस्तित्व, स्वतन्त्रता और सहिष्णुता और स्वतन्त्रता किसी भी देश की संस्कृति, के पनपने और विकास करने के लिए अनिवार्य और महत्वपूर्ण उपागत है। ये सभी विशेषताएं भारत में प्रचलित प्रमुख हिन्दू धर्म में देखी जा सकती है। भारत में आर्य, द्रविण, मंगोल, शक, यवन, हूण, आस्ट्रिक, किरात, पुलिन्द, अमीर आदि जातियाँ रहती रही हैं और वैदिक, जैन, बौद्ध, इस्लाम, यहूदी और ईसाई धर्म अस्तित्व में रहे हैं। इन जातियों और धर्मों के अस्तित्व से प्रमण मिलता है हि भारत में विचारों की स्वतन्त्रता एवं धर्म सहिष्णुता है। दूसरे शब्दों में यह सकते हैं कि भारत में हमें सहिष्णुता मूल्य के रूप में स्वीकार की जाती रही है। भारतीय ऋषि ने कहा है -

अयं निजः परोवेति गणनां लघुचेतसाम्।

उदार चरितानाम तु वसुद्यु कुटुम्बुकटम।।

भारत में इस विचारी धारा का प्रयकित हिन्दू धर्म चिर नवीन सनातन धर्म है। हम यदि भारत में जातियों और धार्मिक सम्प्रदायों के आक्रमण का इतिहास देखते है और देखते हैं कि इतने आक्रमणों को झोकने और इतनी जातियों और धर्मो को एक जाय समेटने में कोई धर्म सहायक हुआ है तो वह एकमात्र धर्म सनातन धर्म दिखायी देता है। इसी सनातन हिन्दू धर्म से जैन एवं बौद्ध धर्म निकले और स्थान सीमित बनकर रह गये। यदि हिन्दू धर्म सहिष्णु न होता तो वह कब का टूट चुका होता। हिन्दू धर्म में उदारता के साथ-साथ धर्म सहिष्णुता है। इस सन्दर्भ में महात्मा गाँधी ने कहा था - "उदारता एवं सहिष्णुता का भाव ही सदा से सनातन धर्म का सिद्धान्त रहा है। मैं खुद एक सनातनी होने का दावा करता हूँ। मेरे ख्याल से सनातन धर्म ऐतिहासिक काल से भी पहले की पीढ़ियों से आया हुआ और वेद तथा उसके बाद के ग्रन्थों पर रचा हुआ प्राणवान धर्म है। मैं अपने को हिन्दू समझाने में गौरव अनुभव करता हूँ क्योंकि मेरे ख्याल से यह शब्द इतना विशाल है कि यह पृथ्वी कर चारों दिशाओं के पैगम्बरों के उपदेशों के प्रति सहिष्णुता रखता है और इतना ही वहीं बल्कि उन्हें आत्मसात भी करता है।

हिन्दू धर्म की सहिष्णुता का पता इससे भी चकता है कि इस धर्म ने कमी भी यह दावा नहीं किया कि केवल हिन्दू धर्म से ही अन्तिम सत्य की प्राप्ति की जा सकती है। हिन्दू धर्म की सहिष्णुता इससे भी प्रकट होती है जब वह कहता है हमारी जाति और सम्प्रदाय के अतिरिक्त भी लोग है जिन्होंने ईश्वर साक्षात्कार किया है। हिन्दू धर्म के प्राचीन ऋषि तो उदार और सहिष्णु तो थे ही आधुनिक विचारकों श्री रामकृष्णदेव, स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गाँधी और डॉ. राधाकृष्णन इत्यादि ने भी सहिष्णुता का पाठ हिन्दू धर्म के माध्यम से पढ़ाया है। स्वामी विवेकानन्द ने बार-बार हिन्दू धर्म की सहिष्णुता की बात कही है। उन्होंने कहा है कि धर्म किसी एक व्यक्ति द्वारा ही स्थापित एवं प्रचारित नहीं है। यह तत्वों पर आधारित है न कि व्यक्ति पर। हिन्दू धर्म सहिष्णुता का प्रतीक है।

8.4 सर्वधर्म समन्वय और धार्मिक सहिष्णुता

विज्ञान की विकास यात्रा में हम देख सकते हैं कि राष्ट्रों की सामाजिक भौगोलिक एवं राजनैतिक सीमाएँ परिवर्तित ही रही है या दूसरे शब्दों में विश्व एकता की और बढ़ रही हैं परन्तु इस प्रकार की एकता केवल आकम्बन स्वरूप में ही आन्तरिक स्वरूप में नहीं। एक बात तो निकलकर सामने आती है कि यदि हम वाहय एकता की बात करते हैं तो आन्तरिक एकता की एक सम्भावना को भी जन्म देते हैं। हमने जातियों के बन्धनों को तोड़ा है। हमने रूढ़िवादी धर्म विचारों से असहमति जतायी है तो हम इस बात को भी कह सकते हैं कि वाहय एकता के प्रभाव से मनुष्य आदान-प्रदान की संस्कृति में तो आ गया है और कितना अच्छा हो कि जब वह अपने को किसी विशेष धर्म, देश, स्थान तक सीमित न करें। ऐसा करने के लिए धर्म ही एक ऐसा आधार है जो विश्व की एकता की जंजीर को आन्तरिक रूप से दृढ़ करने के लिए आध्यात्मिक पृष्ठभूमि प्रदान कर सकता है। अर्थात् जब तक विश्व के सभी धर्मों में एक समन्वय नहीं होता तब तक हम सहिष्णुता की तरफ नहीं बढ़ सकते हैं। प्रश्न उठता है कि क्या यह सम्भव है? यह गूढ़ प्रश्न है? उत्तर में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि जिस प्रकार विधान विश्व के एकत्व की खोज मतें तीन है उसी प्रकार धर्मदर्शन एवं दर्शन भी एकत्व के ही पक्षपाती हैं। दर्शन के अनुसार यदि विश्व के अस्तित्व का मूल एक ही है

चाहे वह जिस नाम से हो तो यह सम्भावना भी बन सकती है कि सभी धर्म उसी तत्व को पाने की जिस मार्ग पद्धति जो कि अलग-अलग है को भी एक कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में - विश्व के विविध धर्मो को अलग-अलग मार्गों से एक ही लक्ष्य तक पहुँचने की शिक्षा देते हुए कहा जा सकता है कि यदि तत्व एक ही है और सभी धर्म अलग-अलग रास्तों से उसे पाना चाहते हैं तो कोई परेशानी नहीं है बशर्ते दूसरे धर्मों के रास्तों को गलत बताकर लोगों को भ्रमित न किया जाया। ऐसी परिस्थिति में धर्म सम्बन्ध की एक झलक मिल सकती है और सहिष्णुता के लिए स्थान मिलता है।

8.5 धार्मिक सहिष्णुता एवं आन्तरिक आस्था

धार्मिक सहिष्णुता का अर्थ है कि किसी समाज में अलग-अलग धार्मिक मान्यताओं और प्रथाओं को स्वीकृत एवम् सम्मान देना है और आस्था का मतलब किसी व्यक्ति का आन्तरिक दृष्टिकोण, दृढ़विश्वास या भरोसा जो उसे सर्वोच्च शक्ति, ईश्वर एवं मोक्ष से जोड़ता है। धार्मिक सहिष्णुता का मतलब यह भी है कि अलग-अलग धार्मिक मान्यताओं और प्रथाओं की सराधना करना। दार्शनिक आस्था के दृष्टिकोण से यह कहा जा सकता है कि पृथ्वी पर मानव जाति की एक दुनिया है जहाँ कोई अन्य धर्मों एवं अन्य संस्कृतियों के प्रति सहिष्णु हो सकता है तब यह भी सम्भव हो जाता है कि विभिन्न परम्पराओं के लोग मानव जाति के लिए समान आधार पर एक दूसरे से मिलते हैं और यह पारलौकिक सत्ता के एकीकरण द्वारा ही प्राप्त हो सकता है।

पारलौकिक सत्ता का एकीकरण का मार्ग केवल आस्था है। आस्था वह भावना है जो व्यक्तिगत अस्तित्व को स्वयं से परे पारलौकिक के साथ एकीकारण कराती है। यह आस्था ही धार्मिक विश्वास प्रकट करती है जो कि धार्मिक सहिष्णुता का आधार बनती है। बिना आस्था के धार्मिक सहिष्णुता सम्भव नहीं दिखायी देती है। आस्था ही है तो हमारे वाहय कार्यों की दिशा तथ करती है। धर्म में कट्टर विश्वास ही धर्म की आस्था के रूप में व्याख्यायित है। संस्कृतियों और विश्वासों में आस्था का महत्व अब लम्बे समय से महसूस किया जा रहा है। आस्था नैतिकता को आधार प्रदान करती है। व्यक्तिगत सोच के विकास को प्रभावित करती है और जीवन को एक समनार्थक अर्थ देती है जहाँ सहिष्णुता को स्थान मिलता है। हम कह सकते हैं कि धार्मिक सहिष्णुता के आधार स्तम्भों में आस्था एक प्रमुख स्थान रखती है।

8.7 धार्मिक सहिष्णुता का सापेक्षवादी दृष्टिकोण

धार्मिक सहिष्णुता के लिए स्वामी विवेकानन्द से जिस सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है उनमें से एक सापेक्षतावादी दृष्टिकोण भी सम्मिलित है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि धर्म समन्वय का आधार धार्मिक सहिष्णुता सापेक्षवादी दृष्टिकोण पर ही आधारित है। सभी धर्मों के प्रति निष्ठावान, सहभागिता, समदर्शिता और आदर प्रकट करना ही धार्मिक सहिष्णुता के लिए आवश्यक है। रामकृष्ण ने अपनी धार्मिक साधना से यह सिद्ध करके ईसाई धर्म, इस्लाम धर्म अन्यायन्य हिन्दू धर्मों की साधनाएं की है। उन्होंने उन्हीं साधनाओं के बल पर कहा था कि - जितने मत उतने

मत। सभी धर्म सत्य है। धर्म ही ईश्वर नहीं है। भिन्न-भिन्न धर्मों का सीारा लेकर ईश्वर के पास जाया जा सकता है। सभी धर्मों के लोग एक ही को पुकार रहे हैं। स्वामी विवेकानन्द ने धार्मिक सहिष्णुता के लिए सापेक्षवादी दृष्टिकोण की व्याख्या की है। शिकागो धर्म महासभा में उन्होंने कहा था - यदि कोई महाशय यह आशा करें कि यह सहिष्णुता या एकता किसी एक धर्म की विजय और अन्य धर्मो की पराजय है तो मैं उनसे कहता हूँ कि भाई तुम्हारी यह आशा असम्भव है। प्रत्येक धर्म के लिए यह आवश्यक है कि वह अन्य धर्मों के मतों को आत्मसात करके पुष्टि मार्ग को और साथ ही अपने धर्म के वैशिष्ट्य की रक्षा करते हुए प्रकृति के अनुसार वृद्धि को प्राप्त हो। सापेक्षतावादी धर्म ही सच्चा धर्म है। महात्मागाँधी ने भी धर्म का अर्थ उस धर्म से लिया है जो सभी धर्मों को समाहित करें और जो सृष्टिकर्ता का साक्षात्कार कराये। धार्मिक सापेक्षवादी दृष्टिकोण व्यापक रूप में धार्मिक सहिष्णु दृष्टिकोण है जो कि धार्मिक सहिष्णुता का प्रमुख आधार स्तम्भ है।

8.8 भारतीय संस्कृति-सहिष्णुता का स्तम्भ

किसी भी देश की संस्कृति उस देश का वह संस्कार है जिसके आधार पर वह अच्छा या बुरा देश कहा जा सकता है। भारतीय संस्कृति भी इसी प्रकार हजारों वर्षों पूर्व से उपजी संस्कृति है जिसके उपागमों में वे सभ्यताएं समाहित है जो मानव धर्म को प्राण देती रही हैं। भारत वर्ष की संस्कृति और सभ्यता हजारों साल बीत जाने पर भी अभी तक कायम है तो उसकर आधार भारत की आध्यात्मिक चेतना है। भारत के ऋषियों एवं मनीषियों ने विविध सम्प्रदायों के प्रति सहिष्णुता और सम्मान का भाव प्रदान किया है। भारतीय संस्कृति की विशेषता उसकी सहनशीलता में है। भारतीय संस्कृति की वैचरिक सहिष्णुता की सौन्दर्यमयी अभिव्यक्ति अशोक के बारहवें शिलालेख में हुई है – "लोग केवल अपने ही सम्प्रदाय का आदर और दूसरों के सम्प्रदाय की निन्दा न करें। जो व्यक्ति ऐसा करता है वह अपने सम्प्रदाय को अति पहुँचाता है और दूसरे के सम्प्रदाय का भी अपकार करता है। सभी सम्प्रदाय को मानने और उनकी शिक्षा देने वाले विज्ञान होते हैं और कल्याण का कार्य करते है"। भारतीय संस्कृति तो एक महासमुद्र के समान है जिसमें अनेक नदियाँ आ-आकर विलीन होती रही है। भारतीय संस्कृति की कहानी एकता और समाधानों का समन्वय है तथा प्राचीन परम्पराओं और नवीन मानकों के पूर्ण संयोग के उन्नति की कहानी है। भारतीय संस्कृति धर्म की सहिष्णुता के प्रमुख आधार स्तम्भ्यस के रूप में इसलिए स्वीकार की जा सकती है क्योंकि इसमें आध्यात्मिकता, संर्वागीणता, संचरणशीलता, आशा, आस्था एवं कर्म, अवतारवाद, विश्वकल्याण एवं विश्वबन्धुत्व की भावना, त्याग एवं प्रेम अत्यधिक संचरण के रूप में विद्यमान हैं।

8.9 निष्कर्ष

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि सहिष्णुता स्थापित होने के लिए जिन आधारों की आवश्यकता पड़ती है वे आधार स्तम्भ के रूप में जाने जाते है। हमने इस ईकाई में यह वर्णन किया कि भारतीय संस्कृति किस प्रकार सहिष्णुता का आधार स्तम्भ बन सकती है। धर्म किसी भी देश का प्राण तत्व होता है। हम बिना धर्म के नहीं रह सके। परन्तु यदि हम जिस धर्म का पालन करते हैं वह उन विधाओं में ओत–प्रोत है जो मानवजीवन को नरक और शान्त बनाती हैं तो

हमें उस धर्म की समृद्धि करनी चाहिए। साथ–ही–साथ अन्य धर्मों की आलोचना से बचना चाहिए। शिक्षा एक ऐसा उपागम है जिसके माध्यम से धर्म किसी एक धर्म के सैद्धान्तिक विचारों को अन्य धर्म के मानने वाले लोगों तक प्रेषित कर सकते है। भारतीय संस्कृति एवं हिन्दू धर्म व्यापक धर्म है और इस धर्म की शिक्षाएं सहिष्णुता स्थापित करने में सहायक हो सकती हैं।

8.10 सारांश

इस ईकाई का सारांश यह है कि सहिष्णुता के लिए यह आवश्यक है कि हम यह जाने कि जिन आधारों के बता पर हम सहिष्णुता स्थापित होने की आशा करते हैं वे कितने मजबूत और समीचीन है। उनकी कितनी सार्थकता है? हम देखते हैं कि सहिष्णुता की स्थापना या उदय के लिए आध्यात्मिकता का होना अतिआवश्यक है। आध्यात्मिकता द्वारा ही जब हम उस तत्व को पहचानने की कोशिश करते हैं जो सभी लोगों में विद्यमान है चाहे वे किसी भी धर्म का पालन करते हो तो हम कह सकते हैं कि हमने सही अर्थ में यह पहचान की है कि विभिन्न रास्तों से सभी लोग एक ही सत्ता को पाने का प्रयास करते हैं। सहिष्णुता प्राप्ति में जो आवश्यक आधार स्तम्भ हैं उनकी चर्चा इस ईकाई में की गयी है और यह पाया गया है कि हिन्दू धर्म एवं भारतीय संस्कृति ऐसे आधार है, जिनके बल पर धर्म समन्वय की आशा की जा सकती है। विश्वास है कि ऐसा समय भी आयेगा जब विज्ञान मनुष्यों को व्यक्ति मानकर व्यवहार करेगा और जाति एवं धर्म सीमित हो जायेंगे। तब सच्चे अर्थों में वही धर्म प्रभावी एवं अस्तित्व में बना रहेगा जिनमें सर्वांगीणता होगी और वह धर्म सनातन धर्म हो सकता है।

8.11 प्रश्न बोध

1 सहिष्णुता के आधार स्तम्भों का वर्णन कीजिए।

2 "धार्मिक सहिष्णुता सर्वांगीणता थी मांग करती है" यह कथन कहाँ तक सही है? वर्णन कीजिए।

3 भारतीय संस्कृति और सहिष्णुता के मध्य सम्बन्ध स्थापित कीजिए।

8.4 धर्म समन्वय और धार्मिक सहिष्णुता के आधारों में अन्तर स्थापित कीजिए।

8.12 उपयोगी पुस्तकें

1 धर्म दर्शन परिचय - हृदय नारायण मिश्र

2 धर्मदर्शन – डॉ. वी. एन. सिंह

3 धर्म दर्शन की मूल समस्याएं - डॉ. वेदप्रकाश वर्मा

Uttar Pradesh Rajarshi Tandon
Open University

MAPH-114 (N)

समकालीन धार्मिक समस्याएं

खण्ड-3 धर्मों का मिलन बिन्दु 79

इकाई-9 धार्मिक एकता का अर्थ 83

इकाई-10 धर्मों की एकता का विकल्प 93

इकाई-11 धर्मों की सापेक्षता 103

इकाई-12 सर्वधर्म समन्वय, सर्वधर्म समभाव सर्वधर्म सद्भाव 110

खंड 03 – धर्मों का मिलन बिंदु

खंड परिचयः

धार्मिक विविधता और बहुलवाद आधुनिक समाज की एक प्रमुख विशेषता है। विभिन्न धर्मों और आस्थाओं के सह–अस्तित्व ने 'धर्मों का मिलन बिंदु' जैसी अवधारणा को जन्म दिया है। यह खंड इस महत्वपूर्ण विषय का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है, जिसमें धर्मों के बीच समानताओं, अंतर–धार्मिक संवाद, और सार्वभौमिक नैतिक मूल्यों की खोज शामिल है।

धर्मों के मिलन बिंदु की अवधारणा का विकास एक लंबी ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम है। प्राचीन काल से ही विभिन्न सभ्यताओं में धार्मिक आदान–प्रदान और संवाद के उदाहरण मिलते हैं। भारतीय उपमहाद्वीप में वैदिक धर्म, बौद्ध धर्म और जैन धर्म के बीच सांस्कृतिक और दार्शनिक आदान–प्रदान इसका एक प्रमुख उदाहरण है। मध्यकालीन युग में सूफी और भक्ति आंदोलनों ने भी धार्मिक सीमाओं को पार करते हुए एक समन्वयात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।

आधुनिक संदर्भ में, धर्मों के मिलन बिंदु की खोज 19वीं और 20वीं शताब्दी के धार्मिक और दार्शनिक चिंतन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा रही है। स्वामी विवेकानंद, महात्मा गांधी, और रवींद्रनाथ टैगोर जैसे चिंतकों ने धर्मों की मूल एकता पर बल दिया। पश्चिम में, पेरेनियलिज्म के दर्शन ने सभी धर्मों में एक सार्वभौमिक सत्य की उपस्थिति का विचार प्रस्तुत किया।

दार्शनिक दृष्टिकोण से, धर्मों का मिलन बिंदु कई गहन प्रश्न उठाता है। यह सत्य की प्रकृति, धार्मिक अनुभव की वैधता, और नैतिक मूल्यों के स्रोत जैसे मूलभूत दार्शनिक मुद्दों से जुड़ा हुआ है। जॉन हिक जैसे दार्शनिकों ने धार्मिक बहुलवाद के पक्ष में तर्क दिया है, कि विभिन्न धर्म एक ही परम सत्य के विभिन्न व्याख्याएँ हो सकते हैं। वहीं, कार्ल बार्थ जैसे धर्मशास्त्रियों ने ईसाई धर्म की विशिष्टता पर जोर दिया है।

धर्मों के मिलन बिंदु की खोज में एक प्रमुख दृष्टिकोण तुलनात्मक धर्म अध्ययन का है। इस दृष्टिकोण में विभिन्न धर्मों के सिद्धांतों, प्रथाओं, और अनुभवों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। इससे धर्मों के बीच समानताओं और अंतरों को समझने में मदद मिलती है। उदाहरण के लिए, अहिंसा का सिद्धांत जैन, बौद्ध और हिंदू धर्मों में केंद्रीय स्थान रखता है, जबकि करुणा और दया के मूल्य लगभग सभी प्रमुख धर्मों में पाए जाते हैं।

अंतर–धार्मिक संवाद धर्मों के मिलन बिंदु की खोज का एक महत्वपूर्ण साधन है। यह विभिन्न धार्मिक परंपराओं के अनुयायियों के बीच बातचीत और समझ को बढ़ावा देता है। 1893 में शिकागो में आयोजित विश्व धर्म संसद इस दिशा में एक ऐतिहासिक कदम था। आज, अंतर–धार्मिक संवाद न केवल धार्मिक समझ बढ़ाने का माध्यम है, बल्कि शांति स्थापना और सामाजिक सद्भाव के लिए भी एक महत्वपूर्ण उपकरण है।

धर्मों के मिलन बिंदु की खोज में मिस्टिसिज्म या रहस्यवाद एक विशेष स्थान रखता है। विभिन्न धार्मिक परंपराओं के रहस्यवादी अनुभवों में आश्चर्यजनक समानताएं पाई जाती हैं। चाहे वह सूफी इस्लाम का

वहदत–अल–वुजूद हो, या अद्वैत वेदांत का ब्रह्म साक्षात्कार, या ईसाई रहस्यवाद का यूनियो मिस्टिका – ये सभी एक परम सत्य के साथ एकाकारता के अनुभव को व्यक्त करते हैं।

सार्वभौमिक नैतिक मूल्यों की खोज धर्मों के मिलन बिंदु का एक और महत्वपूर्ण पहलू है। यह विचार कि सभी प्रमुख धर्म कुछ मूलभूत नैतिक सिद्धांतों पर सहमत हैं, धर्मों के बीच एकता का एक मजबूत आधार प्रदान करता है। 'स्वर्ण नियम' – दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करो जैसा तुम अपने साथ चाहते हो – इसका एक प्रमुख उदाहरण है, जो लगभग सभी धार्मिक परंपराओं में किसी न किसी रूप में पाया जाता है।

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में धर्मों के मिलन बिंदु की खोज और भी महत्वपूर्ण हो गई है। जैसे–जैसे दुनिया अधिक से अधिक परस्पर जुड़ी हुई होती जा रही है, विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच संवाद और सहयोग की आवश्यकता बढ़ गई है। यह न केवल सांस्कृतिक समझ को बढ़ावा देने के लिए महत्वपूर्ण है, बल्कि वैश्विक शांति और स्थिरता के लिए भी आवश्यक है।

हालांकि, धर्मों के मिलन बिंदु की खोज कई चुनौतियों का सामना करती है। एक प्रमुख चुनौती धार्मिक कट्टरता और अतिवाद है, जो अक्सर अन्य धर्मों के प्रति असहिष्णुता का कारण बनते हैं। इसके अलावा, कुछ आलोचक तर्क देते हैं कि धर्मों के बीच समानताओं पर अत्यधिक जोर देने से उनकी विशिष्ट पहचान और सिद्धांत कमजोर हो सकते हैं।

इस खंड में हम इन विभिन्न पहलुओं का गहन विश्लेषण करेंगे। हम धर्मों के मिलन बिंदु की अवधारणा के ऐतिहासिक विकास का अध्ययन करेंगे, इसके दार्शनिक आधारों की जांच करेंगे, और इसके सामाजिक–राजनीतिक प्रभावों पर विचार करेंगे। हम विभिन्न धार्मिक परंपराओं में पाए जाने वाले समान तत्वों का विश्लेषण करेंगे और अंतर–धार्मिक संवाद के महत्व पर चर्चा करेंगे।

यह खंड छात्रों को धर्मों के मिलन बिंदु की जटिलताओं को समझने में मदद करेगा और उन्हें इस महत्वपूर्ण विषय पर गहराई से सोचने के लिए प्रोत्साहित करेगा। यह उन्हें विभिन्न धार्मिक परंपराओं के बीच संवाद और समझ को बढ़ावा देने के महत्व को समझने में सक्षम बनाएगा, जो आज के बहुसांस्कृतिक और बहुधार्मिक समाज में एक महत्वपूर्ण कौशल है।

अंत में, यह खंड धर्मों के मिलन बिंदु की खोज के भविष्य पर भी विचार करेगा। जैसे–जैसे समाज और प्रौद्योगिकी विकसित होती है, इस क्षेत्र में नई चुनौतियाँ और अवसर सामने आ सकते हैं। उदाहरण के लिए, डिजिटल युग में अंतर–धार्मिक संवाद कैसे प्रभावित हो रहा है, या जलवायु परिवर्तन जैसे वैश्विक मुद्दों पर विभिन्न धार्मिक परंपराएँ कैसे एक साथ काम कर सकती हैं। इन विषयों पर चर्चा छात्रों को भविष्य की संभावनाओं और चुनौतियों के बारे में सोचने के लिए प्रेरित करेगी।

इस प्रकार, यह खंड धर्मों के मिलन बिंदु के विषय को व्यापक और गहन रूप से प्रस्तुत करता है, जो छात्रों को इस महत्वपूर्ण और प्रासंगिक विषय पर एक समग्र समझ प्रदान करेगा। यह उन्हें न केवल विभिन्न धार्मिक परंपराओं के बारे में जानकारी देगा, बल्कि उन्हें धार्मिक विविधता के बीच एकता की खोज के महत्व को भी समझने में मदद करेगा।

प्रस्तुत खंड में धर्मों का मिलन बिंदु पर गहनता से विचार–मर्श हेतु इसे चार इकाईयों में विभाजित किया गया है–

इकाई 9 में धार्मिक एकता का अर्थ पर चिंतन किया गया है।

इकाई 10 में धर्मों की एकता का विकल्प पर चिंतन किया गया है।

इकाई 11 में धर्मों की सापेक्षता पर चिंतन किया गया है।

इकाई 12 में सर्वधर्म मन्यवय, सर्वधर्म समभाव, सर्वधर्म सद्भाव पर चिंतन किया गया है।

----------00000----------

इकाई 09

धार्मिक एकता का अर्थ

इकाई की रूपरेखाः

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 धार्मिक एकता की अवधारणाः एक परिचय

9.3 धार्मिक एकता का अर्थ

9.4 धार्मिक एकता की आवश्यकता

9.5 धार्मिक एकता के मूल सिद्धांत

9.6 धार्मिक एकता के मार्ग में बाधाएँ

9.7 धार्मिक एकता की दिशा में प्रयास

9.8 निष्कर्ष

9.9 सारांश

9.10 प्रश्न बोध

9.11 उपयोगी पुस्तकें

9.0 उद्देश्य

इस अध्याय का मुख्य उद्देश्य छात्रों को धार्मिक एकता के महत्वपूर्ण विषय से परिचित कराना है। हमारे बहुधार्मिक और बहुसांस्कृतिक समाज में, धार्मिक एकता की समझ अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह अध्याय छात्रों को इस जटिल अवधारणा की गहराई से समझने में मदद करेगा। हम धार्मिक एकता के अर्थ, इसकी आवश्यकता, और इसे प्राप्त करने के विभिन्न तरीकों पर चर्चा करेंगे। छात्र यह समझेंगे कि कैसे विभिन्न धर्म, अपनी विविधताओं के बावजूद, मूल मानवीय मूल्यों और नैतिक सिद्धांतों में एक समान हैं। यह ज्ञान उन्हें धार्मिक सहिष्णुता और सद्भाव के महत्व को समझने में सहायक होगा।

इसके अतिरिक्त, हम धार्मिक एकता के मार्ग में आने वाली बाधाओं पर भी प्रकाश डालेंगे। छात्र यह जानेंगे कि धार्मिक कट्टरता, अज्ञानता, और पूर्वाग्रह कैसे धार्मिक एकता के लक्ष्य को प्राप्त करने में बाधक बनते हैं। इस समझ के साथ, वे इन चुनौतियों से निपटने के लिए बेहतर तैयार होंगे। अंत में, हम धार्मिक एकता को बढ़ावा देने के लिए किए जा रहे विभिन्न प्रयासों पर चर्चा करेंगे। छात्र अंतर–धार्मिक संवाद, शैक्षिक पहल, और सांस्कृतिक आदान–प्रदान जैसे महत्वपूर्ण उपायों के बारे में सीखेंगे। यह ज्ञान उन्हें अपने समुदायों में धार्मिक एकता को बढ़ावा देने के लिए प्रेरित करेगा।

इस अध्याय के अंत तक, छात्र न केवल धार्मिक एकता की अवधारणा को समझेंगे, बल्कि इसे अपने दैनिक जीवन में लागू करने के लिए भी प्रेरित होंगे। वे यह समझेंगे कि धार्मिक एकता केवल एक सैद्धांतिक अवधारणा नहीं है, बल्कि एक ऐसा लक्ष्य है जिसे प्राप्त करने के लिए हर व्यक्ति को प्रयास करना चाहिए। यह ज्ञान उन्हें अधिक सहिष्णु, समावेशी और शांतिपूर्ण समाज के निर्माण में योगदान देने में सक्षम बनाएगा।

9.1 प्रस्तावना

धार्मिक एकता एक ऐसी अवधारणा है जो विश्व के विभिन्न धर्मों और आध्यात्मिक परंपराओं के बीच सामंजस्य और सहअस्तित्व की भावना को दर्शाती है। यह विचार इस मान्यता पर आधारित है कि सभी धर्मों का मूल उद्देश्य मानवता की सेवा और आध्यात्मिक उन्नति है, भले ही उनके द्वारा अपनाए गए मार्ग और प्रथाएं अलग–अलग हों। विश्व के इतिहास में, धार्मिक मतभेदों ने अक्सर संघर्ष और विभाजन का कारण बना है। हालांकि, समकालीन समय में, धार्मिक एकता की आवश्यकता पहले से कहीं अधिक महसूस की जा रही है। वैश्वीकरण के इस युग में, जहां विभिन्न संस्कृतियों और धर्मों के लोग एक दूसरे के निकट संपर्क में आ रहे हैं, धार्मिक एकता शांति और सामाजिक सद्भाव के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हो गई है।

धार्मिक एकता का अर्थ यह नहीं है कि सभी धर्मों को एक समान मान लिया जाए या उनकी विशिष्ट पहचान को नकार दिया जाए। बल्कि, यह एक ऐसी दृष्टि है जो विविधता में एकता की खोज करती है। यह मानती है कि प्रत्येक धर्म का अपना अनूठा दृष्टिकोण और योगदान है, और इन विभिन्नताओं को सम्मान के साथ स्वीकार करते हुए, हम एक समृद्ध और सहिष्णु समाज का निर्माण कर सकते हैं।

इस अध्याय में, हम धार्मिक एकता के विभिन्न पहलुओं का गहन अध्ययन करेंगे। हम इसके अर्थ, महत्व, और इसे प्राप्त करने के मार्ग में आने वाली चुनौतियों पर विचार करेंगे। साथ ही, हम उन प्रयासों और पहलों पर भी ध्यान देंगे जो वर्तमान में धार्मिक एकता को बढ़ावा देने के लिए की जा रही हैं। यह अध्याय छात्रों को न केवल इस महत्वपूर्ण विषय की समझ प्रदान करेगा, बल्कि उन्हें अपने दैनिक जीवन में धार्मिक सहिष्णुता और समन्वय को बढ़ावा देने के लिए भी प्रेरित करेगा।

9.2 धार्मिक एकता की अवधारणाः एक परिचय

धार्मिक एकता की अवधारणा एक ऐसी दार्शनिक और सामाजिक दृष्टि है जो विभिन्न धर्मों और आध्यात्मिक परंपराओं के बीच सामंजस्य, समझ और सहयोग की भावना को प्रोत्साहित करती है। यह विचार इस मान्यता पर आधारित है कि सभी धर्म, अपने मूल रूप में, मानवता की सेवा और आध्यात्मिक उत्थान के लिए प्रतिबद्ध हैं। धार्मिक एकता का अर्थ यह नहीं है कि सभी धर्मों को एक समान मान लिया जाए या उनकी विशिष्ट पहचान को नकार दिया जाए। बल्कि, यह विविधता में एकता की खोज करती है और मानती है कि प्रत्येक धर्म का अपना अनूठा योगदान है जो मानव समाज को समृद्ध बनाता है। धार्मिक एकता की अवधारणा कई महत्वपूर्ण सिद्धांतों पर आधारित है। सबसे पहले, यह मानती है कि सभी धर्मों का मूल संदेश प्रेम, करुणा, और मानवता की सेवा है। दूसरा, यह स्वीकार करती है कि विभिन्न धर्मों के बीच मतभेद होना स्वाभाविक है, लेकिन इन मतभेदों को सम्मान और समझ के साथ संबोधित किया जा सकता है। तीसरा, यह मानती है कि धार्मिक विविधता मानव समाज की एक महत्वपूर्ण संपत्ति है, जो हमें विभिन्न दृष्टिकोणों और जीवन के तरीकों को समझने का अवसर प्रदान करती है।

धार्मिक एकता की अवधारणा का इतिहास लंबा और समृद्ध है। प्राचीन काल से ही, कई दार्शनिकों और धार्मिक नेताओं ने धर्मों के बीच समन्वय और सहअस्तित्व की आवश्यकता पर बल दिया है। भारत में, अशोक महान ने अपने शासनकाल में धार्मिक सहिष्णुता को बढ़ावा दिया। मध्यकालीन भारत में, कबीर और नानक जैसे संतों ने धार्मिक एकता का संदेश दिया। आधुनिक काल में, स्वामी विवेकानंद, महात्मा गांधी, और डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन जैसे विचारकों ने धार्मिक एकता के महत्व पर जोर दिया। वर्तमान समय में, धार्मिक एकता की अवधारणा पहले से कहीं अधिक प्रासंगिक हो गई है। वैश्वीकरण के इस युग में, जहां विभिन्न संस्कृतियों और धर्मों के लोग एक दूसरे के निकट संपर्क में आ रहे हैं, धार्मिक एकता शांति और सामाजिक सद्भाव के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह न केवल धार्मिक संघर्षों को रोकने में मदद करती है, बल्कि एक ऐसे समाज के निर्माण में भी योगदान देती है जो विविधता का सम्मान करता है और उससे सीखता है।

9.3 धार्मिक एकता का अर्थ

धार्मिक एकता का अर्थ केवल विभिन्न धर्मों के अनुयायियों के बीच सहिष्णुता या सहअस्तित्व से कहीं अधिक गहरा और व्यापक है। यह एक ऐसी अवधारणा है जो विभिन्न धार्मिक परंपराओं के बीच गहरी समझ, सम्मान और सहयोग की भावना को दर्शाती है। धार्मिक एकता का अर्थ यह नहीं है कि सभी धर्मों को एक समान मान लिया जाए

या उनकी विशिष्ट पहचान को मिटा दिया जाए। बल्कि, यह विविधता में एकता की खोज करने का प्रयास है। धार्मिक एकता का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि यह सभी धर्मों के मूल संदेश में समानता को पहचानती है। चाहे वह हिंदू धर्म का 'वसुधैव कुटुम्बकम्' (पूरी दुनिया एक परिवार है) का संदेश हो, इस्लाम का 'रहमत' (दया) का संदेश हो, ईसाई धर्म का 'प्रेम' का संदेश हो, या बौद्ध धर्म का 'करुणा' का संदेश हो – सभी धर्म मूलतः मानवता की सेवा और आध्यात्मिक उत्थान की बात करते हैं।

धार्मिक एकता का अर्थ यह भी है कि हम धार्मिक विविधता को एक समस्या के रूप में नहीं, बल्कि एक संपत्ति के रूप में देखें। यह मानती है कि प्रत्येक धर्म मानव अनुभव और आध्यात्मिक खोज का एक अनूठा पहलू प्रस्तुत करता है, और इन विभिन्न दृष्टिकोणों से हम सभी सीख सकते हैं और समृद्ध हो सकते हैं। इसके अलावा, धार्मिक एकता का अर्थ है कि हम धार्मिक मतभेदों को सम्मान और संवाद के माध्यम से संबोधित करें, न कि संघर्ष या हिंसा के माध्यम से। यह एक ऐसी दृष्टि है जो मानती है कि विभिन्न धर्मों के बीच वार्तालाप और आदान–प्रदान से न केवल आपसी समझ बढ़ती है, बल्कि यह हमारे अपने धर्म और आस्था की गहरी समझ भी विकसित करने में मदद करता है।

धार्मिक एकता का अर्थ यह भी है कि हम अपने धर्म के प्रति प्रतिबद्ध रहते हुए भी दूसरों के धर्म का सम्मान करें। यह एक ऐसी मानसिकता को बढ़ावा देती है जहां हम अपनी धार्मिक मान्यताओं पर गर्व करते हैं, लेकिन साथ ही दूसरों की आस्था के प्रति भी सम्मान और आदर रखते हैं। अंत में, धार्मिक एकता का अर्थ है कि हम सभी धर्मों के अनुयायियों को एक साझा मानवता के सदस्य के रूप में देखें। यह एक ऐसी दृष्टि है जो धार्मिक सीमाओं से परे जाकर, हमारी साझा मानवीय पहचान और साझा नैतिक मूल्यों पर ध्यान केंद्रित करती है। यह हमें याद दिलाती है कि हमारी विविधता के बावजूद, हम सभी एक ही मानव परिवार के सदस्य हैं और हमारा भविष्य एक दूसरे से जुड़ा हुआ है।

9.4 धार्मिक एकता की आवश्यकता

वर्तमान विश्व परिदृश्य में धार्मिक एकता की आवश्यकता पहले से कहीं अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। यह केवल एक आदर्शवादी अवधारणा नहीं है, बल्कि एक ऐसी आवश्यकता है जो हमारे समाज की स्थिरता, शांति और प्रगति के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

सबसे पहले, धार्मिक एकता वैश्विक शांति और सद्भाव के लिए आवश्यक है। इतिहास गवाह है कि धार्मिक मतभेदों ने कई बार युद्धों और संघर्षों को जन्म दिया है। धार्मिक एकता इन संघर्षों को रोकने और शांतिपूर्ण सहअस्तित्व को बढ़ावा देने में मदद कर सकती है। यह विभिन्न धर्मों के अनुयायियों के बीच संवाद और समझ को प्रोत्साहित करके, गलतफहमियों और पूर्वाग्रहों को दूर करने में सहायक होती है।

दूसरा, धार्मिक एकता सामाजिक समरसता के लिए आवश्यक है। आज के बहुसांस्कृतिक और बहुधार्मिक समाजों में, विभिन्न धर्मों के लोगों को एक साथ रहना और काम करना पड़ता है। धार्मिक एकता इन विविध समुदायों के बीच सामंजस्य और सहयोग को बढ़ावा देती है, जिससे एक मजबूत और एकजुट समाज का निर्माण होता है।

तीसरा, धार्मिक एकता व्यक्तिगत और सामूहिक आध्यात्मिक विकास के लिए आवश्यक है। जब हम अन्य धर्मों के विचारों और प्रथाओं से परिचित होते हैं, तो यह हमारे अपने आध्यात्मिक दृष्टिकोण को समृद्ध और विस्तृत करता है। यह हमें अपने धर्म की गहरी समझ विकसित करने में भी मदद करता है, क्योंकि हम इसे अन्य परंपराओं के संदर्भ में देखते हैं।

चौथा, धार्मिक एकता वैश्विक चुनौतियों से निपटने के लिए आवश्यक है। जलवायु परिवर्तन, गरीबी, और अन्याय जैसी समस्याएं किसी एक धर्म या समुदाय की नहीं हैं। इन चुनौतियों का सामना करने के लिए, हमें धार्मिक सीमाओं से परे जाकर एकजुट होने की आवश्यकता है। धार्मिक एकता इस तरह के सहयोग के लिए एक मजबूत आधार प्रदान करती है।

पांचवां, धार्मिक एकता मानवाधिकारों और मानवीय गरिमा के संरक्षण के लिए आवश्यक है। यह सभी व्यक्तियों के मौलिक अधिकारों का सम्मान करने और उनकी रक्षा करने का आह्वान करती है, चाहे उनका धार्मिक विश्वास कुछ भी हो। यह धार्मिक अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा करने और धार्मिक उत्पीड़न को रोकने में मदद करती है।

अंत में, धार्मिक एकता सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण और विकास के लिए आवश्यक है। विभिन्न धर्म अपने साथ समृद्ध सांस्कृतिक परंपराएं लाते हैं। धार्मिक एकता इन विविध परंपराओं के संरक्षण और सम्मान को बढ़ावा देती है, जबकि साथ ही उनके बीच रचनात्मक संवाद और आदान–प्रदान को प्रोत्साहित करती है। इस प्रकार, धार्मिक एकता न केवल एक नैतिक आदर्श है, बल्कि एक व्यावहारिक आवश्यकता भी है जो हमारे समाज की स्थिरता, प्रगति और समृद्धि के लिए महत्वपूर्ण है।

9.5 धार्मिक एकता के मूल सिद्धांत

धार्मिक एकता एक जटिल और बहुआयामी अवधारणा है, जिसके कुछ मूलभूत सिद्धांत हैं जो इसके आधार का निर्माण करते हैं। इन सिद्धांतों की समझ धार्मिक एकता के व्यावहारिक कार्यान्वयन के लिए आवश्यक है।

पहला और सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत है सर्वधर्म समभाव, जिसका अर्थ है सभी धर्मों के प्रति समान आदर और सम्मान। यह सिद्धांत मानता है कि सभी धर्म अपने अनुयायियों को आध्यात्मिक उन्नति और नैतिक जीवन की ओर ले जाने का प्रयास करते हैं। सर्वधर्म समभाव का अर्थ यह नहीं है कि सभी धर्म एक समान हैं, बल्कि यह कि प्रत्येक धर्म का अपना मूल्य और महत्व है। यह दृष्टिकोण हमें अपने धर्म पर गर्व करने के साथ–साथ दूसरों के धर्म का सम्मान करने की प्रेरणा देता है।

दूसरा महत्वपूर्ण सिद्धांत है धार्मिक सहिष्णुता। यह केवल दूसरों के धार्मिक विश्वासों को सहन करने से कहीं अधिक है। यह एक सक्रिय प्रक्रिया है जिसमें हम दूसरों के विश्वासों और प्रथाओं को समझने और उनका सम्मान करने का प्रयास करते हैं, भले ही वे हमारे अपने विश्वासों से भिन्न हों। धार्मिक सहिष्णुता हमें विविधता को एक समस्या के बजाय एक संपत्ति के रूप में देखने में मदद करती है।

तीसरा सिद्धांत है अहिंसा और करुणा का। लगभग सभी धर्म अहिंसा और करुणा के महत्व पर जोर देते हैं। धार्मिक एकता इन मूल्यों को न केवल व्यक्तिगत जीवन में, बल्कि धार्मिक समुदायों के बीच संबंधों में भी लागू करने का आह्वान करती है। यह सिद्धांत हमें याद दिलाता है कि धार्मिक मतभेदों को हिंसा या द्वेष के माध्यम से नहीं, बल्कि संवाद और समझ के माध्यम से हल किया जाना चाहिए।

चौथा सिद्धांत है साझा नैतिक मूल्यों की पहचान और उनका पालन। हालांकि विभिन्न धर्मों के बीच सिद्धांतों और प्रथाओं में अंतर हो सकता है, लेकिन अधिकांश धर्म कुछ मूलभूत नैतिक मूल्यों जैसे सत्य, न्याय, दया, और सेवा पर सहमत होते हैं। धार्मिक एकता इन साझा मूल्यों पर ध्यान केंद्रित करने और उन्हें बढ़ावा देने का आह्वान करती है।

पांचवां सिद्धांत है आध्यात्मिक अनुभवों की वैधता को स्वीकार करना। यह सिद्धांत मानता है कि आध्यात्मिक अनुभव व्यक्तिगत और विविध हो सकते हैं, और किसी एक धर्म या परंपरा का इन पर एकाधिकार नहीं हो सकता। यह दृष्टिकोण हमें दूसरों के आध्यात्मिक अनुभवों का सम्मान करने और उनसे सीखने के लिए प्रेरित करता है।

अंतिम और महत्वपूर्ण सिद्धांत है मानवता की एकता की पहचान। यह सिद्धांत हमें याद दिलाता है कि हमारी धार्मिक विविधता के बावजूद, हम सभी एक ही मानव परिवार के सदस्य हैं। यह दृष्टिकोण हमें धार्मिक सीमाओं से परे जाकर, साझा मानवीय चुनौतियों का सामना करने और एक बेहतर दुनिया बनाने के लिए एकजुट होने की प्रेरणा देता है। ये सिद्धांत एक साथ मिलकर धार्मिक एकता के लिए एक मजबूत नैतिक और व्यावहारिक आधार प्रदान करते हैं। इनका पालन करके, हम न केवल धार्मिक समुदायों के बीच शांति और सद्भाव को बढ़ावा दे सकते हैं, बल्कि एक अधिक न्यायसंगत और करुणामय समाज का निर्माण भी कर सकते हैं।

9.6 धार्मिक एकता के मार्ग में बाधाएँ

धार्मिक एकता एक महत्वपूर्ण और आवश्यक लक्ष्य है, लेकिन इसे प्राप्त करने के मार्ग में कई बाधाएँ हैं। इन बाधाओं को समझना और उनका सामना करना धार्मिक एकता की दिशा में प्रगति के लिए महत्वपूर्ण है। प्रमुख बाधाओं में से एक है धार्मिक कट्टरता। कट्टरपंथी विचारधाराएँ अक्सर अपने धर्म को एकमात्र सत्य के रूप में देखती हैं और अन्य धर्मों को गलत या निम्न मानती हैं। यह दृष्टिकोण धार्मिक एकता के मूल सिद्धांतों के विपरीत है और अक्सर संघर्ष और विभाजन का कारण बनता है। कट्टरता धार्मिक समुदायों को बंद और असहिष्णु बना सकती है, जो संवाद और समझ के अवसरों को सीमित करता है।

दूसरी महत्वपूर्ण बाधा है अज्ञानता और पूर्वाग्रह। अन्य धर्मों के बारे में ज्ञान की कमी अक्सर गलतफहमियों और नकारात्मक रूढ़ियों को जन्म देती है। ये पूर्वाग्रह लोगों को एक–दूसरे से दूर करते हैं और धार्मिक समुदायों के बीच विश्वास और सम्मान के निर्माण में बाधा डालते हैं। इसके अलावा, अपने धर्म के बारे में भी गहरी समझ की कमी लोगों को अपने धर्म की सतही या विकृत व्याख्या करने की ओर ले जा सकती है।

तीसरी बाधा है राजनीतिक हस्तक्षेप और धर्म का राजनीतिकरण। जब धर्म को राजनीतिक लाभ के लिए इस्तेमाल किया जाता है, तो यह अक्सर धार्मिक समुदायों के बीच तनाव और संघर्ष पैदा करता है। राजनीतिक नेता

कभी–कभी धार्मिक मतभेदों को बढ़ा–चढ़ाकर पेश करते हैं या धार्मिक पहचान के आधार पर लोगों को विभाजित करते हैं, जो धार्मिक एकता के प्रयासों को कमजोर करता है।

चौथी बाधा है ऐतिहासिक कटुता और अविश्वास। पिछले धार्मिक संघर्षों और उत्पीड़न की स्मृतियाँ अक्सर धार्मिक समुदायों के बीच विश्वास और सहयोग के निर्माण में बाधा डालती हैं। इन ऐतिहासिक घावों को भरने और पिछले अन्यायों से निपटने के लिए समय, धैर्य और सक्रिय प्रयासों की आवश्यकता होती है।

पांचवीं बाधा है सामाजिक–आर्थिक असमानताएँ। जब धार्मिक पहचान सामाजिक–आर्थिक स्थिति से जुड़ जाती है, तो यह धार्मिक समुदायों के बीच तनाव और प्रतिस्पर्धा पैदा कर सकती है। गरीबी, शिक्षा तक पहुंच की कमी, और सामाजिक बहिष्कार जैसे मुद्दे धार्मिक तनाव को बढ़ा सकते हैं और धार्मिक एकता के प्रयासों को जटिल बना सकते हैं।

छठी बाधा है मीडिया और सोशल मीडिया का नकारात्मक प्रभाव। सनसनीखेज खबरें और एकतरफा रिपोर्टिंग धार्मिक समुदायों के बारे में नकारात्मक धारणाओं को मजबूत कर सकती हैं। सोशल मीडिया पर फैलने वाली गलत सूचनाएँ और नफरत फैलाने वाले संदेश धार्मिक तनाव को बढ़ा सकते हैं और धार्मिक एकता के प्रयासों को नुकसान पहुंचा सकते हैं।

इन बाधाओं के बावजूद, यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि धार्मिक एकता एक साध्य लक्ष्य है। इन चुनौतियों को पहचानना और उनका सामना करना पहला कदम है। शिक्षा, संवाद, और सामूहिक प्रयासों के माध्यम से, हम इन बाधाओं को दूर कर सकते हैं और धार्मिक एकता की दिशा में प्रगति कर सकते हैं।

9.7 धार्मिक एकता की दिशा में प्रयास

धार्मिक एकता एक जटिल लक्ष्य है, जिसे प्राप्त करने के लिए निरंतर और बहुआयामी प्रयासों की आवश्यकता होती है। विश्व भर में विभिन्न संगठन, संस्थाएँ और व्यक्ति इस दिशा में कार्य कर रहे हैं। इन प्रयासों को समझना और उनमें भाग लेना धार्मिक एकता को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

एक प्रमुख प्रयास है अंतर–धार्मिक संवाद का आयोजन और प्रोत्साहन। यह विभिन्न धर्मों के प्रतिनिधियों को एक साथ लाने और उनके बीच खुले और सम्मानजनक वार्तालाप को बढ़ावा देने का एक तरीका है। इस तरह के संवाद में धार्मिक नेता, विद्वान, और आम लोग शामिल हो सकते हैं। ये संवाद विभिन्न रूप ले सकते हैं, जैसे सम्मेलन, कार्यशालाएँ, या नियमित बैठकें। उदाहरण के लिए, विश्व धर्म संसद जैसे अंतरराष्ट्रीय आयोजन विभिन्न धर्मों के प्रतिनिधियों को एक मंच पर लाते हैं। इन संवादों का उद्देश्य केवल मतभेदों पर चर्चा करना नहीं है, बल्कि साझा मूल्यों और लक्ष्यों की पहचान करना, गलतफहमियों को दूर करना, और सहयोग के अवसर तलाशना भी है। अंतर–धार्मिक संवाद धार्मिक समुदायों के बीच विश्वास और समझ बनाने में मदद करता है, जो धार्मिक एकता की नींव है।

दूसरा महत्वपूर्ण प्रयास है शैक्षिक पहल। यह विभिन्न स्तरों पर हो सकता है, स्कूलों से लेकर विश्वविद्यालयों और सामुदायिक केंद्रों तक। धार्मिक शिक्षा का उद्देश्य केवल एक धर्म के बारे में जानकारी देना नहीं होना चाहिए,

बल्कि विभिन्न धर्मों के बारे में व्यापक और निष्पक्ष जानकारी प्रदान करना होना चाहिए। कई विश्वविद्यालयों में अब तुलनात्मक धर्म अध्ययन के पाठ्यक्रम हैं, जो छात्रों को विभिन्न धार्मिक परंपराओं की गहरी समझ विकसित करने में मदद करते हैं। इसके अलावा, धार्मिक साक्षरता कार्यक्रम और कार्यशालाएँ आम जनता के लिए भी आयोजित की जाती हैं। ये शैक्षिक प्रयास धार्मिक पूर्वाग्रहों और गलतफहमियों को दूर करने में मदद करते हैं, जो अक्सर धार्मिक तनाव का कारण बनते हैं। शिक्षा के माध्यम से, लोग न केवल दूसरों के धर्म के बारे में सीखते हैं, बल्कि अपने धर्म की गहरी समझ भी विकसित करते हैं, जो धार्मिक एकता के लिए महत्वपूर्ण है।

9.8 निष्कर्ष

धार्मिक एकता का विषय जटिल और बहुआयामी है, जिसकी गहरी समझ और निरंतर प्रयास की आवश्यकता है। इस अध्याय में हमने धार्मिक एकता के विभिन्न पहलुओं का विस्तृत अध्ययन किया है, जिससे इसकी महत्ता और व्यापकता स्पष्ट होती है।

हमने देखा कि धार्मिक एकता केवल विभिन्न धर्मों के सहअस्तित्व से कहीं अधिक है। यह एक ऐसी दृष्टि है जो विविधता में एकता की खोज करती है, जो सभी धर्मों के मूल संदेशों में समानता को पहचानती है, और जो मानवता की एकता पर जोर देती है। धार्मिक एकता की आवश्यकता आज के वैश्वीकृत और बहुसांस्कृतिक समाज में पहले से कहीं अधिक महसूस की जा रही है, जहां विभिन्न धर्मों और संस्कृतियों के लोग निकट संपर्क में आ रहे हैं।

हमने यह भी देखा कि धार्मिक एकता के मार्ग में कई बाधाएँ हैं, जैसे धार्मिक कट्टरता, अज्ञानता और पूर्वाग्रह, राजनीतिक हस्तक्षेप, और ऐतिहासिक कटुता। इन बाधाओं को पहचानना और उनका सामना करना धार्मिक एकता की दिशा में प्रगति के लिए आवश्यक है। लेकिन इन चुनौतियों के बावजूद, हमने देखा कि दुनिया भर में धार्मिक एकता को बढ़ावा देने के लिए महत्वपूर्ण प्रयास किए जा रहे हैं। अंतर–धार्मिक संवाद, शैक्षिक पहल, और सामाजिक–सांस्कृतिक आदान–प्रदान जैसे प्रयास धार्मिक समुदायों के बीच समझ और सहयोग को बढ़ावा दे रहे हैं।

निष्कर्ष के रूप में, हम कह सकते हैं कि धार्मिक एकता एक ऐसा लक्ष्य है जिसे प्राप्त करने के लिए निरंतर प्रयास और प्रतिबद्धता की आवश्यकता है। यह न केवल धार्मिक नेताओं और संस्थानों की जिम्मेदारी है, बल्कि प्रत्येक व्यक्ति की भी। हमें अपने दैनिक जीवन में धार्मिक सहिष्णुता और समझ को बढ़ावा देने का प्रयास करना चाहिए। धार्मिक एकता का महत्व केवल धार्मिक क्षेत्र तक सीमित नहीं है। यह सामाजिक सद्भाव, राष्ट्रीय एकता, और वैश्विक शांति के लिए भी महत्वपूर्ण है। एक ऐसे समय में जब दुनिया कई वैश्विक चुनौतियों का सामना कर रही है, धार्मिक एकता हमें इन चुनौतियों का सामना करने के लिए एकजुट होने में मदद कर सकती है।

अंत में, यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि धार्मिक एकता का अर्थ अपनी धार्मिक पहचान या विश्वासों को त्यागना नहीं है। बल्कि, यह अपने धर्म पर गर्व करते हुए दूसरों के धर्म का सम्मान करने, विविधता में एकता की खोज करने, और साझा मानवीय मूल्यों पर ध्यान केंद्रित करने का आह्वान करती है। यह एक ऐसी दृष्टि है जो हमें एक अधिक शांतिपूर्ण, न्यायसंगत और समावेशी दुनिया की ओर ले जा सकती है।

9.9 सारांश

इस अध्याय में हमने धार्मिक एकता के विभिन्न पहलुओं का विस्तृत अध्ययन किया है। यह सारांश उन प्रमुख बिंदुओं को रेखांकित करता है जो हमने इस यात्रा में सीखे हैं। सबसे पहले, हमने धार्मिक एकता की अवधारणा को समझा। यह केवल विभिन्न धर्मों के सहअस्तित्व से कहीं अधिक है। धार्मिक एकता एक ऐसी दृष्टि है जो विविधता में एकता की खोज करती है, सभी धर्मों के मूल संदेशों में समानता को पहचानती है, और मानवता की एकता पर जोर देती है। यह अवधारणा हमें याद दिलाती है कि हमारी धार्मिक विविधता के बावजूद, हम सभी एक ही मानव परिवार के सदस्य हैं।

दूसरा, हमने धार्मिक एकता के अर्थ को गहराई से समझा। इसका अर्थ है कि हम अपने धर्म के प्रति प्रतिबद्ध रहते हुए भी दूसरों के धर्म का सम्मान करें। यह एक ऐसी मानसिकता को बढ़ावा देती है जहां हम अपनी धार्मिक मान्यताओं पर गर्व करते हैं, लेकिन साथ ही दूसरों की आस्था के प्रति भी सम्मान और आदर रखते हैं।

तीसरा, हमने धार्मिक एकता की आवश्यकता पर चर्चा की। आज के वैश्वीकृत और बहुसांस्कृतिक समाज में, जहां विभिन्न धर्मों और संस्कृतियों के लोग निकट संपर्क में आ रहे हैं, धार्मिक एकता की आवश्यकता पहले से कहीं अधिक महसूस की जा रही है। यह न केवल धार्मिक संघर्षों को रोकने के लिए आवश्यक है, बल्कि सामाजिक सद्भाव, राष्ट्रीय एकता, और वैश्विक शांति के लिए भी महत्वपूर्ण है।

चौथा, हमने धार्मिक एकता के मूल सिद्धांतों का अध्ययन किया। इनमें शामिल हैं सर्वधर्म समभाव, धार्मिक सहिष्णुता, अहिंसा और करुणा, साझा नैतिक मूल्यों की पहचान, आध्यात्मिक अनुभवों की वैधता को स्वीकार करना, और मानवता की एकता की पहचान। ये सिद्धांत धार्मिक एकता के लिए एक मजबूत नैतिक और व्यावहारिक आधार प्रदान करते हैं।

पांचवां, हमने धार्मिक एकता के मार्ग में आने वाली बाधाओं पर चर्चा की। इनमें शामिल हैं धार्मिक कट्टरता, अज्ञानता और पूर्वाग्रह, राजनीतिक हस्तक्षेप, ऐतिहासिक कटुता, सामाजिक–आर्थिक असमानताएँ, और मीडिया का नकारात्मक प्रभाव। इन बाधाओं को पहचानना और उनका सामना करना धार्मिक एकता की दिशा में प्रगति के लिए महत्वपूर्ण है।

अंत में, हमने धार्मिक एकता को बढ़ावा देने के लिए किए जा रहे विभिन्न प्रयासों का अध्ययन किया। इनमें शामिल हैं अंतर–धार्मिक संवाद, शैक्षिक पहल, और सामाजिक–सांस्कृतिक आदान–प्रदान। ये प्रयास धार्मिक समुदायों के बीच समझ और सहयोग को बढ़ावा दे रहे हैं। यह सारांश हमें याद दिलाता है कि धार्मिक एकता एक निरंतर प्रक्रिया है, जिसके लिए लगातार प्रयास और प्रतिबद्धता की आवश्यकता है। यह हमारे समय की एक महत्वपूर्ण चुनौती है, लेकिन साथ ही एक ऐसा अवसर भी है जो हमें एक अधिक शांतिपूर्ण, न्यायसंगत और समावेशी दुनिया की ओर ले जा सकता है।

9.10 प्रश्न बोधः

1. धार्मिक एकता की अवधारणा को अपने शब्दों में समझाइए।
2. धार्मिक एकता की आवश्यकता पर प्रकाश डालिए।
3. सर्वधर्म समभाव और धार्मिक सहिष्णुता में क्या अंतर है? विस्तार से समझाइए।
4. धार्मिक एकता के मार्ग में आने वाली प्रमुख बाधाओं का विश्लेषण कीजिए।
5. अंतर–धार्मिक संवाद की भूमिका पर एक निबंध लिखिए।
6. धार्मिक एकता को बढ़ावा देने में शिक्षा की भूमिका पर चर्चा कीजिए।
7. क्या आप मानते हैं कि धार्मिक एकता वैश्विक शांति के लिए आवश्यक है? अपने उत्तर के पक्ष में तर्क दीजिए।

9.11 उपयोगी पुस्तकें:

1. गांधी, मोहनदास करमचंद. "सर्व धर्म समभाव." नवजीवन प्रकाशन मंदिर, 2015.
2. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली. "धर्म और संस्कृति." राजपाल एंड सन्ज़, 2018.
3. विवेकानंद, स्वामी. "विश्व धर्म और भारतीय संस्कृति." रामकृष्ण मठ, 2020.
4. टैगोर, रबीन्द्रनाथ. "धर्म का सार." साहित्य अकादमी, 2017.
5. शर्मा, राम. "वसुधैव कुटुम्बकमः एक विश्लेषण." प्रभात प्रकाशन, 2019.
6. मिश्र, जयशंकर. "भारतीय धर्म और दर्शन." वाणी प्रकाशन, 2021.
7. दयानंद, स्वामी. "सत्यार्थ प्रकाश." आर्य प्रकाशन, 2016.
8. आचार्य, नरेंद्र देव. "धर्म और समाज." राजकमल प्रकाशन, 2022.

इकाई 10

धर्मों की एकता का विकल्प

इकाई की रूपरेखाः

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 धर्मों की एकता का विकल्पः एक परिचय

10.3 धर्मों की एकता का अर्थ और महत्व

10.4 धर्मों की एकता की आवश्यकता

10.4.1 वैश्विक शांति और सद्भाव

10.4.2 सामाजिक समरसता

10.4.3 आध्यात्मिक विकास

10.5 धर्मों की एकता के मार्ग में बाधाएँ

10.5.1 धार्मिक कट्टरता

10.5.2 ऐतिहासिक मतभेद

10.5.3 राजनीतिक हस्तक्षेप

10.6 धर्मों की एकता के विकल्प

10.6.1 अंतर–धार्मिक संवाद

10.6.2 सार्वभौमिक नैतिक मूल्यों की पहचान

10.6.3 धार्मिक सहिष्णुता का विकास

10.7 भारतीय संदर्भ में धर्मों की एकता

10.7.1 वसुधैव कुटुम्बकम की अवधारणा

10.7.2 सर्वधर्म समभाव

10.7.3 भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्षता

10.8 वैश्विक स्तर पर धर्मों की एकता के प्रयास

10.9 निष्कर्ष

10.10 सारांश

10.11 प्रश्न बोध

10.12 उपयोगी पुस्तकें

10.0 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को धर्मों की एकता के विकल्प की अवधारणा से परिचित कराना है। यह एक ऐसा विषय है जो आज के वैश्वीकृत और बहुसांस्कृतिक समाज में अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस इकाई के माध्यम से, हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि विभिन्न धर्मों के बीच एकता कैसे स्थापित की जा सकती है, और यह क्यों आवश्यक है। हम धर्मों की एकता के अर्थ और महत्व पर गहराई से विचार करेंगे, साथ ही इसकी आवश्यकता पर भी चर्चा करेंगे। इसके अलावा, हम उन बाधाओं का विश्लेषण करेंगे जो धर्मों की एकता के मार्ग में आती हैं, और उन विकल्पों पर विचार करेंगे जो इन बाधाओं को दूर करने में मदद कर सकते हैं।

इस इकाई का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि हम भारतीय संदर्भ में धर्मों की एकता पर विशेष ध्यान देंगे। हम भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत और उसके धर्मनिरपेक्ष मूल्यों का अध्ययन करेंगे, जो धर्मों की एकता के लिए एक मजबूत आधार प्रदान करते हैं। अंत में, हम वैश्विक स्तर पर धर्मों की एकता के लिए किए जा रहे प्रयासों पर भी नजर डालेंगे। यह हमें एक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करेगा और हमें यह समझने में मदद करेगा कि कैसे विभिन्न समुदाय और राष्ट्र इस महत्वपूर्ण लक्ष्य की ओर काम कर रहे हैं।

इस इकाई के अंत तक, विद्यार्थी धर्मों की एकता के विकल्प की अवधारणा को गहराई से समझ पाएंगे, इसकी चुनौतियों और संभावनाओं का विश्लेषण कर सकेंगे, और इस विषय पर अपने स्वयं के विचार विकसित कर सकेंगे। यह ज्ञान उन्हें एक अधिक सहिष्णु और समावेशी समाज के निर्माण में योगदान देने के लिए तैयार करेगा।

10.1 प्रस्तावना

धर्म मानव जीवन का एक अभिन्न अंग रहा है, जो हजारों वर्षों से मनुष्य के विचारों, मूल्यों और व्यवहारों को आकार देता आया है। विश्व के विभिन्न कोनों में अनेक धर्मों का उदय और विकास हुआ है, जिनमें से प्रत्येक की अपनी विशिष्ट मान्यताएँ, परंपराएँ और दर्शन हैं। इन धर्मों ने मानव सभ्यता के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, लेकिन साथ ही, धार्मिक मतभेदों ने कई बार संघर्षों और विभाजनों को भी जन्म दिया है।

आज के वैश्वीकृत युग में, जहाँ विभिन्न संस्कृतियों और धर्मों के लोग एक साथ रह रहे हैं और काम कर रहे हैं, धर्मों की एकता का विकल्प एक महत्वपूर्ण विषय बन गया है। यह अवधारणा इस विचार पर आधारित है कि सभी धर्मों के मूल में कुछ सार्वभौमिक मूल्य और नैतिक सिद्धांत हैं, जो मानवता को एकजुट कर सकते हैं।

धर्मों की एकता का अर्थ यह नहीं है कि सभी धर्मों को एक कर दिया जाए या उनकी विशिष्टताओं को मिटा दिया जाए। बल्कि, यह एक ऐसी दृष्टि है जो विविधता में एकता की खोज करती है। यह धार्मिक विविधता को एक समृद्धि के रूप में देखती है और विभिन्न धर्मों के बीच संवाद, समझ और सहयोग को बढ़ावा देती है।

इस इकाई में, हम धर्मों की एकता के विकल्प की इस अवधारणा का गहन अध्ययन करेंगे। हम इसके अर्थ, महत्व और आवश्यकता पर विचार करेंगे। साथ ही, हम उन चुनौतियों का भी विश्लेषण करेंगे जो इस लक्ष्य के मार्ग में आती हैं, और उन संभावित समाधानों पर चर्चा करेंगे जो इन चुनौतियों से निपटने में मदद कर सकते हैं।

भारत, जो विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है और जहाँ अनेक धर्मों के लोग सदियों से साथ–साथ रह रहे हैं, धर्मों की एकता के विकल्प के अध्ययन के लिए एक आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करता है। हम भारतीय संदर्भ में इस अवधारणा का विशेष रूप से अध्ययन करेंगे और देखेंगे कि कैसे भारतीय संस्कृति और संविधान धार्मिक सहिष्णुता और एकता को बढ़ावा देते हैं।

अंत में, हम वैश्विक स्तर पर धर्मों की एकता के लिए किए जा रहे प्रयासों पर भी नजर डालेंगे। यह हमें एक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करेगा और हमें यह समझने में मदद करेगा कि कैसे विभिन्न देश और अंतरराष्ट्रीय संगठन इस महत्वपूर्ण लक्ष्य की ओर काम कर रहे हैं।

10.2 धर्मों की एकता का विकल्पः एक परिचय

धर्मों की एकता का विकल्प एक ऐसी अवधारणा है जो विभिन्न धर्मों के बीच समानताओं और साझा मूल्यों पर ध्यान केंद्रित करती है, बजाय उनके बीच के अंतरों और मतभेदों के। यह दृष्टिकोण यह मानता है कि सभी प्रमुख धर्मों के मूल में कुछ सार्वभौमिक सिद्धांत और नैतिक मूल्य हैं, जैसे करुणा, प्रेम, न्याय, और शांति। इन साझा मूल्यों के आधार पर, धर्मों की एकता का विकल्प एक ऐसे समाज की कल्पना करता है जहाँ विभिन्न धर्मों के अनुयायी एक–दूसरे के साथ सद्भाव और समझ के साथ रह सकें।

यह अवधारणा 20वीं सदी के मध्य में विशेष रूप से प्रचलित हुई, जब विश्व युद्धों के बाद शांति और एकता की आवश्यकता महसूस की गई। महात्मा गांधी, मार्टिन लूथर किंग जूनियर, और दलाई लामा जैसे विचारकों ने इस विचार को आगे बढ़ाया कि धार्मिक विविधता को समाप्त करने के बजाय, हमें इसे एक शक्ति के रूप में देखना चाहिए और विभिन्न धर्मों के बीच संवाद और समझ को बढ़ावा देना चाहिए।

धर्मों की एकता का विकल्प कई स्तरों पर काम करता है। व्यक्तिगत स्तर पर, यह लोगों को अपने धर्म के साथ–साथ दूसरों के धर्मों के बारे में भी सीखने और उनका सम्मान करने के लिए प्रोत्साहित करता है। सामुदायिक स्तर पर, यह अंतर–धार्मिक संवाद और सहयोग को बढ़ावा देता है। राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर, यह धार्मिक स्वतंत्रता और सहिष्णुता के लिए नीतियों और कानूनों के निर्माण का समर्थन करता है।

हालांकि, यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि धर्मों की एकता का विकल्प सभी धर्मों को एक करने या उनकी विशिष्टताओं को मिटाने का प्रयास नहीं करता। बल्कि, यह प्रत्येक धर्म की अनूठी पहचान और परंपराओं का सम्मान करते हुए, उनके बीच संवाद और समझ को बढ़ावा देता है। यह एक ऐसी दृष्टि है जो विविधता में एकता की खोज करती है।

आगे के खंडों में, हम इस अवधारणा के विभिन्न पहलुओं का विस्तार से अध्ययन करेंगे, इसकी आवश्यकता और महत्व पर विचार करेंगे, इसके सामने आने वाली चुनौतियों का विश्लेषण करेंगे, और इसे प्राप्त करने के संभावित तरीकों पर चर्चा करेंगे।

10.3 धर्मों की एकता का अर्थ और महत्व

धर्मों की एकता का अर्थ है विभिन्न धार्मिक परंपराओं के बीच सामंजस्य और सहअस्तित्व की स्थिति। यह एक ऐसी अवधारणा है जो मानती है कि सभी धर्मों के मूल में कुछ सार्वभौमिक मूल्य और नैतिक सिद्धांत हैं, जैसे प्रेम, करुणा, सत्य, और न्याय। धर्मों की एकता का तात्पर्य यह नहीं है कि सभी धर्मों को एक कर दिया जाए या उनकी विशिष्टताओं को मिटा दिया जाए। बल्कि, यह विचार विभिन्न धर्मों की विशिष्टताओं का सम्मान करते हुए, उनके बीच संवाद, समझ और सहयोग को बढ़ावा देता है।

धर्मों की एकता का महत्व आज के वैश्वीकृत और बहुसांस्कृतिक समाज में और भी अधिक बढ़ गया है। यह अवधारणा कई कारणों से महत्वपूर्ण हैः

1. शांति और सद्भावः धर्मों की एकता धार्मिक संघर्षों और तनावों को कम करने में मदद कर सकती है, जो अक्सर हिंसा और अशांति का कारण बनते हैं। यह विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच सहिष्णुता और समझ को बढ़ावा देकर शांतिपूर्ण सहअस्तित्व को संभव बनाती है।
2. सामाजिक एकजुटताः धर्मों की एकता समाज में विभाजनों को कम करने और सामाजिक एकजुटता को बढ़ावा देने में मदद कर सकती है। यह लोगों को धार्मिक सीमाओं से परे देखने और एक साझा मानवता की पहचान करने में सहायता करती है।
3. वैश्विक समस्याओं का समाधानः जलवायु परिवर्तन, गरीबी, और अन्याय जैसी वैश्विक समस्याओं से निपटने के लिए सभी धर्मों के लोगों का सहयोग आवश्यक है। धर्मों की एकता इन समस्याओं पर संयुक्त कार्रवाई को संभव बनाती है।
4. आध्यात्मिक विकासः विभिन्न धार्मिक परंपराओं के बीच संवाद और आदान–प्रदान व्यक्तिगत आध्यात्मिक विकास को बढ़ावा दे सकता है, क्योंकि यह लोगों को अपने धर्म के साथ–साथ अन्य धर्मों की गहराइयों को समझने का अवसर प्रदान करता है।
5. सांस्कृतिक समृद्धिः धर्मों की एकता विभिन्न धार्मिक परंपराओं की सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण और सम्मान को बढ़ावा देती है, जो मानव सभ्यता की समृद्धि का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

इस प्रकार, धर्मों की एकता न केवल धार्मिक क्षेत्र में, बल्कि समाज के सभी पहलुओं में सकारात्मक प्रभाव डाल सकती है, जो एक अधिक शांतिपूर्ण, न्यायसंगत और समावेशी दुनिया के निर्माण में योगदान दे सकती है।

10.4 धर्मों की एकता की आवश्यकता

धर्मों की एकता की आवश्यकता आज के विश्व में पहले से कहीं अधिक महसूस की जा रही है। इसके पीछे कई कारण हैंः

1. वैश्वीकरण का प्रभावः वैश्वीकरण के कारण दुनिया 'ग्लोबल विलेज' में बदल गई है, जहाँ विभिन्न धर्मों और संस्कृतियों के लोग एक साथ रह रहे हैं और काम कर रहे हैं। ऐसे में, धार्मिक सहिष्णुता और समझ की आवश्यकता और भी बढ़ गई है।

2. धार्मिक कट्टरता का खतराः दुनिया के कई हिस्सों में धार्मिक कट्टरता और चरमपंथ बढ़ रहे हैं, जो हिंसा और संघर्ष का कारण बन रहे हैं। धर्मों की एकता इस खतरे से निपटने का एक प्रभावी तरीका हो सकता है।
3. वैश्विक चुनौतियाँः जलवायु परिवर्तन, गरीबी, असमानता जैसी वैश्विक समस्याओं से निपटने के लिए सभी धर्मों के लोगों का सहयोग आवश्यक है। धर्मों की एकता इन समस्याओं पर संयुक्त कार्रवाई को संभव बनाती है।
4. शांति और सुरक्षाः धार्मिक संघर्ष अक्सर राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय सुरक्षा के लिए खतरा बनते हैं। धर्मों की एकता इन संघर्षों को कम करने और शांति स्थापित करने में मदद कर सकती है।
5. सामाजिक समरसताः बहुधार्मिक समाजों में, धर्मों की एकता सामाजिक सद्भाव और एकजुटता को बढ़ावा दे सकती है, जो सामाजिक स्थिरता और विकास के लिए आवश्यक है।

इन कारणों से, धर्मों की एकता न केवल एक आदर्श लक्ष्य है, बल्कि एक व्यावहारिक आवश्यकता भी है, जो हमारे समय की कई गंभीर चुनौतियों का समाधान प्रस्तुत करती है।

10.5 धर्मों की एकता के मार्ग में बाधाएँ

धर्मों की एकता एक महत्वपूर्ण लक्ष्य है, लेकिन इसे प्राप्त करने के मार्ग में कई बाधाएँ हैंः

1. धार्मिक कट्टरताः कुछ लोग अपने धर्म को दूसरों से श्रेष्ठ मानते हैं और अन्य धर्मों के प्रति असहिष्णु रवैया रखते हैं। यह दृष्टिकोण धर्मों के बीच संवाद और समझ को बाधित करता है।
2. ऐतिहासिक मतभेदः कई धार्मिक समुदायों के बीच लंबे समय से चले आ रहे संघर्ष और मतभेद हैं, जो उनके बीच विश्वास और सहयोग को कठिन बनाते हैं।
3. राजनीतिक हस्तक्षेपः कई बार राजनीतिक नेता और दल अपने स्वार्थ के लिए धार्मिक मतभेदों का दुरुपयोग करते हैं, जो धर्मों की एकता के प्रयासों को नुकसान पहुंचाता है।
4. शिक्षा की कमीः बहुत से लोगों को अपने धर्म के अलावा अन्य धर्मों के बारे में पर्याप्त ज्ञान नहीं होता, जो गलतफहमियों और पूर्वाग्रहों को जन्म देता है।
5. मीडिया का प्रभावः कभी–कभी मीडिया धार्मिक मतभेदों और संघर्षों को बढ़ा–चढ़ाकर पेश करता है, जो लोगों के मन में नकारात्मक धारणाएँ पैदा करता है।
6. सामाजिक–आर्थिक असमानताएँः विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच मौजूद सामाजिक–आर्थिक असमानताएँ तनाव और अविश्वास पैदा करती हैं।
7. भाषा और संस्कृति की भिन्नताः विभिन्न धर्मों के अनुयायियों के बीच भाषा और सांस्कृतिक अंतर कभी–कभी संवाद और समझ में बाधा बनते हैं।

इन बाधाओं को पहचानना और उनसे निपटने के तरीके खोजना धर्मों की एकता के लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

10.6 धर्मों की एकता के विकल्प

धर्मों की एकता के लिए कई विकल्प और रणनीतियाँ हैं जो इस लक्ष्य को प्राप्त करने में मदद कर सकती हैं:

1. अंतर–धार्मिक संवादः विभिन्न धर्मों के नेताओं और अनुयायियों के बीच नियमित बातचीत और संवाद आयोजित किया जा सकता है। यह एक–दूसरे के विश्वासों और परंपराओं को समझने में मदद करता है और गलतफहमियों को दूर करता है।
2. सार्वभौमिक नैतिक मूल्यों की पहचानः सभी प्रमुख धर्मों में कुछ साझा नैतिक मूल्य होते हैं, जैसे करुणा, प्रेम, न्याय, और सत्य। इन साझा मूल्यों पर ध्यान केंद्रित करना धर्मों के बीच एकता को बढ़ावा दे सकता है।
3. धार्मिक शिक्षा का विस्तारः स्कूलों और विश्वविद्यालयों में विभिन्न धर्मों के बारे में निष्पक्ष और व्यापक शिक्षा प्रदान की जा सकती है। यह युवा पीढ़ी में धार्मिक सहिष्णुता और समझ को बढ़ावा देगा।
4. सामुदायिक कार्यक्रमः विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच साझा सामुदायिक कार्यक्रम और सेवा परियोजनाएँ आयोजित की जा सकती हैं। यह लोगों को एक–दूसरे के साथ काम करने और संबंध बनाने का अवसर प्रदान करता है।
5. मीडिया की भूमिकाः मीडिया को धार्मिक विविधता और सहिष्णुता को बढ़ावा देने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। सकारात्मक कहानियों और धार्मिक सद्भाव के उदाहरणों को प्रमुखता से प्रस्तुत किया जा सकता है।
6. कानूनी और नीतिगत उपायः सरकारें धार्मिक स्वतंत्रता और समानता को सुनिश्चित करने के लिए कानून और नीतियाँ बना सकती हैं। धार्मिक भेदभाव के खिलाफ कड़े कानून लागू किए जा सकते हैं।
7. आध्यात्मिक पर्यटनः लोगों को विभिन्न धार्मिक स्थलों की यात्रा करने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। यह अन्य धर्मों की संस्कृति और परंपराओं को समझने में मदद करता है।
8. तकनीकी का उपयोगः डिजिटल प्लेटफॉर्म और सोशल मीडिया का उपयोग विभिन्न धर्मों के लोगों के बीच संवाद और सहयोग को बढ़ावा देने के लिए किया जा सकता है।

इन विकल्पों को एक साथ और समन्वित तरीके से लागू करने से धर्मों की एकता के लक्ष्य को प्राप्त करने में मदद मिल सकती है।

10.7 भारतीय संदर्भ में धर्मों की एकता

भारत, जो विश्व का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है और जहाँ अनेक धर्मों के लोग सदियों से साथ–साथ रह रहे हैं, धर्मों की एकता के अध्ययन के लिए एक अद्वितीय और महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करता है।

1. वसुधैव कुटुम्बकम की अवधारणाः यह प्राचीन भारतीय दर्शन का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है, जिसका अर्थ है "पूरी दुनिया एक परिवार है"। यह अवधारणा धर्मों की एकता के मूल में है, क्योंकि यह सभी मनुष्यों की एकता और अंतर्संबंध पर जोर देती है।

2. सर्वधर्म समभावः यह भारतीय संस्कृति का एक प्रमुख सिद्धांत है, जो सभी धर्मों के प्रति समान सम्मान और आदर की बात करता है। महात्मा गांधी ने इस सिद्धांत को अपने जीवन और कार्यों में प्रमुखता से स्थान दिया।
3. भारतीय संविधान में धर्मनिरपेक्षताः भारतीय संविधान धर्मनिरपेक्षता को एक मौलिक सिद्धांत के रूप में स्थापित करता है। यह सभी नागरिकों को धार्मिक स्वतंत्रता की गारंटी देता है और राज्य को सभी धर्मों के प्रति समान व्यवहार करने का निर्देश देता है।
4. सांस्कृतिक विविधताः भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विविधता, जिसमें विभिन्न धर्मों, भाषाओं, और परंपराओं का समावेश है, धर्मों की एकता के लिए एक प्राकृतिक आधार प्रदान करती है। यह विविधता भारतीय समाज की एक अनूठी विशेषता है जो "एकता में विविधता" के सिद्धांत को प्रदर्शित करती है।
5. ऐतिहासिक उदाहरणः भारतीय इतिहास में कई ऐसे उदाहरण हैं जहाँ विभिन्न धर्मों के बीच सामंजस्य और सहयोग देखने को मिला है। उदाहरण के लिए, अकबर का दीन–ए–इलाही, या कबीर और गुरु नानक जैसे संतों का संदेश, जो धार्मिक एकता पर जोर देता था।
6. समकालीन प्रयासः आधुनिक भारत में भी धर्मों की एकता को बढ़ावा देने के लिए कई प्रयास किए जा रहे हैं। इनमें अंतर–धार्मिक संवाद, सामुदायिक सद्भाव कार्यक्रम, और शैक्षिक पहल शामिल हैं।
7. चुनौतियाँः हालाँकि, भारत में धर्मों की एकता के मार्ग में कई चुनौतियाँ भी हैं, जैसे धार्मिक कट्टरता, सांप्रदायिक तनाव, और राजनीतिक दुरुपयोग। इन चुनौतियों से निपटना भारत के लिए एक महत्वपूर्ण कार्य है।

भारतीय संदर्भ में धर्मों की एकता का अध्ययन न केवल भारत के लिए, बल्कि पूरी दुनिया के लिए महत्वपूर्ण सबक और अंतर्दृष्टि प्रदान करता है।

10.8 वैश्विक स्तर पर धर्मों की एकता के प्रयास

वैश्विक स्तर पर धर्मों की एकता को बढ़ावा देने के लिए कई महत्वपूर्ण प्रयास किए जा रहे हैं:

1. संयुक्त राष्ट्र की पहलः संयुक्त राष्ट्र ने "विश्व धर्म सद्भाव सप्ताह" की स्थापना की है, जो हर साल फरवरी के पहले सप्ताह में मनाया जाता है। इसका उद्देश्य विभिन्न धर्मों और विश्वासों के बीच सामंजस्य को बढ़ावा देना है।
2. अंतर्राष्ट्रीय संगठनः कई अंतरराष्ट्रीय संगठन धर्मों की एकता के लिए काम कर रहे हैं। उदाहरण के लिए, "वर्ल्ड कांग्रेस ऑफ फेथ्स" और "पार्लियामेंट ऑफ द वर्ल्ड्स रिलीजन्स" जैसे संगठन नियमित रूप से वैश्विक सम्मेलन आयोजित करते हैं।

3. धार्मिक नेताओं की पहलः विभिन्न धर्मों के प्रमुख नेता धर्मों की एकता के लिए सक्रिय रूप से काम कर रहे हैं। उदाहरण के लिए, पोप फ्रांसिस ने अन्य धर्मों के नेताओं से मुलाकात की है और अंतर–धार्मिक संवाद को बढ़ावा दिया है।
4. शैक्षिक कार्यक्रमः कई विश्वविद्यालयों और संस्थानों में अंतर–धार्मिक अध्ययन के कार्यक्रम शुरू किए गए हैं, जो विभिन्न धर्मों के बीच समझ और संवाद को बढ़ावा देते हैं।
5. मीडिया पहलः कुछ अंतरराष्ट्रीय मीडिया संगठन धर्मों की एकता को बढ़ावा देने के लिए विशेष कार्यक्रम और रिपोर्ट प्रसारित कर रहे हैं।
6. डिजिटल प्लेटफॉर्मः इंटरनेट और सोशल मीडिया का उपयोग विभिन्न धर्मों के लोगों को जोड़ने और संवाद स्थापित करने के लिए किया जा रहा है।
7. अंतरराष्ट्रीय दिवसः "अंतरराष्ट्रीय शांति दिवस" और "विश्व धर्म स्वतंत्रता दिवस" जैसे अवसरों का उपयोग धर्मों की एकता के संदेश को फैलाने के लिए किया जाता है।
8. अनुसंधान और प्रकाशनः कई शोधकर्ता और विद्वान धर्मों की एकता पर शोध कर रहे हैं और इस विषय पर पुस्तकें और लेख प्रकाशित कर रहे हैं।

इन वैश्विक प्रयासों का उद्देश्य धार्मिक विविधता का सम्मान करते हुए, विभिन्न धर्मों के बीच समझ, सहयोग और शांति को बढ़ावा देना है।

10.9 निष्कर्ष

धर्मों की एकता का विकल्प एक महत्वपूर्ण और जटिल विषय है, जो आज के वैश्वीकृत और बहुसांस्कृतिक समाज में अत्यंत प्रासंगिक है। इस इकाई में हमने देखा किः

1. धर्मों की एकता का अर्थ विभिन्न धर्मों के बीच सामंजस्य और सहअस्तित्व है, न कि उनकी विशिष्टताओं को मिटाना।
2. यह अवधारणा शांति, सामाजिक एकजुटता, और वैश्विक समस्याओं के समाधान के लिए महत्वपूर्ण है।
3. धार्मिक कट्टरता, ऐतिहासिक मतभेद, और राजनीतिक हस्तक्षेप जैसी कई बाधाएँ इस लक्ष्य के मार्ग में हैं।
4. इन बाधाओं को दूर करने के लिए अंतर–धार्मिक संवाद, शिक्षा, और सामुदायिक कार्यक्रम जैसे विकल्प मौजूद हैं।
5. भारत, अपनी समृद्ध धार्मिक विविधता के साथ, धर्मों की एकता के अध्ययन के लिए एक महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करता है।
6. वैश्विक स्तर पर भी कई संगठन और पहल धर्मों की एकता को बढ़ावा दे रहे हैं।

निष्कर्षतः, धर्मों की एकता एक ऐसा लक्ष्य है जो न केवल धार्मिक क्षेत्र में, बल्कि समाज के सभी पहलुओं में सकारात्मक प्रभाव डाल सकता है। यह एक ऐसी दुनिया की कल्पना करता है जहाँ विभिन्न धर्मों के लोग एक–दूसरे

के विश्वासों का सम्मान करते हुए, शांति और सद्भाव के साथ रह सकें। हालाँकि यह एक चुनौतीपूर्ण लक्ष्य है, लेकिन यह हमारे समय की कई गंभीर समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करता है। धर्मों की एकता का विकल्प हमें याद दिलाता है कि हमारी विविधता हमारी ताकत है, और अगर हम अपनी साझा मानवता पर ध्यान केंद्रित करें, तो हम एक अधिक शांतिपूर्ण और न्यायसंगत दुनिया का निर्माण कर सकते हैं।

10.10 सारांश

इस इकाई में हमने "धर्मों की एकता का विकल्प" विषय का विस्तृत अध्ययन किया। मुख्य बिंदु इस प्रकार हैं:

1. परिचयः धर्मों की एकता एक ऐसी अवधारणा है जो विभिन्न धर्मों के बीच समानताओं और साझा मूल्यों पर ध्यान केंद्रित करती है।
2. अर्थ और महत्वः यह शांति, सामाजिक एकजुटता, और वैश्विक समस्याओं के समाधान के लिए महत्वपूर्ण है।
3. आवश्यकताः वैश्वीकरण, धार्मिक कट्टरता के खतरे, और वैश्विक चुनौतियों के कारण इसकी आवश्यकता बढ़ गई है।
4. बाधाएँः धार्मिक कट्टरता, ऐतिहासिक मतभेद, राजनीतिक हस्तक्षेप आदि प्रमुख बाधाएँ हैं।
5. विकल्पः अंतर–धार्मिक संवाद, शिक्षा, सामुदायिक कार्यक्रम, कानूनी उपाय आदि इसे प्राप्त करने के विकल्प हैं।
6. भारतीय संदर्भः भारत की धार्मिक विविधता और संवैधानिक धर्मनिरपेक्षता इस अवधारणा के अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण हैं।
7. वैश्विक प्रयासः संयुक्त राष्ट्र, अंतरराष्ट्रीय संगठन, और धार्मिक नेता इस दिशा में काम कर रहे हैं।

निष्कर्षतः, धर्मों की एकता एक महत्वपूर्ण लक्ष्य है जो एक अधिक शांतिपूर्ण और न्यायसंगत दुनिया के निर्माण में योगदान दे सकता है।

10.11 प्रश्न बोध

1. धर्मों की एकता का क्या अर्थ है? यह क्यों महत्वपूर्ण है?
2. वर्तमान समय में धर्मों की एकता की आवश्यकता क्यों बढ़ गई है? कोई तीन कारण बताइए।
3. धर्मों की एकता के मार्ग में आने वाली प्रमुख बाधाओं का वर्णन कीजिए।
4. धर्मों की एकता को बढ़ावा देने के लिए कौन–कौन से विकल्प हैं? किन्हीं चार का विस्तार से वर्णन कीजिए।
5. भारतीय संदर्भ में धर्मों की एकता की अवधारणा का विश्लेषण कीजिए।
6. वैश्विक स्तर पर धर्मों की एकता के लिए किए जा रहे प्रयासों पर एक निबंध लिखिए।
7. क्या आप मानते हैं कि धर्मों की एकता वास्तव में संभव है? अपने विचार तर्कसंगत ढंग से प्रस्तुत कीजिए।

8. अपने समुदाय में धर्मों की एकता को बढ़ावा देने के लिए आप क्या कर सकते हैं? कोई पाँच सुझाव दीजिए।
9. धर्मों की एकता और धर्मनिरपेक्षता में क्या अंतर है? दोनों की तुलना कीजिए।
10. "विविधता में एकता" की अवधारणा धर्मों की एकता से कैसे संबंधित है? विस्तार से समझाइए।

10.12 उपयोगी पुस्तकें

1. गांधी, मोहनदास करमचंद. सत्य के प्रयोगः आत्मकथा. राजपाल एंड सन्स, 2019.
2. रस्किन, जॉन. अन्टू दिस लास्ट. अनुवादक महादेव देसाई, नवजीवन प्रकाशन, 2001.
3. शुक्ल, रामचंद्र. सर्वोदय और धर्मों की एकता. राजकमल प्रकाशन, 2010.
4. विवेकानंद, स्वामी. वेदांत और अद्वैत दर्शन. श्रीरामकृष्ण मठ, 2015.

इकाई 11
धर्मों की सापेक्षता

इकाई की रूपरेखा :

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 धार्मिक सापेक्षता की अवधारणाः एक परिचय

11.3 धार्मिक सापेक्षता का अर्थ

11.4 धार्मिक सापेक्षता की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

11.4.1 प्राचीन भारतीय दर्शन में धार्मिक सहिष्णुता

11.4.2 पाश्चात्य दर्शन में धार्मिक सापेक्षता का विकास

11.4.3 आधुनिक युग में धार्मिक सापेक्षता का महत्व

11.5 धार्मिक सापेक्षता के मूल सिद्धांत

11.5.1 सत्य की बहुलता

11.5.2 धार्मिक विविधता का सम्मान

11.5.3 अहिंसा और करुणा

11.5.4 संवाद और समझ का महत्व

11.6 धार्मिक सापेक्षता के समक्ष चुनौतियाँ

11.6.1 कट्टरपंथी विचारधाराएँ

11.6.2 धार्मिक पहचान की राजनीति

11.6.3 वैश्वीकरण और सांस्कृतिक संघर्ष

11.7 धार्मिक सापेक्षता का वर्तमान परिदृश्य में महत्व

11.8 निष्कर्ष

11.9 सारांश

11.10 प्रश्न बोध

11.11 उपयोगी पुस्तकें

11.0 उद्देश्यः

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य छात्रों को धर्मों की सापेक्षता की अवधारणा से परिचित कराना है। यह अध्याय विद्यार्थियों को धार्मिक विविधता के महत्व और विभिन्न धार्मिक परंपराओं के बीच संवाद की आवश्यकता को समझने में सहायता करेगा। इसके माध्यम से, छात्र धार्मिक सहिष्णुता, आपसी सम्मान और शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व के मूल्यों को आत्मसात करने में सक्षम होंगे। साथ ही, वे वैश्विक समाज में धार्मिक सापेक्षता की भूमिका और इसके सामने आने वाली चुनौतियों पर गहन चिंतन कर सकेंगे।

11.1 प्रस्तावनाः

धर्मों की सापेक्षता एक ऐसी अवधारणा है जो विभिन्न धार्मिक विश्वासों और प्रथाओं के बीच समानता और अंतर को स्वीकार करती है। यह दृष्टिकोण मानता है कि कोई एक धर्म पूर्ण सत्य का एकमात्र अधिकारी नहीं हो सकता, और प्रत्येक धर्म में सत्य के कुछ अंश निहित हैं। इस अध्याय में, हम धार्मिक सापेक्षता के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करेंगे, जैसे इसका इतिहास, मूल सिद्धांत, और वर्तमान समय में इसकी प्रासंगिकता। यह विषय आज के बहुसांस्कृतिक और बहुधार्मिक समाज में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, जहाँ धार्मिक विविधता को सम्मान और समझ के साथ संबोधित करने की आवश्यकता है।

11.2 धार्मिक सापेक्षता की अवधारणाः एक परिचयः

धार्मिक सापेक्षता का सिद्धांत यह मानता है कि विभिन्न धर्म और आध्यात्मिक परंपराएँ एक ही आध्यात्मिक वास्तविकता या सत्य के विभिन्न पहलुओं को प्रतिबिंबित करती हैं। यह दृष्टिकोण धार्मिक विविधता को एक समस्या के रूप में नहीं, बल्कि मानव अनुभव की समृद्धि के रूप में देखता है। धार्मिक सापेक्षता का अर्थ यह नहीं है कि सभी धर्म एक समान हैं या उनके बीच कोई अंतर नहीं है। बल्कि, यह इस बात पर जोर देता है कि विभिन्न धार्मिक परंपराओं में मूल्यवान अंतर्दृष्टि और सिद्धांत हैं जो एक–दूसरे के पूरक हो सकते हैं। यह अवधारणा धार्मिक सहिष्णुता, आपसी सम्मान और अंतर–धार्मिक संवाद को बढ़ावा देती है।

11.3 धार्मिक सापेक्षता का अर्थः

धार्मिक सापेक्षता का अर्थ है विभिन्न धार्मिक विश्वासों और प्रथाओं के बीच समानता और भिन्नता को स्वीकार करना। यह दृष्टिकोण मानता है कि कोई एक धर्म संपूर्ण सत्य का एकमात्र वाहक नहीं हो सकता, और प्रत्येक धर्म में सत्य के कुछ पहलू निहित हैं। धार्मिक सापेक्षता का अर्थ यह नहीं है कि सभी धर्म समान हैं या उनके बीच कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है। बल्कि, यह इस बात पर जोर देता है कि विभिन्न धार्मिक परंपराओं में मूल्यवान अंतर्दृष्टि और शिक्षाएँ हैं जो एक–दूसरे के पूरक हो सकती हैं। धार्मिक सापेक्षता धार्मिक विविधता को एक समस्या के रूप में नहीं, बल्कि मानव अनुभव की समृद्धि के रूप में देखती है।

11.4 धार्मिक सापेक्षता की ऐतिहासिक पृष्ठभूमिः

धार्मिक सापेक्षता की अवधारणा का विकास एक लंबी ऐतिहासिक प्रक्रिया का परिणाम है। प्राचीन भारत में, वेदों में "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" (सत्य एक है, विद्वान उसे अलग–अलग नामों से पुकारते हैं) जैसे विचार इस अवधारणा के प्रारंभिक रूप थे। बौद्ध धर्म और जैन धर्म ने भी धार्मिक सहिष्णुता के विचारों को बढ़ावा दिया। पाश्चात्य दर्शन में, प्रबोधन काल के दौरान धार्मिक सहिष्णुता और विविधता के विचारों ने जोर पकड़ा। 20वीं सदी में, विश्व धर्म संसद (1893) जैसे आयोजनों ने अंतर–धार्मिक संवाद को प्रोत्साहित किया। आधुनिक युग में, वैश्वीकरण और बहुसांस्कृतिक समाजों के उदय ने धार्मिक सापेक्षता के महत्व को और बढ़ा दिया है।

11.4.1 प्राचीन भारतीय दर्शन में धार्मिक सहिष्णुताः

प्राचीन भारतीय दर्शन में धार्मिक सहिष्णुता की जड़ें गहरी हैं। वेदों में "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" (सत्य एक है, विद्वान उसे अलग–अलग नामों से पुकारते हैं) का विचार धार्मिक सापेक्षता का एक प्रारंभिक रूप था। उपनिषदों में "अयम् आत्मा ब्रह्म" (यह आत्मा ब्रह्म है) जैसे विचार सभी जीवों की एकता पर जोर देते हैं। बौद्ध धर्म और जैन धर्म ने अहिंसा और करुणा के माध्यम से धार्मिक सहिष्णुता को बढ़ावा दिया। अशोक के शिलालेखों में सभी धर्मों के प्रति सम्मान का संदेश मिलता है। इस प्रकार, प्राचीन भारतीय दर्शन ने धार्मिक सापेक्षता की नींव रखी।

11.4.2 पाश्चात्य दर्शन में धार्मिक सापेक्षता का विकासः

पाश्चात्य दर्शन में धार्मिक सापेक्षता का विकास प्रबोधन काल से शुरू हुआ। जॉन लॉक जैसे दार्शनिकों ने धार्मिक सहिष्णुता पर जोर दिया। इमैनुएल कांट ने नैतिकता को धर्म से अलग करके धार्मिक सापेक्षता के लिए तार्किक आधार प्रदान किया। 19वीं सदी में, फ्रेडरिक श्लायरमाखर ने धर्म को व्यक्तिगत अनुभव के रूप में परिभाषित किया, जो धार्मिक सापेक्षता के विचार को बढ़ावा देता है। 20वीं सदी में, विलियम जेम्स और जॉन हिक जैसे दार्शनिकों ने धार्मिक बहुलवाद के सिद्धांत को विकसित किया, जो धार्मिक सापेक्षता का एक आधुनिक रूप है।

11.4.3 आधुनिक युग में धार्मिक सापेक्षता का महत्वः

आधुनिक युग में धार्मिक सापेक्षता का महत्व बढ़ गया है। वैश्वीकरण के कारण विभिन्न धर्मों और संस्कृतियों का मिलन हुआ है, जिससे धार्मिक सहिष्णुता की आवश्यकता बढ़ी है। 1893 में शिकागो में आयोजित विश्व धर्म संसद ने अंतर–धार्मिक संवाद को बढ़ावा दिया। महात्मा गांधी और दलाई लामा जैसे नेताओं ने धार्मिक सापेक्षता के महत्व पर जोर दिया। संयुक्त राष्ट्र जैसे अंतरराष्ट्रीय संगठनों ने धार्मिक स्वतंत्रता और सहिष्णुता को मानवाधिकार के रूप में मान्यता दी है। इस प्रकार, आधुनिक युग में धार्मिक सापेक्षता शांति और सामाजिक सद्भाव का एक महत्वपूर्ण साधन बन गई है।

11.5 धार्मिक सापेक्षता के मूल सिद्धांतः

धार्मिक सापेक्षता के मूल सिद्धांतों में सत्य की बहुलता, धार्मिक विविधता का सम्मान, अहिंसा और करुणा, तथा संवाद और समझ का महत्व शामिल हैं। सत्य की बहुलता का अर्थ है कि विभिन्न धर्म सत्य के अलग–अलग पहलुओं को प्रकट करते हैं। धार्मिक विविधता का सम्मान यह मानता है कि प्रत्येक धर्म की अपनी विशिष्ट परंपराएँ और मूल्य हैं जो सम्मान के योग्य हैं। अहिंसा और करुणा के सिद्धांत सभी जीवों के प्रति दया और सहानुभूति पर जोर देते हैं। संवाद और समझ का महत्व विभिन्न धर्मों के अनुयायियों के बीच खुले और सम्मानजनक वार्तालाप को प्रोत्साहित करता है। ये सिद्धांत मिलकर एक ऐसा दृष्टिकोण तैयार करते हैं जो धार्मिक विविधता को स्वीकार करता है और शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व को बढ़ावा देता है।

11.5.1 सत्य की बहुलताः

धार्मिक सापेक्षता का एक मुख्य सिद्धांत है सत्य की बहुलता। यह मानता है कि कोई एक धर्म या विचारधारा पूर्ण सत्य का एकमात्र वाहक नहीं हो सकता। प्रत्येक धर्म या दर्शन सत्य के किसी न किसी पहलू को प्रकट करता है। यह दृष्टिकोण जॉन हिक के 'धार्मिक बहुलवाद' से प्रेरित है, जो कहता है कि विभिन्न धर्म एक ही परम सत्य या वास्तविकता के विभिन्न अनुभव और व्याख्याएँ हैं। सत्य की बहुलता का सिद्धांत धार्मिक कट्टरता और एकाधिकारवाद के विरुद्ध एक महत्वपूर्ण तर्क प्रस्तुत करता है।

11.5.2 धार्मिक विविधता का सम्मानः

धार्मिक सापेक्षता का दूसरा महत्वपूर्ण सिद्धांत है धार्मिक विविधता का सम्मान। यह सिद्धांत मानता है कि प्रत्येक धर्म की अपनी विशिष्ट परंपराएँ, रीति–रिवाज, और मूल्य हैं जो सम्मान के योग्य हैं। यह दृष्टिकोण न केवल अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता को बढ़ावा देता है, बल्कि उनके अनुयायियों के साथ सक्रिय संवाद और सहयोग को भी प्रोत्साहित करता है। धार्मिक विविधता को एक समस्या के बजाय एक संपत्ति के रूप में देखा जाता है, जो मानव अनुभव और ज्ञान को समृद्ध करती है।

11.5.3 अहिंसा और करुणाः

अहिंसा और करुणा धार्मिक सापेक्षता के अन्य महत्वपूर्ण सिद्धांत हैं। ये मूल्य लगभग सभी प्रमुख धर्मों में पाए जाते हैं और धार्मिक सापेक्षता के लिए एक सामान्य आधार प्रदान करते हैं। अहिंसा का अर्थ है किसी भी जीवित प्राणी के प्रति हिंसा न करना, जबकि करुणा का अर्थ है दूसरों के दुख को समझना और उसे दूर करने का प्रयास करना। ये सिद्धांत न केवल व्यक्तिगत आचरण को निर्देशित करते हैं, बल्कि धार्मिक समुदायों के बीच शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व को भी बढ़ावा देते हैं।

11.6 धार्मिक सापेक्षता के समक्ष चुनौतियाँ:

धार्मिक सापेक्षता के सामने कई चुनौतियाँ हैं। कट्टरपंथी विचारधाराएँ, जो अपने धर्म को एकमात्र सत्य मानती हैं, सापेक्षता के विचार का विरोध करती हैं। धार्मिक पहचान की राजनीति धार्मिक मतभेदों को बढ़ा सकती है और सामाजिक विभाजन पैदा कर सकती है। वैश्वीकरण के कारण विभिन्न संस्कृतियों और धर्मों का मिलन होता है, जो कभी–कभी सांस्कृतिक संघर्ष का कारण बन सकता है। इसके अलावा, कुछ लोग धार्मिक सापेक्षता को अपने धार्मिक विश्वासों के लिए खतरा मान सकते हैं। इन चुनौतियों का सामना करने के लिए, शैक्षिक प्रयासों, अंतर–धार्मिक संवाद और सांस्कृतिक आदान–प्रदान की आवश्यकता है।

11.6.1 कट्टरपंथी विचारधाराएँ :

धार्मिक सापेक्षता के समक्ष एक प्रमुख चुनौती है कट्टरपंथी विचारधाराओं का उदय। ये विचारधाराएँ अपने धर्म को एकमात्र सत्य मानती हैं और अन्य धर्मों को गलत या निम्न समझती हैं। कट्टरपंथी अक्सर धार्मिक सापेक्षता के विचार का विरोध करते हैं, इसे अपने धर्म के लिए खतरा मानते हुए। वे धार्मिक पहचान को अतिसरलीकृत और कठोर रूप में परिभाषित करते हैं, जो अंतर–धार्मिक संवाद और समझ में बाधा उत्पन्न करता है। इस चुनौती से निपटने के लिए शिक्षा, संवाद और सामाजिक एकजुटता के प्रयासों की आवश्यकता है।

11.6.2 धार्मिक पहचान की राजनीति :

धार्मिक पहचान की राजनीति धार्मिक सापेक्षता के लिए एक अन्य महत्वपूर्ण चुनौती है। इसमें राजनीतिक लाभ के लिए धार्मिक भावनाओं का उपयोग या दुरुपयोग शामिल है। यह धार्मिक समुदायों के बीच विभाजन पैदा कर सकती है और सामाजिक तनाव को बढ़ा सकती है। धार्मिक पहचान की राजनीति अक्सर धार्मिक अल्पसंख्यकों के अधिकारों को कमजोर करती है और बहुसंख्यकवाद को बढ़ावा देती है। इस चुनौती से निपटने के लिए नागरिक समाज की सक्रिय भूमिका, धर्मनिरपेक्ष मूल्यों का संरक्षण और समावेशी राजनीतिक संस्कृति का विकास आवश्यक है।

11.6.3 वैश्वीकरण और सांस्कृतिक संघर्ष :

वैश्वीकरण के युग में, विभिन्न धर्मों और संस्कृतियों का मिलन तेजी से हो रहा है, जो कभी–कभी सांस्कृतिक संघर्ष का कारण बनता है। यह स्थिति धार्मिक सापेक्षता के लिए एक चुनौती प्रस्तुत करती है। एक ओर, वैश्वीकरण विभिन्न धर्मों के बीच संपर्क और समझ को बढ़ाता है, वहीं दूसरी ओर, यह स्थानीय धार्मिक परंपराओं और पहचानों के लिए खतरा भी बन सकता है। कुछ समुदाय अपनी धार्मिक और सांस्कृतिक विशिष्टता को बचाने के लिए रक्षात्मक हो जाते हैं, जो धार्मिक सापेक्षता के विचार के विरुद्ध जा सकता है। इस चुनौती का सामना करने के लिए सांस्कृतिक संवाद, शिक्षा और समावेशी नीतियों की आवश्यकता है।

11.7 धार्मिक सापेक्षता का वर्तमान परिदृश्य में महत्व:

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में धार्मिक सापेक्षता का महत्व अत्यधिक बढ़ गया है। बहुसांस्कृतिक समाजों में, विभिन्न धर्मों और संस्कृतियों के लोग एक साथ रह रहे हैं, जिससे धार्मिक सहिष्णुता और समझ की आवश्यकता और

भी अधिक हो गई है। धार्मिक सापेक्षता शांति, सामाजिक सद्भाव और सांस्कृतिक विविधता के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह धार्मिक कट्टरता और असहिष्णुता के खिलाफ एक प्रभावी उपकरण के रूप में कार्य करती है। साथ ही, यह वैश्विक समस्याओं जैसे पर्यावरण संरक्षण, मानवाधिकार और सामाजिक न्याय के क्षेत्र में विभिन्न धर्मों के बीच सहयोग को बढ़ावा देती है। इस प्रकार, धार्मिक सापेक्षता एक अधिक समावेशी और शांतिपूर्ण विश्व व्यवस्था के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान देती है।

11.8 निष्कर्ष :

धार्मिक सापेक्षता की अवधारणा आधुनिक बहुसांस्कृतिक समाज में एक महत्वपूर्ण और प्रासंगिक विचार है। यह विभिन्न धार्मिक परंपराओं के बीच समानताओं और अंतरों को पहचानने का एक तरीका प्रदान करती है, जो आपसी सम्मान और समझ को बढ़ावा देता है। धार्मिक सापेक्षता न केवल धार्मिक सहिष्णुता को प्रोत्साहित करती है, बल्कि यह विभिन्न धर्मों के बीच संवाद और सहयोग के लिए एक मंच भी प्रदान करती है। हालांकि इसके सामने कई चुनौतियाँ हैं, जैसे कट्टरपंथी विचारधाराएँ और धार्मिक पहचान की राजनीति, फिर भी इसका महत्व कम नहीं हुआ है। वास्तव में, वैश्वीकरण के युग में, धार्मिक सापेक्षता की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो गई है, क्योंकि यह विश्व शांति, सामाजिक सद्भाव और सांस्कृतिक विविधता के संरक्षण में योगदान देती है।

11.9 सारांशः

इस अध्याय में हमने धार्मिक सापेक्षता की अवधारणा, इसके इतिहास, मूल सिद्धांतों और वर्तमान महत्व का अध्ययन किया। हमने देखा कि धार्मिक सापेक्षता विभिन्न धर्मों में निहित सत्य के विभिन्न पहलुओं को स्वीकार करती है, जबकि प्रत्येक धर्म की विशिष्टता का सम्मान करती है। इसके मूल सिद्धांतों में सत्य की बहुलता, धार्मिक विविधता का सम्मान, अहिंसा और करुणा, तथा संवाद का महत्व शामिल हैं। हमने यह भी देखा कि धार्मिक सापेक्षता के सामने कई चुनौतियाँ हैं, जैसे कट्टरपंथ और धार्मिक पहचान की राजनीति। फिर भी, वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में इसका महत्व बढ़ता जा रहा है, क्योंकि यह शांति, सहिष्णुता और सांस्कृतिक विविधता को बढ़ावा देती है।

11.10 प्रश्न बोधः

1 . धार्मिक सापेक्षता की अवधारणा को अपने शब्दों में समझाइए।

2 . धार्मिक सापेक्षता के मूल सिद्धांतों का वर्णन कीजिए।

3 . वर्तमान समय में धार्मिक सापेक्षता के महत्व पर प्रकाश डालिए।

4 . धार्मिक सापेक्षता के समक्ष आने वाली प्रमुख चुनौतियों की विवेचना कीजिए।

5 . क्या आप मानते हैं कि धार्मिक सापेक्षता विश्व शांति स्थापित करने में सहायक हो सकती है? अपने उत्तर के पक्ष में तर्क दीजिए।

6. धार्मिक सापेक्षता और धार्मिक सहिष्णुता में क्या अंतर है? उदाहरण सहित समझाइए।

7. भारतीय संदर्भ में धार्मिक सापेक्षता की प्रासंगिकता पर एक निबंध लिखिए।

11.11 उपयोगी पुस्तकें:

1. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली. धर्म दर्शन की रूपरेखा. राजपाल एंड संस, 2015.
2. ———. भारतीय दर्शन. राजपाल एंड संस, 2013.
3. ———. धर्म की पुनर्व्याख्या. राजपाल एंड संस, 2010.
4. शर्मा, किशोरी लाल. विश्व के प्रमुख धर्म. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2018.
5. पाणिकर, के.एम. तुलनात्मक धर्म. राधा पब्लिकेशंस, 2016.
6. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली. भारतीय धर्म और दर्शन. राजपाल एंड संस, 2011.

इकाई 12

सर्वधर्म समन्वय, सर्वधर्म समभाव, सर्वधर्म सद्भाव

इकाई की रूपरेखाः

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 सर्वधर्म की अवधारणाः एक परिचय

12.3 सर्वधर्म समन्वय, समभाव और सद्भाव का अर्थ

12.4 सर्वधर्म के सिद्धांतों की उत्पत्ति

12.4.1 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

12.4.2 भारतीय दर्शन और परंपराओं का प्रभाव

12.4.3 आधुनिक भारतीय चिंतकों का योगदान

12.5 सर्वधर्म समन्वय के मूल सिद्धांत

12.6 सर्वधर्म समभाव की महत्वपूर्ण अवधारणाएँ

12.7 सर्वधर्म सद्भाव के प्रमुख आयाम

12.8 वर्तमान समय में सर्वधर्म की प्रासंगिकता

12.9 सर्वधर्म और सामाजिक समरसता

12.10 चुनौतियाँ और समाधान

12.11 निष्कर्ष

12.12 सारांश

12.13 प्रश्न बोध

12.14 उपयोगी पुस्तकें

12.0 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य छात्रों को सर्वधर्म समन्वय, सर्वधर्म समभाव और सर्वधर्म सद्भाव की अवधारणाओं से परिचित कराना है। यह अध्याय इन सिद्धांतों के ऐतिहासिक विकास, दार्शनिक आधार और वर्तमान समय में उनकी प्रासंगिकता पर प्रकाश डालेगा। छात्र इन अवधारणाओं के बीच अंतर्संबंधों को समझेंगे और यह जानेंगे कि ये सिद्धांत किस प्रकार भारतीय समाज में धार्मिक सहिष्णुता और सामाजिक एकता को बढ़ावा देते हैं। इसके अतिरिक्त, यह इकाई छात्रों को इन सिद्धांतों के व्यावहारिक अनुप्रयोग और उनके सामने आने वाली चुनौतियों पर विचार करने के लिए प्रोत्साहित करेगी। अंत में, यह अध्याय छात्रों को इन अवधारणाओं पर गहन चिंतन करने और अपने स्वयं के विचार विकसित करने के लिए प्रेरित करेगा।

12.1 प्रस्तावना

भारत की समृद्ध सांस्कृतिक और धार्मिक विविधता ने सदियों से विभिन्न धर्मों और विचारधाराओं के सह–अस्तित्व को संभव बनाया है। इस विविधता के बीच, सर्वधर्म समन्वय, सर्वधर्म समभाव और सर्वधर्म सद्भाव के सिद्धांत भारतीय समाज के ताने–बाने को मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये अवधारणाएँ न केवल धार्मिक सहिष्णुता को बढ़ावा देती हैं, बल्कि विभिन्न धर्मों और संस्कृतियों के बीच सकारात्मक संवाद और समझ को भी प्रोत्साहित करती हैं। इस प्रस्तावना में, हम इन सिद्धांतों के महत्व पर प्रकाश डालेंगे और यह समझने का प्रयास करेंगे कि ये किस प्रकार भारत की बहुलवादी संस्कृति के आधारस्तंभ बने हुए हैं। साथ ही, हम यह भी देखेंगे कि वर्तमान वैश्वीकृत दुनिया में इन सिद्धांतों की प्रासंगिकता कैसे और भी बढ़ गई है।

12.2 सर्वधर्म की अवधारणाः एक परिचय

सर्वधर्म की अवधारणा भारतीय दर्शन और संस्कृति में गहराई से जड़ी हुई है। यह एक ऐसा दृष्टिकोण है जो सभी धर्मों के प्रति समान सम्मान और स्वीकृति की भावना रखता है। इस अवधारणा का मूल विचार यह है कि हालांकि विभिन्न धर्मों के अपने–अपने विश्वास, रीति–रिवाज और परंपराएँ हो सकती हैं, लेकिन उनका अंतिम लक्ष्य एक ही है – मानवता की सेवा और आध्यात्मिक उत्थान। सर्वधर्म की अवधारणा धार्मिक कट्टरता और असहिष्णुता के विपरीत खड़ी है। यह मानती है कि प्रत्येक धर्म में कुछ न कुछ सत्य और मूल्य निहित हैं, और इसलिए सभी धर्मों का सम्मान किया जाना चाहिए। यह दृष्टिकोण न केवल धार्मिक सहिष्णुता को बढ़ावा देता है, बल्कि विभिन्न धर्मों के बीच संवाद और समझ को भी प्रोत्साहित करता है, जिससे एक शांतिपूर्ण और सामंजस्यपूर्ण समाज का निर्माण होता है।

12.3 सर्वधर्म समन्वय, समभाव और सद्भाव का अर्थ

सर्वधर्म समन्वय का अर्थ है सभी धर्मों के बीच सामंजस्य और एकता की स्थापना। यह विचार मानता है कि विभिन्न धर्मों के मूल सिद्धांत एक दूसरे के पूरक हैं और एक साझा लक्ष्य की ओर ले जाते हैं। सर्वधर्म समभाव का तात्पर्य है सभी धर्मों के प्रति समान भाव रखना, बिना किसी भेदभाव या पूर्वाग्रह के। यह दृष्टिकोण प्रत्येक धर्म की विशिष्टता को स्वीकार करते हुए उनके प्रति समान सम्मान प्रदर्शित करता है। सर्वधर्म सद्भाव का अर्थ है विभिन्न

धर्मों के अनुयायियों के बीच सकारात्मक और मैत्रीपूर्ण संबंधों का विकास। यह न केवल सहिष्णुता बल्कि सक्रिय सहयोग और परस्पर समझ को भी प्रोत्साहित करता है।

12.4 सर्वधर्म के सिद्धांतों की उत्पत्ति

सर्वधर्म के सिद्धांतों की जड़ें भारतीय इतिहास और संस्कृति में गहराई से जुड़ी हुई हैं। प्राचीन भारतीय दर्शन में 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' (सत्य एक है, विद्वान उसे विभिन्न नामों से पुकारते हैं) जैसी अवधारणाएँ इन सिद्धांतों की नींव रखती हैं। बौद्ध और जैन धर्म जैसे दर्शनों ने भी अहिंसा और करुणा के माध्यम से इन विचारों को पोषित किया। मध्यकालीन भक्ति आंदोलन और सूफी परंपरा ने भी धार्मिक समन्वय के विचार को आगे बढ़ाया। आधुनिक काल में, राजा राममोहन राय, स्वामी विवेकानंद, और महात्मा गांधी जैसे चिंतकों ने इन सिद्धांतों को और अधिक व्यापक रूप से प्रचारित किया, जिससे ये राष्ट्रीय एकता और सामाजिक सद्भाव के महत्वपूर्ण स्तंभ बन गए।

12.4.1 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

सर्वधर्म के सिद्धांतों की ऐतिहासिक जड़ें भारत के प्राचीन काल तक फैली हुई हैं। वैदिक काल से ही भारतीय दर्शन में विविधता में एकता का विचार मौजूद रहा है। उपनिषदों में 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' (सत्य एक है, विद्वान उसे अनेक नामों से पुकारते हैं) का सिद्धांत इसी विचार को दर्शाता है। मौर्य सम्राट अशोक ने अपने शासनकाल में धार्मिक सहिष्णुता और सर्वधर्म सम्मान की नीति अपनाई। मध्यकाल में भक्ति आंदोलन और सूफी परंपरा ने भी धार्मिक समन्वय के विचार को आगे बढ़ाया। कबीर, नानक, और अन्य संतों ने अपनी शिक्षाओं के माध्यम से सर्वधर्म के सिद्धांतों को लोकप्रिय बनाया। यह ऐतिहासिक पृष्ठभूमि आधुनिक भारत में सर्वधर्म की अवधारणा के विकास की नींव रही है।

12.4.2 भारतीय दर्शन और परंपराओं का प्रभाव

भारतीय दर्शन और परंपराओं ने सर्वधर्म के सिद्धांतों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वेदांत दर्शन का 'अद्वैत' सिद्धांत, जो सभी अस्तित्व की एकता पर जोर देता है, सर्वधर्म समन्वय के विचार का आधार बना। बौद्ध धर्म के 'करुणा' और 'मैत्री' के सिद्धांत, जैन धर्म का 'अनेकांतवाद', और सिख धर्म का 'सर्व धर्म सम भाव' सर्वधर्म की अवधारणा को पुष्ट करते हैं। हिंदू धर्म की 'वसुधैव कुटुम्बकम्' (सारा विश्व एक परिवार है) की अवधारणा भी इसी विचार को प्रतिबिंबित करती है। इन दार्शनिक विचारों और परंपराओं ने मिलकर एक ऐसी सांस्कृतिक धरोहर तैयार की, जिसने आधुनिक भारत में सर्वधर्म के सिद्धांतों को आकार दिया।

12.4.3 आधुनिक भारतीय चिंतकों का योगदान

आधुनिक काल में, कई प्रमुख भारतीय चिंतकों और नेताओं ने सर्वधर्म के सिद्धांतों को और अधिक विकसित किया और उन्हें व्यापक रूप से प्रचारित किया। राजा राममोहन राय ने ब्रह्म समाज के माध्यम से धार्मिक सुधार और समन्वय का प्रयास किया। स्वामी विवेकानंद ने 1893 के शिकागो धर्म संसद में अपने भाषण के माध्यम से सर्वधर्म समभाव के विचार को वैश्विक मंच पर प्रस्तुत किया। महात्मा गांधी ने सर्वधर्म प्रार्थना सभाओं के माध्यम से इस

विचार को व्यावहारिक रूप दिया और 'सर्वधर्म समभाव' को अपने राजनीतिक और सामाजिक दर्शन का अभिन्न अंग बनाया। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने अपने दार्शनिक लेखन में सर्वधर्म के सिद्धांतों की वैचारिक व्याख्या प्रस्तुत की। इन चिंतकों के योगदान ने सर्वधर्म की अवधारणा को आधुनिक भारत के राष्ट्रीय चरित्र का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बना दिया।

12.5 सर्वधर्म समन्वय के मूल सिद्धांत

सर्वधर्म समन्वय के मूल सिद्धांतों में शामिल हैं: सभी धर्मों की मूल एकता की मान्यता, विविधता में एकता का दर्शन, धार्मिक सहिष्णुता का प्रचार, और आध्यात्मिक अनुभवों की सार्वभौमिकता का स्वीकार। यह सिद्धांत मानता है कि हर धर्म का अपना विशिष्ट मार्ग हो सकता है, लेकिन सभी का लक्ष्य मानवता की सेवा और आत्मज्ञान प्राप्त करना है। यह धार्मिक कट्टरता और अंधविश्वास का विरोध करता है और तर्कसंगत आध्यात्मिकता को बढ़ावा देता है। समन्वय का अर्थ किसी एक धर्म का दूसरे पर प्रभुत्व नहीं, बल्कि सभी धर्मों के बीच सामंजस्यपूर्ण सह–अस्तित्व है।

सर्वधर्म समन्वय के मूल सिद्धांत भारतीय दर्शन और संस्कृति की गहरी समझ पर आधारित हैं। इन सिद्धांतों का मुख्य उद्देश्य विभिन्न धर्मों के बीच सामंजस्य और एकता स्थापित करना है। प्रमुख सिद्धांत इस प्रकार हैं:

1. सभी धर्मों की मूल एकता: यह सिद्धांत मानता है कि सभी धर्मों का अंतिम लक्ष्य एक ही है – आत्मज्ञान और मानवता की सेवा। भले ही विभिन्न धर्मों के रीति–रिवाज और प्रथाएँ अलग–अलग हों, लेकिन उनके मूल में एक ही सत्य निहित है।
2. विविधता में एकता: यह दृष्टिकोण धार्मिक विविधता को एक समस्या के रूप में नहीं, बल्कि एक समृद्धि के रूप में देखता है। यह मानता है कि विभिन्न धर्म एक ही सत्य के विभिन्न पहलुओं को प्रकट करते हैं।
3. धार्मिक सहिष्णुता का प्रचार: सर्वधर्म समन्वय केवल दूसरे धर्मों को सहन करने की बात नहीं करता, बल्कि उनके प्रति सक्रिय सम्मान और समझ विकसित करने पर जोर देता है।
4. आध्यात्मिक अनुभवों की सार्वभौमिकता: यह सिद्धांत मानता है कि आध्यात्मिक अनुभव सार्वभौमिक होते हैं और विभिन्न धर्मों में समान रूप से पाए जाते हैं।
5. धार्मिक कट्टरता का विरोध: सर्वधर्म समन्वय धार्मिक कट्टरता और अंधविश्वास का विरोध करता है और तर्कसंगत आध्यात्मिकता को बढ़ावा देता है।
6. सामाजिक न्याय और मानवता की सेवा: यह सिद्धांत मानता है कि सभी धर्मों का उद्देश्य मानवता की सेवा और सामाजिक न्याय की स्थापना है।
7. अंतर–धार्मिक संवाद का प्रोत्साहन: सर्वधर्म समन्वय विभिन्न धर्मों के बीच सकारात्मक संवाद और आपसी समझ को बढ़ावा देता है।
8. साझा नैतिक मूल्यों पर जोर: यह दृष्टिकोण सभी धर्मों में पाए जाने वाले साझा नैतिक मूल्यों जैसे प्रेम, करुणा, सत्य, और अहिंसा पर जोर देता है।

इन सिद्धांतों का व्यावहारिक अनुप्रयोग न केवल धार्मिक क्षेत्र में, बल्कि समाज के सभी पहलुओं में देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए, शिक्षा में विभिन्न धर्मों के सकारात्मक पहलुओं को शामिल करना, सार्वजनिक नीतियों में सभी धर्मों के हितों का ध्यान रखना, और सामुदायिक कार्यक्रमों में विभिन्न धार्मिक समुदायों की भागीदारी सुनिश्चित करना। सर्वधर्म समन्वय का यह दृष्टिकोण एक ऐसे समाज के निर्माण की ओर ले जाता है जहाँ विविधता का सम्मान होता है और एकता की भावना मजबूत होती है।

12.6 सर्वधर्म समभाव की महत्वपूर्ण अवधारणाएँ

सर्वधर्म समभाव की प्रमुख अवधारणाओं में शामिल हैं: सभी धर्मों के प्रति समान आदर, धार्मिक स्वतंत्रता का सम्मान, किसी भी धर्म के प्रति पूर्वाग्रह या भेदभाव का त्याग, और सभी धर्मों से सीखने की तत्परता। यह दृष्टिकोण व्यक्तिगत धार्मिक विश्वासों को बनाए रखते हुए दूसरों के धर्म के प्रति सम्मान और समझ विकसित करने पर जोर देता है। समभाव का अर्थ है कि सभी धर्मों को राज्य और समाज में समान अधिकार और अवसर मिलें, और किसी भी धर्म को विशेषाधिकार या भेदभाव का सामना न करना पड़े।

सर्वधर्म समभाव एक ऐसी अवधारणा है जो सभी धर्मों के प्रति समान भाव और सम्मान रखने पर जोर देती है। यह दृष्टिकोण धार्मिक विविधता को स्वीकार करते हुए, सभी धर्मों के बीच समानता और सद्भाव स्थापित करने का प्रयास करता है। सर्वधर्म समभाव की प्रमुख अवधारणाएँ निम्नलिखित हैं:

1. समान आदर: यह अवधारणा सभी धर्मों के प्रति समान आदर और सम्मान की भावना रखने पर जोर देती है। इसका अर्थ है कि किसी एक धर्म को दूसरे से श्रेष्ठ या कमतर नहीं माना जाता।

2. धार्मिक स्वतंत्रता: सर्वधर्म समभाव व्यक्तिगत धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार को मान्यता देता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म का पालन करने, उसे बदलने या किसी भी धर्म को न मानने की स्वतंत्रता होनी चाहिए।

3. पूर्वाग्रह और भेदभाव का त्याग: यह दृष्टिकोण किसी भी धर्म के प्रति पूर्वाग्रह या भेदभाव को अस्वीकार करता है। सभी धर्मों और उनके अनुयायियों के साथ समान व्यवहार किया जाना चाहिए।

4. सीखने की तत्परता: सर्वधर्म समभाव दूसरे धर्मों से सीखने और उनके सकारात्मक पहलुओं को समझने की तत्परता को प्रोत्साहित करता है।

5. साझा मूल्यों पर ध्यान: यह अवधारणा विभिन्न धर्मों में पाए जाने वाले साझा मूल्यों और नैतिक सिद्धांतों पर ध्यान केंद्रित करती है, जो सभी धर्मों को एक साथ लाते हैं।

6. समान अवसर: सर्वधर्म समभाव का अर्थ है कि सभी धर्मों को समाज और राज्य में समान अवसर और अधिकार मिलें। किसी भी धर्म को विशेषाधिकार या भेदभाव का सामना नहीं करना चाहिए।

7. अंतर–धार्मिक संवाद: यह दृष्टिकोण विभिन्न धर्मों के बीच खुले और सकारात्मक संवाद को प्रोत्साहित करता है, जिससे आपसी समझ और सहयोग बढ़ता है।

8. सामुदायिक सद्भावः सर्वधर्म समभाव का लक्ष्य विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध स्थापित करना है, जो सामाजिक एकता और राष्ट्रीय एकता को मजबूत करता है।

इन अवधारणाओं को व्यावहारिक रूप में लागू करने के लिए, शैक्षिक पाठ्यक्रमों में धार्मिक सहिष्णुता और समझ को शामिल करना, सार्वजनिक नीतियों में सभी धर्मों के हितों का ध्यान रखना, और मीडिया में धार्मिक विविधता का सकारात्मक चित्रण करना महत्वपूर्ण है। सर्वधर्म समभाव की ये अवधारणाएँ न केवल धार्मिक सहिष्णुता को बढ़ावा देती हैं, बल्कि एक ऐसे समाज के निर्माण में योगदान देती हैं जहाँ विविधता का सम्मान होता है और सभी नागरिक बिना किसी भेदभाव के अपने अधिकारों का उपभोग कर सकते हैं।

12.7 सर्वधर्म सद्भाव के प्रमुख आयाम

सर्वधर्म सद्भाव के प्रमुख आयामों में शामिल हैंः विभिन्न धर्मों के अनुयायियों के बीच सकारात्मक संवाद का प्रोत्साहन, अंतर–धार्मिक सहयोग और समझ का विकास, साझा मानवीय मूल्यों पर ध्यान केंद्रित करना, और धार्मिक विविधता को एक शक्ति के रूप में देखना। यह सिद्धांत धार्मिक समुदायों को एक–दूसरे के त्योहारों और परंपराओं में भाग लेने, साथ मिलकर सामाजिक कार्य करने, और आपसी समझ बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करता है। सद्भाव का लक्ष्य केवल शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व नहीं, बल्कि सक्रिय सहयोग और मित्रता है।

12.8 वर्तमान समय में सर्वधर्म की प्रासंगिकता

वर्तमान वैश्वीकृत दुनिया में, जहाँ धार्मिक तनाव और संघर्ष अक्सर देखने को मिलते हैं, सर्वधर्म के सिद्धांत और भी अधिक प्रासंगिक हो गए हैं। ये सिद्धांत न केवल धार्मिक सहिष्णुता को बढ़ावा देते हैं, बल्कि विभिन्न संस्कृतियों और समुदायों के बीच सेतु का काम भी करते हैं। आज के समय में, जब धार्मिक कट्टरता और असहिष्णुता बढ़ रही है, सर्वधर्म के विचार शांति, सद्भाव और सामाजिक एकता के लिए एक मार्गदर्शक प्रकाश के रूप में कार्य कर सकते हैं। ये सिद्धांत वैश्विक शांति, पर्यावरण संरक्षण, और सामाजिक न्याय जैसे वैश्विक मुद्दों पर सहयोग के लिए एक आधार प्रदान करते हैं।

12.9 सर्वधर्म और सामाजिक समरसता

सर्वधर्म के सिद्धांत सामाजिक समरसता के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये सिद्धांत विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच सेतु का काम करते हैं, जिससे सामाजिक तनाव कम होता है और सामुदायिक सद्भाव बढ़ता है। सर्वधर्म का दृष्टिकोण लोगों को अपनी धार्मिक पहचान बनाए रखते हुए दूसरों के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध रखने के लिए प्रोत्साहित करता है। यह दृष्टिकोण शिक्षा, स्वास्थ्य, और सामाजिक कल्याण जैसे क्षेत्रों में समुदायों के बीच सहयोग को बढ़ावा देता है, जिससे समाज के समग्र विकास में योगदान मिलता है।

12.10 चुनौतियाँ और समाधान

सर्वधर्म के सिद्धांतों को लागू करने में कई चुनौतियाँ हैं, जैसे धार्मिक कट्टरता, ऐतिहासिक मतभेद, और गलत धारणाएँ। इन चुनौतियों का सामना करने के लिए, शैक्षिक पहल, अंतर–धार्मिक संवाद, और सामुदायिक कार्यक्रमों का आयोजन महत्वपूर्ण है। मीडिया और सोशल मीडिया का सकारात्मक उपयोग, युवाओं को शामिल करना, और नेताओं द्वारा उदाहरण प्रस्तुत करना भी प्रभावी रणनीतियाँ हो सकती हैं। इसके अलावा, कानूनी और संवैधानिक प्रावधानों का सही कार्यान्वयन भी आवश्यक है।

12.11 निष्कर्ष

सर्वधर्म समन्वय, समभाव और सद्भाव के सिद्धांत भारतीय समाज के लिए केवल दार्शनिक अवधारणाएँ नहीं हैं, बल्कि सामाजिक सद्भाव और राष्ट्रीय एकता के लिए व्यावहारिक मार्गदर्शक भी हैं। ये सिद्धांत न केवल धार्मिक विविधता का सम्मान करते हैं, बल्कि इसे एक शक्ति के रूप में देखते हैं। वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में, जहाँ धार्मिक मतभेद अक्सर तनाव और संघर्ष का कारण बनते हैं, सर्वधर्म का दृष्टिकोण शांति और सामंजस्य का मार्ग प्रशस्त करता है। यह हमें याद दिलाता है कि विविधता में एकता भारत की ताकत है, और यह दृष्टिकोण न केवल राष्ट्रीय स्तर पर बल्कि वैश्विक स्तर पर भी प्रासंगिक है।

12.12 सारांश

इस इकाई में हमने सर्वधर्म समन्वय, समभाव और सद्भाव के सिद्धांतों का विस्तृत अध्ययन किया। हमने इन अवधारणाओं के अर्थ, उत्पत्ति, और महत्व को समझा। इन सिद्धांतों के मूल तत्वों, वर्तमान समय में उनकी प्रासंगिकता, और उनके सामाजिक प्रभाव पर चर्चा की। साथ ही, हमने इन सिद्धांतों को लागू करने में आने वाली चुनौतियों और उनके संभावित समाधानों पर भी विचार किया। यह इकाई हमें यह समझने में मदद करती है कि कैसे सर्वधर्म के सिद्धांत भारतीय समाज के ताने–बाने को मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

12.13 प्रश्न बोध

1. सर्वधर्म समन्वय, समभाव और सद्भाव के बीच अंतर स्पष्ट कीजिए।
2. सर्वधर्म के सिद्धांतों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिए।
3. वर्तमान समय में सर्वधर्म की प्रासंगिकता पर एक निबंध लिखिए।
4. सर्वधर्म के सिद्धांतों को लागू करने में आने वाली चुनौतियों और उनके संभावित समाधानों पर चर्चा कीजिए।
5. सामाजिक समरसता के निर्माण में सर्वधर्म की भूमिका का विश्लेषण कीजिए।
6. क्या आप मानते हैं कि सर्वधर्म के सिद्धांत वैश्विक शांति स्थापना में योगदान दे सकते हैं? अपने उत्तर के पक्ष में तर्क दीजिए।

7. भारतीय संविधान में निहित धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत और सर्वधर्म की अवधारणा के बीच संबंध पर टिप्पणी कीजिए।
8. सर्वधर्म के सिद्धांतों को बढ़ावा देने में शिक्षा की भूमिका पर एक संक्षिप्त निबंध लिखिए।
9. आधुनिक भारत के निर्माण में सर्वधर्म के योगदान का मूल्यांकन कीजिए।
10. सर्वधर्म के सिद्धांतों को अपने दैनिक जीवन में कैसे लागू किया जा सकता है? उदाहरण सहित समझाइए।

12.14 उपयोगी पुस्तकें

1. गांधी, मोहनदास करमचंद. सर्वधर्म समभाव. नवजीवन प्रकाशन मंदिर, 2015.
2. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली. भारतीय दर्शन. राजपाल एंड संस, 2018.
3. टैगोर, रबीन्द्रनाथ. गीतांजलिः एक धार्मिक काव्य संग्रह. पेंगुइन बुक्स इंडिया, 2011.
4. नेहरू, जवाहरलाल. डिस्कवरी ऑफ़ इंडिया. पेंगुइन बुक्स, 2008.
5. अंबेडकर, भीमराव रामजी. बुद्ध और उनका धम्म. नवयान प्रकाशन, 2016.
6. विवेकानंद, स्वामी. विवेकानंद साहित्य. अद्वैत आश्रम, 2017.
7. शर्मा, राम. भारतीय संस्कृतिः कुछ विचार. राजकमल प्रकाशन, 2019.
8. सिंह, खुशवंत. भारतः एक परिचय. पेंगुइन बुक्स इंडिया, 2010.
9. तिवारी, रामचंद्र. भारतीय धर्म और दर्शन. विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2014.
10. मिश्र, जयशंकर. आधुनिक भारत का इतिहास. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2020.

Uttar Pradesh Rajarshi Tandon
Open University

MAPH-114 (N)

समकालीन धार्मिक समस्याएं

खण्ड -4 धर्म परिवर्तन 119

इकाई -13 धर्म परिवर्तन के आयाम 121

इकाई -14 धर्म परिवर्तन के प्रकार 129

इकाई -15 धर्म परिवर्तन के प्रेरक तत्व 136

इकाई -16 धर्मांतरण 142

खण्ड - 4
धर्म परिवर्तन

खण्ड परिचय –

मनुष्य एक समाजिक प्राणी है। समाज में रहते हुए वह विभिन्न प्रकार के क्रियान्वयनों में संलिप्त रहता है। यदि हम धर्म की व्याख्या पर जाये तो हम देखते हैं कि धर्म प्रत्येक व्यक्ति का प्राजतत्व होता है। धर्म वह संजीवनी है जो किसी भी व्यक्ति में ऊर्जा का संचार करता है। इस ऊर्जा से व्यक्ति सामाजिक, आर्थिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है और जीवन यापन करता रहता है। परन्तु कभी-कभी धर्म की कुछ ऐसी घटनाएं होती है जब व्यक्ति अपने जीवन में असन्तुष्ट या अशान्त होता है तो वह धार्मिक विश्वासों के आधार पर अपनी असन्तुष्टि या अशान्ति दूर करना चाहता है।

कभी-कभी ऐसा भी होता है उसको मूल धर्म के धार्मिक विश्वास उसकी अशान्ति दूर नहीं कर पाते या उसकी अशान्ति का जो कारण है वह अनुचित और अमर्यादित है जिसकी वजह से धर्म उसे कोई सहायता नहीं दे सकता तो वह व्यक्ति अपने मूल धर्म के रीति-रिवाजों पर अविश्वास प्रकट करता है और दूसरे धर्म के रीति–रिवाजों और धार्मिक विश्वासों के प्रति आकर्षित होता है। उसका यह आकर्षण तब और बढ़ जाता है जब उसे यह ज्ञात होता है कि यदि वह भी चाहे तो दूसरा धर्म अपना सकता है और दूसरे धर्म के लोग अपने धर्म के विस्तार एवं प्रचार-प्रसार के लिए उसे विभिन्न प्रकार की लालच और विश्वास देते हैं कि यदि वह अपना धर्म छोड़कर दूसरा धर्म ग्रहण करता है तो उसकी समस्याओं का समाधान हो सकता है। अर्थात् अपने मूल धर्म को त्यागकर दूसरे धर्म में अपने को परिवर्तित करता है या धर्म - परिवर्तन करता है। इस खण्ड में धर्म परिवर्तन क्या है, धर्म परिवर्तन का सटीक एवं उचिवत अर्थ क्या है यह किया जाना आवश्यक है या अनावश्यक, किये जाने की विधियाँ क्या है? कानून धर्म परिवर्तन पर कहाँ तक लगाम लगताा है? धार्मिक शिक्षा की धर्म परिवर्तन पर कितनी भूमिका है। धर्म परिवर्तन का औचित्य क्या है, धर्म परिवर्तन रोकने हेतु क्या सुझाव है, इत्यादि प्रश्नों के प्रशमन के लिए चर्चा की जायेगी।

वस्तुत: धर्म परिवर्तन भारत जैसे देश में एक समस्या के रूप में प्राफुरित है क्योंकि भारत में धर्म निरपेक्षता जैसे कानून के अधिकार के कारण विभिन्न धर्मों के लोग निवास करते है और सभी अपने धर्म की श्रेष्ठता सिद्ध करने क लिए विभिन्न प्रकार के उपागम करते रहते हैं। इस खण्ड में धर्म परिवर्तन के उन समस्त कारणों की भी यर्था की गयी है जो कि व्यक्ति या समुदाय को ऐसा करने के लिए प्रेरित करते हैं। मुख्यतः देखा गया है कि भारत की जनजातियाँ, अनुसूचित लोग धार्मिक शिक्षा के अभाव में अधिक संतुष्टि और सुख-समृद्धि की तलाश में अन्य धर्म के धर्मावलम्बियों के बहकावे में आकर अपना धर्म परिवर्तित कर लेते हैं। वाद में तो उन्हें कुछ प्राप्त नहीं होता बल्कि उनका जीवन और भी दुष्कर हो जाता है परन्तु भावना को वश में न रख पाने के कारण धर्म परिवर्तन जैसी घटनाएं करते रहते हैं। इस खण्ड में हम धर्म के आयाम, धर्म परिवर्तन के प्रेरकतत्व, धर्म परिवर्तन के प्रकार, धर्मान्तरण एवं धर्म परिवर्तन के औचित्य इत्यादि का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

इकाई – 13

धर्मपरिवर्तन के आयाम

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 धर्म परिवर्तन का अर्थ

13.3 धर्म परितर्वन के प्रकार

13.4 धर्म परिवर्तन के कारण

13.5 धर्म परिवर्तन एवं आस्था

13.6 धर्म परिवर्तन एवं सामाजिक दशा

13.7 धर्म परिवर्तन आधारित आयाम

13.8 निष्कर्ष

13.9 सारांश

13.10 प्रश्नबोध

13.11 उपयोगी पुस्तकें

13.0 उद्देश्य

इस ईकाई का उद्देश्य धर्म परिवर्तन का अर्थ, परिभाषा स्वरूप एवं इसके विभिन्न आयामों की चर्चा करना है। वस्तुतः इस ईकाई में यह भी वर्णित करना है कि धर्म परिवर्तन किन दशाओं में किया जाता है तथा धर्मपरिवर्तन जिन कारणों से किया जाता है क्या वे समीचीन एवं धर्मपरिवर्तन करने वाले व्यक्तियों एवं समुदायों के लिए सर्वथा उपयुक्त होता है अथवा नहीं। इस ईकाई में धर्मपरिवर्तन के कारणों की व्याख्या की रखनी है तथा यह भी समझने का प्रयास है कि क्या धर्म परिवर्तन उपयुक्त कानून के अन्तर्गत है अथवा नहीं। धर्म परिवर्तन से व्यक्ति विशेष या मसुदाय विशेष की आस्था पर क्या प्रभाव पड़ता है तथा धर्म परिवर्तन के उपरान्त परिवर्तित धर्म विशेष व्यक्ति एवं धर्म विशेष समुदाय की सामाजिक दशा क्या होती है। इस इकाई में उक्त तथ्यों का भी गम्भीरता से विचार किया जाना है। धर्म परिवर्तन के उन विभिन्न आयामों की भी चर्चा इस इकाई में की जायेगी जो कि धर्म विशेष के व्यक्ति में अथवा समुदाय में अलगाव एवं विलगाव की भावना को जन्म देते हैं। प्राय: देखा गया है कि धर्मपरिवर्तन मुख्यत: दो दशाओं में अधिक क्रियान्वित होता है प्रथम दशा में उपेक्षा और दूसरी दशा में कट्टरता की भावना सामने आती है। इस ईकाई में हम समस्त उपागमों की चर्चा करेंगे जो कि धर्म परिवर्तन के लिए जिम्मेदार है।

13.1 प्रस्तावना

मनुष्य सामाजिक प्राणी है जो कि समाज में अपना जीवन यापन करता है। राग, द्वेष, काम, भूख, प्यास आदि भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति समाज एवं सामाजिक गतिविधियों से करता है। साथ-ही-साथ वह किसी न किसी धार्मिक सम्प्रदाय का भी हिस्सा होता है। धार्मिक सम्प्रदाय का हिस्सा होने से तात्पर्य यह है कि वह किसी न किसी धार्मिक सम्प्रदाय के विचारों से धार्मिक गतिविधियाँ पूजा, पाठ, प्रार्थना करता है और जीवन गतिमान किये रहता है। परन्तु कभी-कभी ऐसी परिस्थितियाँ भी देखने को मिलती है जहाँ मनुष्य या समुदाय को ऐसा प्रतीत होता है कि वह जिस धार्मिक सम्प्रदाय में निवास कर रहा है उसमें उसे परेशानियों का सामना अधिक झेकना पड़ रहा है। उसके मन-मस्तिष्क में दूसरे धर्मों के प्रति अनुराग उत्पन्न होता है और यह काकय आती है कि यदि हम उस धर्म को अपनाते हैं तो अधिक भौतिक संसाधनों का प्रयोग कर सकेंगें।

ऐसी मनोवैज्ञानिकता के कारण वह धर्म परिवर्तन करने की बात सोचता है। संसार में कई ऐसे धर्म है, जो कट्टर हैं अथवा अपने धार्मिक सम्प्रदाय का विस्तार करना चाहते हैं। वे जब देखते हैं कि किसी व्यक्ति या समुदाय के व्यक्तियों को काकय देकर धर्म परिवर्तन कराया जा सकता है तो वे तत्पर हो जाते हैं और उस व्यक्ति या समुदायों तक अपनी पहुँच बनाकर उन्हें काकय देकर अपने धर्म में धर्मान्तरित कराते हैं। ऐसा हो रहा है, जिससे सामाजिक एवं विधिक समस्याएं उत्पन्न होती हैं। इस इकाई में हम इन्हीं बिन्दुओं पर गम्भीरता से चर्चा करेंगे।

13.2 धर्म परिवर्तन का अर्थ

जब कोई व्यक्ति अथवा समुदाय अपने पूर्वमान्य मत बाल धर्म को छोड़कर किसी अन्य धर्म, धार्मिक मत अथवा धर्म निरपेक्ष दृष्टिकोण स्वीकार करता है तो हम उसके इस कार्य को धर्म परिवर्तन कहते हैं। सामान्य व्यक्ति के लिए धर्म परिवर्तन एक ऐसा सुपरिचित शब्द है जिसका अर्थ समझने में वह प्राय: किसी प्रकार की कठिनाई का सामना नहीं करता है परन्तु यदि हम दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से इस तथ्य पर विचार करें तो स्पष्ट होता है कि इसका अर्थ उतना सरल नहीं है जितना कि जनसाधारण अर्थ में दिखायी देता है। वस्तुत: धर्म परिवर्तन के साथ ऐसी अनेक दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और आर्थिक समास्याएं जुड़ी हुई है जो धर्म परिवर्तन के अर्थ को जटिल तथा बहुआयामी बना देती है।

इस सन्दर्भ में हम कुछ प्रश्नों को उठते हुए है जैसे - धर्म परिवर्तन का ठीक-ठीक अर्थ अथवा स्वरूप क्या है? क्या कोई व्यक्ति या समुदाय सदैव ही अपनी इच्छा से धर्म परिवर्तित करता है? क्या किसी व्यक्ति या समुदाय से जबरन धर्म परिवर्तन कराया जाता है। वे कौन-कौन से कारक है जो किसी व्यक्ति एवं समुदाय को धर्म परिवर्तन के लिए प्रेरित करते हैं? मनोवैज्ञानिक दृष्टि से धर्म परिवर्तन की प्रक्रिया क्या है? क्या कोई व्यक्ति अथवा मसुदाय धर्म-परिवर्तन के उपरान्त वास्तव में अधिक सुखी एवं सन्तुष्ट हो जाता है? क्या व्यावहारिका दृष्टि से वास्तविक अर्थ में धर्म परिवर्तन सम्भव है? क्या नैतिक दृष्टि से धर्म परिवर्तन उचित है? इत्यादि। धर्म परिवर्तन का सामान्य अर्थ है कि अपने धर्म में परिवर्तन करना अर्थात अभी तक स्वीकृत अपने धर्म का परित्याग करके किसी अन्य धर्म को स्वीकार कर लेना। दूसरे शब्दों में जब कोई व्यक्ति अपने पूर्व स्वीकृत धार्मिक मत अथवा धर्म को छोड़कर के किसी भी कारण से दूसरे धार्मिक मत या धर्म को स्वीकार कर लेता है तो इस प्रक्रिया को धर्म परिवर्तन की संज्ञा दी जाती है। जो व्यक्ति या समुदाय इस प्रक्रिया द्वारा अपने धर्म में परिवर्तन करता है उसे धर्मान्तरित व्यक्ति अथवा धर्मान्तरित समुदाय की सज्ञा दी जाती है। धर्म परिवर्तन के लिए एक से अधिक धर्मों का अस्तित्व होना आवश्यक है क्योंकि अनेक धर्मों के होने पर ही कोई व्यक्ति या समुदाय एक धर्म का परित्याग कर दूसरे धर्म को ग्रहण कर सकता हो।"

धर्म परिवर्तन की उपरोक्त परिभाषा सामान्य परिभाषा के रूप में ग्रहण की जा सकती है। कुछ विचारकों ने धर्म परिवर्तन को कन्वर्जन शब्द के समानार्थक बताते हुए धर्म परिवर्तन की दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक व्याख्या की है जो कि विशेष अर्थ में ग्रहण की जाती है। विशेष रूप से धर्म परिवर्तन का कन्वर्जन रूपी अर्थ जीवन परिवर्तन, पुनर्जीवन, नवजीवन तथा दिव्य जीवन के रूप में ग्रहण किया जाता है। उदाहरणत: जब कोई हिन्दू-ईसाई या कोई मुसलमान-ईसाई या कोई हिन्दू-बौद्ध या कोई ईसाई-हिन्दू या कोई मुसलमान-हिन्दू हो जाता है तो इन व्यक्तियों के जीवन में हुए परिवर्तन को धर्म-परिवर्तन अथवा धर्मान्तरण की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। कभी-कभी कोई धर्म परायण व्यक्ति अपने धर्म को परित्याग करके किसी अन्य धार्मिक मत या सम्प्रदाय ग्रहण करने के स्थान पर अपने

जीवन में धर्म निरपेक्ष दृष्टिकोण को स्वीकार कर लेता है - अर्थात् वह किसी भी धर्म में विश्वास नहीं करता। उसके जीवन में हुए इस परिवर्तन को भी धर्म परिवर्तन की संज्ञा दी जाती है।

13.3 धर्म परिवर्तन के प्रकार

धर्म परिवर्तन के प्रकारों में मुख्य रूप से दो रूप से सामने आते है - स्वेच्छ्या या ऐच्छिक धर्म परिवर्तन एवं बलात् या अनैच्छिक धर्मपरिवर्तन। सभी प्रमुख धर्मों के इतिहास में धर्म परिवर्तन के ये दोनों रूप उपलब्ध होते हैं। इन दोनों रूपों में मूल-भूत भिन्नता होने के कारण इनकी प्रक्रिया तथा इनके परिणाम भी भिन्न-भिन्न होते हैं। जब कोई व्यक्ति भली-भाँति सोच-समझकर अपनी इच्छा से धर्म-परिवर्तित करता है तो इस क्रिया में उसे कोई विशेष मानसिक कठिनाई नहीं होती। उसे उसके पूर्व मान्य संस्कारों को बदलने में कुछ समय लग सकता है और इसके लिए उसे कुछ प्रयास भी करना पड़ सकता है। इस प्रक्रिया की पूर्ति में उसे कुछ मानसिक कठिनाई भी हो सकती है। परन्तु इसमें सफल होने पर ऐसे व्यक्ति को अन्तत: पर्याप्त मानसिक सन्तोष भी प्राप्त हो सकता है जिसके फलस्वरूप वही अपने आपको अधिक सुखी अनुभव कर सकता है। इस दृष्टि से स्वेच्छया धर्म परिवर्तन को कुछ सीमा तक वांछनीय माना जा सकता है। इस सन्दर्भ में कानूनी मान्यता भी प्राप्त है कि - व्यक्तियों को धर्म परिवर्तन की स्वतन्त्रता है, लेकिन यह स्वैच्दिक है यह साबित करने के लिए पर्याप्त सबूतों की आवश्यकता है। न्यायालय ने यह भी कहा है कि धर्म परिवर्तन कानूनी होना चाहिए ताकि नया धर्म देश भर में सभी सरकारी पहचान पत्रों में दिखायी दे।

धर्म परिवर्तन का दूसरा प्रकार जो व्यक्ति की अपनी इच्छा के विरुद्ध बलपूर्वक कराया जाता है उसे अनैच्छिक धर्म परिवर्तन की संज्ञा दी जाती है। ऐसे धर्म-परिवर्तन के लिए व्यक्ति न तो मानसिक दृष्टि से उद्यत होता है और न इच्छुक। जिसके कारण उसे प्राय: घोर मानसिक कष्ट झेकना पड़ता है। वस्तुत: व्यक्ति इस प्रकार के धर्मपरिवर्तन को स्वेच्छया अपने जीवन में कभी स्वीकार नहीं करता क्योंकि वह उस घर बाहर से बलपूर्वक थोपा जाता है। इस परिवर्तन की प्रक्रिया भी धर्मान्तरित व्यक्ति के लिए बहुत दुखद होती है। इसके पिरणाम प्राय: अहितकर होते हैं ऐसे धर्म परिवर्तन हत्या तक की धमकी देकर कराये जाते है। कभी-कभी व्यक्ति की लालच या प्रलोभन देकर भी ऐसा धर्म परिवर्तन बताया जाता है। इस्लाम तथा ईसाई धर्म के इतिहास में ऐसे बलपूर्वक धर्म परिवर्तन के बहुत से उदाहरण प्राप्त होते है। सम्भवत: यह कहना अनुचित नहीं होगा कि विश्व में इन दोनों धर्मों का विस्तार इस प्रकार के धर्म-परिवर्तनों द्वारा ही हुआ है। परन्तु यह स्पष्ट है कि लालच देकर या बलपूर्वक कराये गये धर्म परिवर्तनों के परिणामस्वरूप मनुष्य को कभी भी वासतविक सुख, सन्तोष एवं शान्ति की प्रापित नहीं हो सकती। यही कारण है कि ऐसे धर्म परिवर्तन को नैतिक दृष्टि से अनुचित एवं अवांछनीय ही कहा जा सकता है।

13.4 धर्म-परिवर्तन के कारण

किसी भी धर्म परायण व्यक्ति के लिए धर्म-परिवर्तन उसके जीवन की एक क्रान्तिकारी घटना होती है। कह सकते हैं कि कोई व्यक्ति धर्म परिवर्तन के लिए तभी उद्यत होता है जब उसके समझ इकसे अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प

उपस्थित न हो। जो व्यक्ति अपने ही धर्म में पूर्णत: सन्तुष्ट है वह कभी भी अपने धर्म का त्याग करने के लिए नहीं सोच सकता बशर्ते उससे बजात् धर्म परिवर्तन न कराया जाय। इसका अर्थ है कि सामान्य परिस्थितियों में व्यक्ति धर्मान्तरण या धर्म परिवर्तन को न तो उचित मानता है और न ही इसके लिए तैयार होता है।

स्पष्ट है कि कुछ ऐसी विशेष परिस्थितियाँ अवश्य होती होगी जिसके कारण व्यक्ति या समुदाय धर्म परिवर्तन के लिए तैयार होता है। हम धर्म परिवर्तन के कारणों को मुख्यत: चार भागों में विभाजित कर सकते है- मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक, सामाजिक तथा आर्थिक। मनोवैज्ञानिक कारण के फलस्वरूप हम देखते हैं कि कभी-कभी मनुष्य अपने धर्म से असन्तुष्ट हो जाता है। वह मानसिक अशान्ति का अनुभव करने लगता है। वह अपने धर्म की तुलना अन्य धर्मों से करने लगता है जितना कि वह अन्य धर्म को जानता है और उस अन्य धर्म को अपने जीवन के लिए अधिक श्रेयस्कर समझने लगता है। त बवह बिना किसी वाहय कारण के अपनी इच्छा से धर्म परिवर्तन कर लेता है। इस प्रकार का धर्म परिवर्तन व्यक्ति की अन्तप्रेरणा से होता है न किसी वाहय प्रेरणा से। इस प्रकार के धर्म परिवर्तन का मूलक कारण मनोवैज्ञानिक ही होता है। ऐसे घर्म परिवर्तन में व्यक्ति को अपने पूर्वमान्य धर्म से अधिक सन्तुष्टि या सुख इस नये धर्म मेंमहसूस होता है। परन्तु मुझे लगता है कि मनोवैज्ञानिक कारणों से धर्मपरिवर्तन बहुत कम होता है। वाहय कारण प्राय: सांस्कृतिक, सामाजिक एवं अधिक होते है।

उल्लेखनीय है कि जो व्यक्ति अपनी संस्कृति तथा अपने धर्म के मूल सिद्धान्तों या विश्वासों से अनभिज्ञ है वह धर्म परिवर्तन के लिए अपेक्षाकृत अधिक सरलता से उद्यत हो जाता है। ऐसा व्यक्ति किसी किसी अन्य धर्म के प्रचारक द्वारा थोड़ा सा भी प्रोत्साहित और प्रेरित किये जाने पर सफलतापूर्वक धर्म परिवर्तन के लिए तैयार हो जाता है। उदाहरण: हिन्दू धर्म के अनुयायियों के समक्ष कुछ धर्म प्रचारक ने हिन्दू धर्म से सम्बन्धित देवी-देवताओं तथा महापुरुषों की निन्दा एवं उनका उपहास करके बहुत से हिन्दुओं को उनका धर्म छोड़कर अन्य धर्मों में धर्मान्तरण कराया है। इस प्रकार अपने धर्म के मूलक सिद्धानतों, विश्वासों तथा उनकी दार्शनिक मान्यताओं के विषय में समुचित ज्ञान का अभाव धर्म परिवर्तन का एक प्रमुख कारण है। उक्त दोनों कारणों की अपेक्षा सामाजिक एवं आर्थिक कारणों में धर्म परिवर्तन में अधिक योगदान किया है। व्यक्ति या समुदाय को सामाजिक एवं आर्थिक लालच देकर धर्म परिवर्तन कराने की अनेक स्थितियाँ सामने आयी है। चूंकि आधुनिक युग का मनुष्य जीवन की समष्ट सुख-सुविधाओं का उपभोग करना चाहता है इसके किए त्याग की भावना का प्रदर्शन न कर लालच का शिकार होकर धर्म प्रचारकों के ज्ञान में आकर धर्मपरिवर्तन कर लेता है। हम देख सकते हैं कि प्रमुख रूप से धर्म परिवर्तन के कारणों में सामाजिक एवं आर्थिक कारण ही अधिक कारगर सिद्ध हुए है।

13.5 धर्म परिवर्तन एवं आस्था

धर्म मूलत: आस्था का विषय है और हम अक्सर यह मानते हैं यह तर्क या तर्क संगत निगरानी से स्वतन्त्र है। धार्मिक मुद्दों की अधिकांश चर्चा में यह पाते है कि धर्म उस भावना से जुड़ा होता है जो उकसे मौलिक स्वरूप को स्पष्ट करता रहता है। गाँधी जी का इस सन्दर्भ में मानना था कि हमें अपने धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों के रीति रिवाजों

एक अच्छाई-बुराई के साथ-साथ उसके औचित्य को भी जानना चाहिए जिससे हम मूल्यांकन कर सकें कि कौन सा धर्म मानवता के लिए अधिक उपयोगी है। प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय के लोगों की प्रारम्भ में उनके मूल धर्म के प्रति आस्था तो होनी ही चाहिए जब यह आस्था का भाव डग मगाता है तो धर्म परिवर्तन जैसे विचार सामने आते हैं।

जब किसी व्यक्ति या समुदाय में अपने धर्म के आस्था का भाव होता है तो वह कहता है - मैं उसकी पूजा नहीं करता जिसकी पूजा तुम करते हो और न ही तुम उसकी पूजा करोगे जिसकी पूजा में करता हूँ और में उसकी पूजार नहीं करूगा जिसकी पूजा करने के लिए तुम कहोगे और न ही तुम उसकी पूजाकरोगे जिसकी पूजा के लिए में तुमसे कहूँगा। तुम अपना रास्ता अपनाओं मैं अपना। यह आस्था का भाव प्रदर्शित करता है जिसमें किसी व्यक्ति या मसुदाय द्वारा उकसे मूल धर्म के प्रति विश्वास का द्योतक है। वास्तव में यदि इस तरह की आस्था अपने धर्म के प्रति रहती है तो धर्म परिवर्तन का कोई प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। सच तो यह है कि धर्म में कोई जबदस्ती नहीं होनी चाहिए। सही रास्ता तो वास्तव में गलती से बिल्कुल अलग है। धर्म की स्वतन्त्रता व्यक्ति की अपनी चिनता है इसलिए धर्म चुनने में दूसरों को मजबूर करने की कोई आवश्यकता नहीं है। धर्म से विमुख वही करेग ही सकते है जिनके धर्म के प्रति आस्था का अभाव है।

13.6 धर्म परिवर्तन एवं सामाजिक दशा

धर्मपरिवर्तन वह किया है जो व्यक्ति या समुदाय की समाजिक दशा पर नकारात्मक प्रभाव डालती है। कोई भी समाजशास्त्री धर्म परिवर्तन के सामाजिक कारणों तथा धर्म परिवर्तन से उत्पन्न सामाजिक परिस्थितियों पर विचार करता है जिनके अन्तर्गत धर्म परिवर्तन किया अथवा कराया जाता है। वह धर्म परिवर्तन करने तथा कराने वाले व्यक्तियों के पारस्परिक सामाजिक सम्बन्धों पर विचार करता है। इसके अतिरिक्त समाजशास्त्री उन परिस्थितियों तथा उस धर्म के अनुयायियों के स्वभाव की मूल विशेषताओं का भी विवेचन करता है जिसे स्वीकार करने के लिए अन्य धर्मानुयायियों को अभिप्रेरित किया जाता है। वस्तुत: धर्म परिवर्तन सामाजिक दृष्टि से अनुचित एवं हानिरिक है। इसका कारण है कि धर्म परिवर्तन - विशेषत: बलपूर्वक कराये गये धर्म परिवर्तन - के फलस्वरूप समाज में व्यापक संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। जिस धर्म के अनुयायियों का धर्म परिवर्तित कराया जाता है उससे अन्य अनुयायियों की भावनाओं को इससे आद्यात पहुँचता है।

वे आपस में धर्म विरोधी हो जाते है और सामाजिक संघर्ष प्रारम्भ होता है। जिस व्यक्ति का धर्म परिवर्तन बलात् कराया जाता है वह बदले धर्म के रीति-रिवाजों का भली-भाँति पालन करने में अपनी इच्छा से असहमत होता है। इसी कारण सक्षम भी नहीं होता और जब वह अपनी इच्छा या सक्षमता से परिवर्तित धर्म के रीति-रिवाजों का पालन नहीं करता तो धर्म के उकेमाओं या प्रमुखों द्वारा उसे दण्डित किया जाता है। वह व्यक्ति अब वापस अपने मूल धर्म में लौटना भी चाहता है तो उसे बलात् लौटने नहीं दिया जाता और यदि उसे लौटाने में कोई आपत्ति न हो तो उसे उसके पूर्व धर्म के लोग स्वीकार करने से कराते है। उसकी सामाजिक दशा इस प्रकार हो जाती है कि वह न तो अपने मूल धर्म वर्ण पालन सामाजिक परिस्थितियों में कर पाता है और न ही परिवर्तित धर्म का अन्तत: हम कह

सकते हैं कि व्यक्ति की सामाजिक दशा शून्य हो जाती है और पछताने के अलावा उसके पास कोई विकल्प नहीं बचता। ऐसी दृष्टि में कहा जा सकता है सामाजिक दृष्टि से धर्म परिवर्तन अनुचित एवं अवांछनीय है।

13.7 धर्मपरिवर्तन आधारित आयाम

प्रत्येक व्यक्ति या समुदाय का कोई न कोई धर्म अवश्य होता है और साथ ही साथ वह उन आयामों पर आधारित होता है जिससे व्यक्ति या समुदाय उस धर्म विशेष के प्रति श्रद्धा रखता है। मुख्यत: अनुभवात्मक आयाम धर्म की गहन वैयक्तिक क्रिया को उजागरण करता है वही संस्थागत आयाम मानवीय अन्त:क्रिया मूल्य, व्यक्तिगत व्यवहार और संवर्धन को केन्द्रित करता है। आयामों में यदि धार्मिक दृष्टिकोण एवं सम्बद्धता को खोजा जाय तो प्राप्त होता है कि सभी धर्म अन्तत: मानवीय अनुभव से अनुप्राणित होते है। धार्मिक पृष्ठभूमि, संस्कृति जिसमें व्यक्ति खुद को महसूस भरते हैं ऐसे प्रतिष्ठान है जो व्यक्ति को धर्म परिवर्तन से रोकते हैं। मनोवैज्ञानिक आयाम, अनुष्ठान आयाम, पौराणिक आयाम, सैद्धान्तिक आयाम, नैतिक आयाम, सामग्री आयाम ऐसे आधार है जो कि व्यक्ति को धर्मनिष्ठ बनाने में सहायक होते हैं। जब ऐसी कोई परिस्थिति जीवन में आती है कि कोई व्यक्ति या समुदाय एकाग्र रूप से इन आयामों को पालन करने में अपने को सक्षम नहीं पाता तो वह मतिभ्रम का शिकार होता है और धर्म परिवर्तन के लिए सोचता है। वास्तव में धर्म के जितने भी आयाम होते है वे कभी भी निषेधात्मक निष्कर्ष नहीं प्रदान करते है।

13.8 निष्कर्ष

उपरोक्त वर्णन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि किसी व्यक्ति या समुदाय को धर्म परिवर्तन का अधिकार तो है परन्तु वह तब तक मान्य नहीं है जब कि वह अपनी स्वेच्छा से किया गया हो और विधिक हो। वास्तव में प्रत्येक धर्म में बहुत की अच्छाइयों के साथ-साथ कुछ कमियों अवश्य हैं। यदि कोई व्यक्ति या समुदाय अपने मूलधर्म की केवल कमियों के आधार पर धर्म परिवर्तन का निर्णय बता है तो मेरी दृष्टि में उसका यह निर्णय एकांगी होता है। ऐसा निर्णय व्यक्ति को नैतिक एवं सामाजिक दृष्टिकोण से वह स्थान नहीं देता जो उसे उसके मूल धर्म में भिक रहा था। सम्पूर्ण विवेचन के आधार पर हम कह सकते है कि मानव समाज के लिए धर्म परिवर्तन मनोवैज्ञानिक, सामाजिक तथा नैतिक दृष्टि से अनुचित एवं अवांछनीय है अतः किसी भी रूप में इसे प्रोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए।

13.9 सारांश

इस इकाई का सारांश यह है कि प्रत्येक मनुष्य समाज में किसी न किसी धर्म की आस्था के साथ ही अपना जीवन व्यतीत करता है। समाज में उसे धार्मिक मान्यताओं के आधार पर पूजा-पाठ-प्रार्थना करने का अधिकार है। परन्तु जब कोई मनुष्य या समुदाय अपने मूल धर्म से असंतुष्ट होकर अन्य धर्म में जाना चाहता है तो वह विधिपूर्वक जा सकता है। धर्म परिवर्तन के अनेक कारणों की भी व्याख्या भी इस इकाई में की गयी है जिससे प्रभावित होकर व्यक्ति या समुदाय धर्मपरिवर्तन करते हैं। यह भी उल्लिखित किया गया है कि धर्म परिवर्तित व्यक्ति की सामाजिक, सांस्कृतिक,

नैतिक एक मनोवैज्ञानिक दशा क्या होती है। अत: में इस इकाई में यह भी दिखाया गया है कि उपरोक्त धर्म परिवर्तन के अर्थ, प्रकार, कारणों एवं इसके आस्था एवं आयामों के अध्ययन के परिश्रम स्वरूप विदित है कि धर्म परिवर्तन किसी भी दशा में पूर्ण रूपेण सन्तोषजनक नहीं है।

13.10 प्रश्न बोध -

(1) धर्मपरिवर्तन का अर्थ एवं स्वरूप की व्याख्या कीजिए।

(2) धर्म परिवर्तन के कारणों की सविस्तार चर्चा कीजिए।

(3) धर्मपरिवर्तन के आयामों की चर्चा करते हुए उसका औचित्य निर्धारित कीजिए।

(4) धर्म परिवर्तन एवं आस्था में क्या सम्बन्ध है? व्याख्या कीजिए।

13.11 उपयोगी पुस्तकें -

(1) धर्म दर्शन की मूल समस्याएं - वेद प्रकाश वर्मा

(2) धर्म दर्शन परिचय - डॉ. हृदय नारायण मिश्र

(3) धर्म दर्शन – डॉ.वी. एम. सिंह

इकाई – 14

धर्म परिवर्तन के प्रकार

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 धर्म परिवर्तन एवम् ईश्वरीय प्रकाशना

14.3 ऐच्छिक धर्म परिवर्तन

14.4 अनैच्छिक धर्म परिवर्तन

14.5 धर्मपरिवर्तन एवम् कानून

14.6 धर्म परिवर्तन और शिक्षा

14.7 निष्कर्ष

14.8 सारांश

14.9 प्रश्नबोध

14.10 उपयोगी पुस्तकें –

14.0 उद्देश्य

मनुष्य सामाजिक एवं धार्मिक जीवन पद्धति का आधार होता है। संसार में फैले अनेक धार्मिक सम्प्रदायों में होड़ सी लगी है कि किसका धर्म सर्वोपयुक्त है? वास्तव में धर्म का मूल अर्थ ही धारण करना होता है। मौलिक विशेषता को धारण करना ही धर्म कहा जाता है। परन्तु धर्म एक ऐसी संजीवनी है जो मनुष्यों के प्राणों में ऊर्जा भरती है। हम कह सकते हैं अनेक संघर्षों का कारण धर्म ही होता है। इस इकाई का उद्देश्य यह है कि हम धर्म परिवर्तन के उन प्रकारों का अध्ययन करें जो हमें दिखायी देते हैं। क्या धर्म परिवर्तन ईश्वर की इच्छा से होता है या ईश्वर की अलग व्याख्या करने के लिए होता है। हम इस इकाई में यह अध्ययन करेंगे कि क्या धर्म परिवर्तन स्थायी होता है? धर्म परिवर्तन के ऐच्छिक एवं अनैच्छिक प्रकारों का भी अध्ययन भी हम ईकाई में करेंगे। इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य यह भी है कि हम जानें कि धर्म परिवर्तन के जो भी प्रकार है उनकी कानूनी वैधता क्या है? यदि वे स्थायी है तो किस प्रकार धर्म परिवर्तन करना चाहिए। धर्म परिवर्तन का वह प्रकार जो अपनी इच्छा से किया जाता है उसके पीछे के क्या कारण होते हैं? हम यह भी अध्ययन करेंगे कि एक धर्म से जबरन, किसी के प्रभाव में या बहकाकर धर्म परिवर्तन कराना गैर कानूनी है लेकिन लोग अपनी मर्जी से विधिक तरीकों से धर्म परिवर्तन कर सकते है।

14.1 प्रस्तावना

धर्म परिवर्तन के विषय में हम अक्सर सुनते रहते हैं कि उमुक व्यक्ति ने अपना धर्म परिवर्तित कर किया है या अमुक समुदाय ने अपने मूल धर्म को छोड़कर अन्य धर्म की मान्यताओं को स्वीकार कर लिया है। प्रश्न यह है कि वे कौन सी विधियाँ या प्रकार हैं जो किसी धर्म परिवर्तन को सही बताती है और कौन सी है जिन्हें धर्म परिवर्तन के लिए प्रयोग करना सामाजिक, नैतिक एवं कानूनी दृष्टि से उचित नहीं है। प्रस्तुत इकाई में हम इन्हीं तथ्यों का विस्तृत अध्ययन करेंगे। यहाँ यह चर्चा करना भी श्रेयस्कर है कि कुछ ऐसे देश हैं जहाँ धर्म परिवर्तन अवैध प्रक्रिया है परन्तु भारत में कोई भी व्यक्ति या समुदाय विधिक रूप से धर्म परिवर्तन कर सकता है। वस्तुत: धर्म परिवर्तन लोगों के धार्मिक या राजनैतिक विश्वासों को परिवर्तित करने के प्रयास की नीति है। इस इकाई में यह भी अध्ययन करेंगे कि कोई व्यक्ति या समुदाय किसी एक धर्म को छोड़कर किसी अन्य अपरिचित धर्म को क्यों ग्रहण करता है। यदि धर्म परिवर्तन अपनी इच्छा द्वारा होता है तो मनुष्य या व्यक्ति को समाज तथा राज्य द्वारा धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान किया जाना आवश्यक है। इस स्वतन्त्रता के अभाव में कोई भी व्यक्ति या समुदाय अपनी इच्छा से धर्म परिवर्तन नहीं कर सकता हां इसके लिए उसे बाहय अवश्य किया जा सकता है। वस्तुत: इस इकाई में धर्मपरिवर्तन के कानूनी उपागमों की भी चर्चा की जाती है तथा यह भी वर्णित किया जाना है कि किस प्रकार धर्म परिवर्तन वैध या अवैध है।

14.2 धर्म परिवर्तन एवं ईश्वरीय प्रकाशना

धर्म मानव का स्वभाव गुण है और प्रत्येक मानव में किसी न किसी धर्म को अपनाकर अपनी पूर्णता प्राप्त करने की जन्मजात प्रेरणा पायी जाती है। जब भी किसी व्यक्ति को प्रतीत होता है कि उसे वह आदर्श रूप प्राप्त हो गया है

जो उसे प्राप्त होना चाहिए था तब इस अवस्था को जीवन परिवर्तन कहा जाता है। इस अवस्था में व्यक्ति के अन्दर वह ईश्वरीय शक्ति होनी चाहिए जो उसे उसके चेतन एवं अचेतन रीति से बोधि प्राप्त करा सके अर्थात् ईश्वर दर्शन करा सके। इस प्रकार का जीवन परिवर्तन महात्मा बुद्ध के धर्म परिवर्तन में देखा जा सकता है जहाँ यह दिखायी देता है कि बुद्ध द्वारा बोधिप्राप्ति, वाल्मिकी एवं तुलसीदास द्वारा रामदर्शन में, विवेकानन्द द्वारा मां के दर्शन में होता है।

इस प्रकार के जीवन परिवर्तन या धर्म परिवर्तन में यह माना जाता है कि ऐसा करना ईश्वर का आदेश है। यहाँ ऐसा प्रतीत होता है कि ईश्वर अपनी शक्ति और अनुग्रह के फलस्वरूप उस व्यक्ति विशेष में इस प्रकार का कार्य करने की प्रेरणा देता है। धर्म परिवर्तन का यह प्रकार ईश्वरीय प्रकाशना का अंश समझा जाता है और इस प्रकार का धर्म परिवर्तन स्थायी होता है जिसे व्यक्ति ईश्वर का आदेश मानकर तमाम कष्टों का भी सहन करता रहता है फिर भी धर्म परिवर्तन की इच्छा रखता है। यहाँ एक तथ्य यह भी उल्लिखित है कि जब व्यक्ति या समुदाय मनोवैज्ञानिक रूप से अपने मूल धर्म से च्युत होता है तो यह समझा जाता है कि उसके मन में यह विचार ईश्वर ने ईश्वर ने सृजित किये हैं। ऐसी दशा में उस व्यक्ति के अन्दर यह दृढ़ विश्वास हो जाता है कि ईश्वर अपने मूल धर्म को त्यागकर किसी अन्य धर्म को ग्रहण करने का आदेश दे रहा है उसी में उसकी प्रगति की निपति होगी और उसे वह ईश्वरीय इच्छा या आदेश मानकर धर्म-परिवर्तन के लिए तत्पर हो जाता है।

14.3 ऐच्छिक धर्म परिवर्तन

ऐच्छिक धर्म परिवर्तन वह होता है जिसमें व्यक्ति या समुदाय स्वेचछा से अपने मूल धर्म को त्यागकर दूसरा धर्म ग्रहण करने की बात या मांग करता है। इस प्रकार के धर्म परिवर्तन में का कोई बाहय कारण नहीं होता। यह पूर्णतया आन्तरिक गतिविधियों के उठने के उपरान्त क्रियान्वयन पर जोर देता है। ऐसे धर्म परिवर्तन में व्यक्ति या मसुदाय यह महसूस करता है कि वह अभी जिस धर्म की क्रियाविधियों के अनुसार कार्य कर रहा है वह उसके लिए सर्वथा उपयुक्त नहीं है। ऐसा व्यक्ति या समुदाय यह सोचने या महसूस करने लगता है कि उसके द्वारा अभी तक धारित धर्म में शष्टि का अभाव है। जबकि अन्य धर्मों के अनुयायियों को वह अपने से ज्यादा सुखी और सन्तुष्ट महसूस करता है उसे यह लगने लगता है कि वह भी नये धर्म में अधिक आध्यात्मिक शान्ति प्राप्त कर सकता है। परन्तु इस प्रकार धर्म-परिवर्तन अपेक्षाकृत कम देखे जाते हैं।

प्राय: ऐच्छिक धर्म परिवर्तन की वाहय कारणों से प्रेरित होकर किया जाता है। ये कारण सामाजिक भी ही सकते हैं और आर्थिक भी। उदाहरणतः अपने धार्मिक समाज में यदि कोई व्यक्ति या समूह अपने आप को निरनतर तिरस्कृत एवं शोषित अनुभव करता है तो वह उस तिरस्कार तथा शोषण से मुक्ति प्राप्त करने के लिए ऐसा नया धर्म स्वीकार कर सकता है जो इस प्रकार के तिरस्कार एवं शोषण से उसे मुक्ति का आश्वासन देता हो। अछूत या हरिजन कहे जाने वाले बहुत से हिन्दुओं ने इसाई धर्म, बौद्ध धर्म अथवा इस्लाम धर्म स्वीकार किया है। यह स्वीकार करने में उसे पूर्व की अपेक्षा अधिक सामाजिक गौरव प्राप्त होता है, ऐसा उसे लगता है। इसी प्रकार आर्थिक समृद्धि प्राप्त करने के लिए भी कोई निर्धन व्यक्ति अथवा समुदाय धर्म परिवर्तन कर सकता है।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि इसाई धर्म प्रचारकों ने धन और भौतिक समृद्धि का प्रवोमन देकर अन्य धर्मों के लाखों निर्धन व्यक्तियों को इसाई बनाया है। इस प्रकार के उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि इस प्रकार का धर्मपरिवर्तन ऐच्छिक होते हुए भी वास्तव में बाह्य कारणों से अधिक प्रेरित होते हैं। इस प्रकार के धर्म परिवर्तन के लिए बल प्रयोग तो नहीं किया जाता परन्तु प्रेरक विधियों के माध्यम से व्यक्ति के मनोभावों को प्रचारकों द्वारा अपने धर्म के प्रति आकृष्ट किया जाता है। विश्व में इसाई धर्म का प्रचार एवं विस्तार ऐसे ही प्रेरक उपायों क्षण हुआ है।

14.4 अनैच्छिक धर्म परिवर्तन

अनैच्छिक धर्म परिवर्तन वह धर्म परिवर्तन है जिसमें व्यक्ति को या समुदाय को बाहय करके धर्म परिवर्तन कराया जाता है। यह धर्म परिवर्तन व्यक्ति की अपनी इच्छा के विरुद्ध बलपूर्वक कराया जाता है। ऐसे धर्म परिवर्तन की स्थिति स्वेच्छा किये गये धर्म परिवर्तन के ठीक विपरीत होती है। इस प्रकार के धर्म परिवर्तन के लिए व्यक्ति मानसिक दृष्टि से न तो उद्यत होता है और न ही इच्छुक। अत: इसके कारण उसे प्राय: घोर मानसिक कष्अ भोगना पड़ता है। वस्तुत: इस प्रकार के धर्म परिवर्तन का व्यक्ति अपने जीवन में कमी भी स्वेच्छा से स्वीकार नहीं करता क्योंकि वह उस पर बाहर से बलपूर्वक थोपा जाता है।

इस प्रकार धर्म परिवर्तन की प्रक्रिया धर्मान्तरित व्यक्ति के लिए बहुत दु:खद होती है इसके लिए उस प्राय: भयंकर दुरचारीणम भोगने की धमकी दी जाती है जो कि अत्यन्त मानसिक अशक्ति का कारण होती है। कभी–कभी व्यक्ति या मसुदाय को प्रणोमन या लालच देकर भी ऐसा धर्म परिवर्तन कराया जाता है। इसका तथा ईसाई धर्म के इतिहास में ऐसे धर्म परिवर्तन के अनेक उदाहरण मिलते हैं। सम्भवत: यह कहना अनुचित न होगा कि विश्व में दोनों धर्मों का विस्तार इस प्रकार के वकात् धर्म परिवर्तन द्वारा हुआ है। इस प्रकार के धर्म परिवर्तन में एक बात तो स्पष्ट है कि लालच देकर अथवा बलपूर्वक कराये गये ऐसे धर्म परिवर्तन के परिणामस्वरूप व्यक्ति या मसुदाय को कमी भी वास्तविक सुख, सन्तोष तथा शान्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती। नैतिक दृष्अिकोण से भी ऐसे धर्म परिवर्तन अनुचित एवं अवांछनीय होते हैं।

उक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि धर्म परिवर्तन सदैव ऐच्छिक नहीं रहा है वरन् कह सकते हैं कि अनैच्छिक अधिक रहा है। इस तथ्य की सिद्धि हेतु कहा जा सकता है कि इतिहास का यह दु:खद पक्ष है कि कुछ धर्मों विशेषत: इस्लाम धर्म के प्रचारकों ने धर्म परिवर्तन के लिए बलप्रयोग का भी सहारा लिया है। उन लोगों ने अन्य धर्मों के अनुयायियों को हत्या सहित सभी प्रकार की धमकियों द्वारा धर्म परिवर्तन करने के लिए बाहय किया है। स्पष्ट है कि ऐसे अनैच्छिक धर्म परिवर्तन के लिए प्रेरक विधियों के स्थान पर अनैतिक तथा निंदनीय उपायों का प्रयोग किया जाता रहा है जिनमें सभी प्रकार का बलप्रयोग सम्मिलित है। ऐसी स्थिति में बलपूर्वक यह कहा जा सकता है कि बलात् कराया गया नैतिक दृष्टि से नितान्त अनुचित एवं निन्दनीय है और कोई भी विचारशील मनुष्य तर्कसंगत सबसे इसका समर्थन नहीं कर सकता है।

14.5 धर्म परिवर्तन एवं कानून

जब धर्म परिवर्तन ऐच्छिक होता है तो उसमें यह अपेक्षा की जाती है कि धर्मपरिवर्तन की विधियाँ कानूनी रूप से उपयुक्त है। भारत में धार्मिक स्वतन्त्रता के मुताबिक किसी भी धर्म को दूसरे धर्म से कम या ज्यादा महत्व नहीं दिया जा सकता है क्योंकि भारत धर्म निरपेक्ष राष्ट्र है। धार्मिक मामलों का प्रबन्धन करने, किसी भी धर्म के लिए आर्थिक योगदान देने और शैक्षिक संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन की आजादी भारतीय संविधान में वर्णित है। भारतीय दण्ड संहिता (आई.पी.सी.) की धारा 295A और 298 के तहत जबरन धर्म परिवर्तन को संज्ञेय अपराध माना गया है। यह अपराध दूसरे धर्मों के अनुयायियों की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाने के इरादे से किया जाता है तो भारतीय दण्ड संहिता में इसके लिए तीन साल तक की जेल और आर्थिक जुर्माना का प्रावधान है। अगर यह अपराध नाबालिग, बालक, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जन-जाति या महिला के खिलाफ किया जाता है तो सजा ज्यादा भी हो सकती है। धारा 295 ए के तहत किसी भी भाषण, लेखन या संकेत का दण्डित किया जा सकता है जो किसी वर्ग के धर्म या धार्मिक विश्वासों का अपमान करता है। उत्तर प्रदेश सरकार ने उत्तर प्रदेश विधि विरुद्ध धर्म संपरिवर्तन प्रतिषेध (संशोधन) अधिनियम - 2024 के तहत तथ्यों को छिपाकर या डरा-घमका कर धर्म परिवर्तन कराने को अपराध स्वीकार किया गया है।

भारतीय दण्ड संहिता की धारा 153ए; 295ए, और 505(2) के तहत यदि कोई व्यक्ति इन धाराओं का दुरूपयोग नहीं करता तो किसी व्यक्ति को उसकी स्वेच्छा दूसरे धर्म को स्वीकार करने की रक्षा करती है। कानूनी तौर पर यदि कोई व्यक्ति अपने मूल धर्म में संतुष्ट नहीं है और अपने मूल धर्म से किसी अन्य धर्म के रीति रिवाजों को अपनाना चाहता है तो उसे ऐसा करने का पूरा विधिक अधिकार है। किसी भी धर्म परिवर्तन करने वाले व्यक्ति को शपथ पत्र देना होता है जिसमें बदला हुआ नाम, बदला हुआ धर्म और पता लिखना होता है। कानून यह भी मान्यता देता है कि कोई भी व्यक्ति जितनी बार चाहे, धर्म परिवर्तन कर सकता है। सभी धर्मों का त्याग भी कर सकता है। खुद का भी धर्म बना सकता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय संविधान में ऐच्छिक धर्म परिवर्तन के लिए उपाय और अनैच्छिक या बलात धर्म परिवर्तन के लिए सजा का प्रावधान है।

14.6 धर्म परिवर्तन और शिक्षा

धर्मपरिवर्तन के लाभ-हानि हेतु यह महती आवश्यकता है कि धर्म-परिवर्तन करने वाले व्यक्ति को उपयुक्त शिक्षा दी जाय। धर्म परिवर्तन और शिक्षा से यहाँ अभिप्राय यह हैं कि व्यक्तियाँ को बहका-फुसकाकर धर्म परिवर्तन नहीं कराना चाहिए। प्रत्येक धर्म में ऐसी शिक्षा होती है जिससे व्यक्ति सन्तुष्ट रह सकता है। अगर कोई व्यक्ति डर से, लालच से भूख से अपना धर्म परिवर्तित करना चाहता है तो उसे इस बात की शिक्षा दी जानी चाहिए कि हो सकता है कि जिस धर्म में वह जाना चाहता है वहाँ इससे भी ख्याब स्थिति उसकी हो जाय। पुनः शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है जिससे उसे यह समझ में आये कि वह क्या करने जा रहा है और उसके द्वारा किये गये कार्य का क्या परिलाभ होगा। इस सन्दर्भ में महात्मा गाँधी ने कहा था - मैं स्वयं तो यही पसन्द करूँगा कि धर्म परिवर्तन एवं शुद्धि की

शिक्षा न दी जाय। किसी भी व्यक्ति के धर्म में शुद्धि की ताकत होती है तथा धर्म का सम्बन्ध स्वयं उसी के साथ होता है। स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा दी थी कि - समस्त संसार किसी भी समय एक धर्म विलम्बी नहीं हो सकता इसका मुख्य कारण मनोभावों में अनेकता या विवधिता है और यह अच्छा भी है क्योंकि अगर ऐसा हो जाय तो संसार विनष्ट होकर विश्रृंखकता को उत्पन्न करेगा। अत: मनुष्य को अपनी ही प्रकृति का अनुसारण करना चाहिए। सभी धर्मों में अच्छे लोग हैं इसलिए सभी धर्म लोगों की श्रद्धा को अपनी और आकर्षित करते हैं अत: किसी भी धर्म से घृणा करना उचित नहीं और दूसरे धर्म के प्रति अनुराग भी उचित नहीं। हमें यह एकान्त में प्रार्थना नहीं करनी चाहिए कि किसी का धर्म परिवर्तन हो बल्कि हमारी आन्तरिक प्रार्थना यह होनी चाहिए कि जो हिन्दू है और अच्छा और सच्चा हिन्दू बने, जो इकाई है वह और सच्चा इकाई बने। जो जिस धर्म में है उसी धर्म का और भी अच्छा और सच्चा अनुयायी बने।

14.7 निष्कर्ष

उक्त इकाई के अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि धर्म परिवर्तन यदि व्यक्ति या समुदाय की अपनी इच्छा से हीटर है तो वह किसी हद तक उचित माना जा सकता है परन्तु यदि धर्म परिवर्तन डरा धमकाकर या बलात् किया जाता है या आर्थिक लालच देकर किया जाता है तो वह बिलकुल भी उचित नहीं है। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि विश्व में प्रचलित सभी धर्मों में विशिष्टता है। किसी- धार्मिक व्यक्ति को किसी दूसरे धर्म में धर्मान्तरित होने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु यह एक प्रकार की धार्मिक कट्टरता है जो कि अपने धर्म को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए दूसरे धर्मों के लोगों को बहला-फुसलाकर, उनके धर्मों की अनेक बुराइयाँ बताकर या फिर न मानने पर बल प्रयोग या धमकी देकर या आर्थिक लालच देकर धर्म परिवर्तित करने के लिए बाध्य किया जाता है। साधारणतया प्रत्येक धर्म के लिए यह आवश्यक है कि वह अन्य धर्मों को भी महत्व दें। किसी को धर्म परिवर्तन के लिए प्रेरित या अन्य किसी प्रकार का लालच न दें। निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि समस्त संसार में सबके अनुकूल एक धर्म तो नहीं हो सकता - इतिहास इस बात का प्रमाण भी है कि धर्म के नाम पर अनेक लड़ाइयाँ लड़ी गयी हैं। परन्तु यदि सभी धर्मों के कोण जीवन के प्रति अपने-अपने कार्य को समान अच्छाई के साथ करते रहें तब भी धर्मों में विविधता रहेगी और इस विधिता के रहने से इतना संकट नहीं है जितना विविधता की दूर करने के लिए अपने गये धर्म परिवर्तन कराने वाली कुत्किट बुराईयों से है।

14.8 सारांश

सारांशतः हम कह सकते हैं कि धर्मपरिवर्तन की नाराकात्मक विधियों को दूर कर पाना तब तक सम्भव नहीं है जब तक कि विभिन्न धर्मों के धर्मावलिम्बयों द्वारा समाज में यह दुष्प्रचार किया जाता रहेगा कि उनका धर्म ही सर्वश्रेष्ठ है। मुस्लिम एवं इसाई धर्म का आधार ही दुष्प्रचार रहा है। संसार में व्याप्त अधिकांश क्षेत्रों में इन धर्मों न धर्मपरिवर्तन का सहारा लिया है और अपने धर्म था विस्तर किया है। धर्म तो व्यक्ति के आभ्यन्तर से उदित होता है उसे बाहर से थोपा नहीं जा सकता। प्रत्येक व्यक्ति आन्तरिक रूप से अपने धर्म का ही विश्वास करता है और उसी धर्म के रीति

रिवाजों का पालन करता है। ऐसी स्थिति में किसी व्यक्ति या समुदाय पर बाहर से कोई अन्य धर्म थोपना या धर्मपरिवर्तन की बात करना न तो उचित है और न ही नैतिक। इस सन्दर्भ में गाँधी जी के विचारों को सारांशत, उद्घृत करना उचित होगा जब उन्होंने कहा था- मेरा विश्वास है कि आज धर्मान्तरण जिस अर्थ में लिया जाता है उस अर्थ में एक धर्म से दूसरे धर्म में मनुष्य जा ही नहीं सकता। यह तो मनुष्य और ईश्वर के बीच की एक व्यक्तिगत बात है। अतः धर्म परिवर्तन करना, कराना, या उसके लिए प्रेरित करना, लालच देना, धमकी देना और बल का प्रयोग करना अप्रांसगिक एवं अमानवीय है।

14.9 प्रश्न बोध -

(1) धर्म परिवर्तन के प्रकारों की व्याख्या कीजिए।

(2) अनैच्छिक धर्म परिवर्तन का औचित्य बताइए।

(3) "धर्मपरिवर्तन हृदय परिवर्तन है" इस बात से आप कहाँ तक सहमत है? अपने तर्क प्रस्तुत कीजिए।

(4) धर्म परिवर्तन रोकने के लिए शिक्षा कितनी उपयोगी है? वर्णन कीजिए।

14.10 उपयोगी पुस्तकें -

(1) धर्मदर्शन की मूल समास्याएं - वेद प्रकाश वर्मा।

(2) धर्म दर्शन परिचय - हृदय नारायण मिश्र

(3) धर्म दर्शन – डॉ. वी. एन. सिंह

इकाई – 15
धर्म परिवर्तन के प्रेरक तत्व

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 धर्म परिवर्तन के कारण

15.3 कट्टरता

15.4 धर्म परिवर्तन का औचित्य

15.5 धर्म परिवर्तन एवं समाज

15.6 निष्कर्ष

15.7 सारांश

15.8 प्रश्नबोध

15.9 उपयोगी पुस्तकें

15.0 उद्देश्य

धर्म परिवर्तन का एक शब्द कन्वर्जन भी है जिसका सामान्य अर्थ धर्मान्तरण है। धर्मान्तरण को अंग्रेजी में प्रोजलाइज (Proselytize) भी कहते हैं जिसको अर्थ होता है कि धर्म त्याग कराना या धर्म परिवर्तित कराना। इस प्रक्रिया में एक व्यक्ति या समूह को उसके धर्म से अलग एक दूसरे धर्म में दीक्षित किया जाता है। इस इकाई में हम यह जानने का प्रयास करेंगे कि किसी व्यक्ति या समूह को किस कारण से धर्म परिवर्तित करना पड़ता है। यह धर्म के विषय में एक समस्या के रूप में है। यदि हम धर्म परिवर्तन के कारणों पर मन्थन करते हैं कि भारत में अनेक भाषाओं, जातियों और धर्मों के लोग निवास करते हैं। यहाँ विश्व के प्रमुख धर्मों के अनुयायी हैं इसलिए एक धर्म के लोग दूसरे धर्म के लोगों को अपने धर्म के मिलाने उनका धर्म परिवर्तन कराने में लगे रहते है। इस इकाई में हम अध्ययन करेंगे कि वे कौन से प्रेरक तत्व हैं जो किसी व्यक्ति या समुदाय अपना धर्म त्याग कर किसी अन्य धर्म को स्वीकार कर लेने की प्रेरणा देते हैं। धर्मान्तरित व्यक्ति या समुदाय का आगे का सामाजिक जीवन कैसा होता है? धर्म परिवर्तन करने वाले व्यक्ति या समुदाय की मनोवैज्ञानिक दशा क्या होती है और क्या धर्म परिवर्तन का औचित्य वर्तमान विश्व में या भारत में है, इयादि के सविस्तार से चर्चा करेंगे। इस इकाई में हम धार्मिक कट्टरता, राजनैतिक विद्वष, उत्पीड़न, असमानता, स्वार्थ, अर्थ, सहानुभूति जैसे कारकों या प्रेरकतत्वों का भी उल्लेख करेंगे।

15.1 प्रस्तावना

धर्म परिवर्तन एक ऐसा सुपरिचित शब्द है जिसका अर्थ समझने में प्रायः किसी विशेष प्रकार कठिनाई का अनुभव नहीं करना पड़ता है परन्तु जब हम इस शब्द की मनोवैज्ञानिक या दार्शनिक व्याख्या में जाते हैं स्पष्ट होता है कि इसका अर्थ उतना सरल नहीं जितना हम समझते हैं। हमारे समक्ष कुछ ऐसे प्रश्न उठते है कि धर्म परिवर्तन कोई व्यक्ति या समुदाय क्यों करता है? इसका ठीक-ठीक अर्थ और स्वरूप क्या है? क्या धर्म परिवर्तन करने वाला व्यक्ति अपनी इच्छा से धर्म परिवर्तन करता है? यदि वह अपनी इच्छा से धर्म परिवर्तित करता है तो ऐसे कौन-कौन से कारण या प्रेरक तत्व होते हैं जो उसे अपना मूल धर्म त्याग करने को विवश कराते हैं और क्या धर्म परिवर्तन इच्छा के विरुद्ध भी होता है तो भी यह प्रश्न उठता हैं कि वे कौन-कौन नये प्रेरकतत्व या कारण होते हैं जो व्यक्ति की इच्छा के विरुद्ध धर्म परिवर्तन के लिए उसे बाध्य करते हैं? प्रश्न यह भी उठता है कि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से धर्म परिवर्तन की प्रक्रिया क्या है? क्या धर्म परिवर्तन का औचित्य है? इत्यादि प्रश्नों का प्रशमन इस इकाई में करने का प्रयास किया जायेगा। ध्यातव्य है कि प्रस्तुत इकाई में धर्म परिवर्तन के 37 कारणों या प्रेरक तत्वों की तलाश करने का प्रयास किया जायेगा जो वास्तव में सामाजिक जीवन व्यतीत करने वाले तमान मनुष्यों की धार्मिक भवना के परिवर्तनीय प्रेरक तत्वों को प्रकट करते हैं।

15.2 धर्म परिवर्तन के कारण

धर्म परिवर्तन के कारणों का विश्लेषण करना अति आवश्यक है। इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि किसी भी धर्म परायण व्यक्ति के लिए धर्म परिवर्तन उसके जीवन में घटित होने वाकी एक क्रान्तिकारी घटना है। सम्भावना व्यक्त की जा सकती है कि कोई भी व्यक्ति धर्म परिवर्तन के लिए तभी उद्यत होता होगा जब उसके समय धर्मान्तरण के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं होगा। अत: कह सकते हैं कि सामान्य परिस्थितियों में कोई व्यक्ति या मसुदाय धर्म परिवर्तन के विषय में नहीं सोचता है क्योंकि ऐसा करना उसकी दृष्टि में उचित नहीं है। यहाँ इस तथ्य पर विचार करना आवश्यक हो जाता है कि फिर वे असामान्य परिस्थितियाँ कौन सी हैं जब व्यक्ति धर्म परिवर्तन के लिए वाध्य होता है। इसका समुचित उत्तर देने के लिए हम धर्म परिवर्तन के चार मुख्य कारणों की चर्चा करेंगे।

प्रथमत: कभी-कभी ऐसा भी होता है जब मनुष्य स्वयं अपने धर्म से अंसतुष्ट हो जाता है। उसे अपने मूलधर्म के सिद्धान्त और विश्वास एकाएक अनुचित एवं असन्तोषप्रद प्रतीत होने लगते हैं और वह मानसिक अशान्ति का अनुभव करने लगता है और वह अपने धर्म से विरक्त हो जाता है। यह धर्म-परिवर्तन करने का मनोवैज्ञानिक कराण होता है। ऐसे व्यक्ति के मन-मस्तिष्क में यह बात घर कर जाती है कि दूसरा धर्म उसे उसके मूलधर्म से अधिक शान्ति प्रदान कर सकता है और वह धर्म परिवर्तन के किए उद्यत हो जाता है और परिणमत: धर्म परिवर्तन कर लेता है। यह धर्म परिवर्तन का आन्तरिक कारण होता है। द्वितीयत: हम देखते हैं कि कभी-कभी व्यक्ति या समुदाय को धर्म के विषय में, उसकी मूल संस्कृति के विषय में बहुत ही अन्य ज्ञान होता है। अपने धर्म के मूल सिद्धान्तों एवं विश्वासों से अनभिज्ञ होने के कारण जब कोई अन्य धर्मावलम्बी दूसरे धर्म की विशेषताओं और अच्छाइयों को बताता है तो व्यक्ति दूसरा धर्म स्वीकार करने के लिए जल्दी एवं आसानी से उद्यत हो जाता है। ऐसा व्यक्ति बिना ज्यादा विचार किये धर्म परिवर्तन कर लेता है इसे धर्म परिवर्तन का सांस्कृतिक कारण या अशिक्षा कहते हैं।

उपरोक्त दोनों कारणों की अपेक्षा सामाजिक एवं आर्थिक कारण ने धर्म परिवर्तन में अधिक महत्वपूर्ण योगदान किया है। सामाजिक कारण के दृष्टिगत हम कह सकते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति अपने समाज में सुखमय तथा गौरवान्वित जीवन व्यतीत करना चाहता है। अन्य सदस्यों की भाँति वह अपने महत्व को रूपित करते रहना चाहता है परन्तु जब समाज के कुछ रीति रिवाज, कानून तथा नियम उसकी मर्यादा एवं मान में कमी करते हैं तो व्यक्ति के मन में हीन भावना उत्पन्न होती है और वह अपने आपको अन्य सदस्यों की तुलना में बहुत निकृष्ट समझने लगता है। जब कमी इस निकृष्टता का कारण धर्म होता है तो वह अपने धर्म को त्यागकर सामाजिक मान पाने की अभीप्सा में कोई अन्य धर्म ग्रहण करने के विषय में सोचने लगता है और अन्तत: उस धर्म में धर्मान्तरित हो जाता है। इसी प्रकार धर्म परिवर्तन का एक प्रमुख आर्थिक पक्ष भी है और धर्म परिवर्तन के लिए कहीं अधिक महत्व रखता है। यह तो सर्वविदित है कि आधुनिक युग भौतिक सुख-सुविधाओं को प्राप्त करने के लिए हर प्रकार का उद्यम कर रहा है। परन्तु जो मनुष्य निर्धन है उसे इसमें से कुछ प्राप्त नहीं हो पाता है। वह व्यक्ति या मसुदाय जब दूसरे व्यक्ति या समुदाय के लोगों को सुख-समृद्धि में देखता है तो उसमें ईर्ष्या उत्पन्न होती है और उसे भी उसी प्रकार की सुख-सुविधाओं को प्राप्त करने की अभीप्सा होती है। उस अभीप्सा की प्राप्ति के लिए जब वह देखता है कि किसी अन्य

धर्म के लोग उससे ज्यादा सुख-समृद्धि प्राप्त कर रहे हैं तो वह स्वयं या किसी धर्मावलम्बी के बहकावे में आकर अपना धर्म परिवर्त करने के लिए तैयार हो जाता है। इसे धर्म परिवर्तन के लिए आर्थिक कारण की संज्ञा दी जाती है।

15.3 कट्टरता

कट्टरता का अभिप्राय धार्मिक कट्टरता से है। कुछ धर्मानुयायियों की यह धारणा है कि उनका ही धर्म सच्चा और शक्तिमान है, बाकी दुनिया में सभी धर्म झूठे हैं। पूरे विश्व में केवल उनके ही धर्म का प्रचार-प्रसार होना चाहिए। समस्त विश्व के लोगों में केवल उनके धर्म के ही रीति-रिजाव और कर्मकाण्डों का पालन होना चाहिए। इस उद्देश्य से उनका यह सुझाव होता है कि अधिक से अधिक लोगों को इस धर्म में सम्मिलित हो जाना चाहिए। यदि कोई स्वयं उनके धर्म की महानता को स्वीकार नहीं करता और स्वयं धर्म परिवर्तन नहीं करता तो इसी कट्टर भावना के कारण वे अन्य धर्मों के लोगों को लालच देकर या बल से धर्म परिवर्तित कराते हैं। इसका उदाहरण है कि भारत में यह स्पर्धा चलती रहती है।

एक धर्म के लोग दूसरे धर्म के लोगों को अपने धर्म में मिलने के लिए या दूसरे धर्म के लोगों का धर्म परिवर्तन करने के लिए लगे रहते है। यहाँ के इतिहास में धर्म परिवर्तन के अनेक उदाहरण है। भारत के लोगों में जैन और बौद्ध धर्म को ग्रहण किया विदेशों में बौद्ध धर्म के लोग दीक्षित किये गये। चीन, जापान, लंका, तिब्बत, बर्मा(म्यांमा) इसके उदाहरण हैं। अनेक हिन्दू, बौद्ध एवं मुस्लिम धर्म में परिवर्तित किये गये। इसी प्रकार अनेक जातियों ने जैसे यवन, हूण और शकों ने हिन्दू धर्म को अपनाया। केरल और तमिलनाडु में अनेक हिन्दू धर्म के लोग मुस्लिम एवं इसाई धर्म में परिवर्तन किये गये। यह सब धर्मावलम्बियों की धार्मिक भावना अपने धर्म को श्रेष्ठ बताने के कारण हुआ। अत: धार्मिक कट्टरता धर्म परिवर्तन का प्रमुख प्रेरक तत्व है।

15.4 धर्म परिवर्तन का औचित्य

जब हम धर्म परिवर्तन के औचित्य की बात करते है तो स्पष्ट होता है उन प्रश्नों का उत्तर दिया जाय तो कि व्यक्ति या मसुदाय से मूल रूप से जुड़े है। व्यक्ति धर्म की रीढ़ होता है। धर्म किसी व्यक्ति के अन्दर से उदित होता है। प्रत्येक व्यक्ति आन्तरिक रूप से अपने धर्म का ही विकास करने को सोचता है और विकास करता रहता है। इस अवस्था में उस पर बाहर से धर्म थोपना, धर्म परिवर्तन की बात करना न तो उचित है और न ही प्राकृतिक। धर्म को व्यक्तिगत मानकर ही गाँधी पीने धर्म परिवर्तन को उचित नहीं माना है। उनके शब्दों में "मेरा विश्वास है कि आज धर्म परिवर्तन जिस अर्थ में लिया जाता है उस अर्थ में में एक धर्म से दूसरे धर्म में व्यक्ति नहीं जा सकता। यह तो मनुष्य और ईश्वर के मध्य एक व्यक्तिगत सामंजस्य है।" धर्म परिवर्तन के औचित्य को सिद्ध करने के लिए यदि यह तर्क दिया जाय कि विश्व में केवल धर्म होना चाहिए और अमुक धर्म ही सच्चा है, अन्य सभी धर्म झूठ है। उसी अमुक धर्म में सबको परिवर्तित कर लिया जाय तो यह धारणा विश्व की अनेकता के आधार पर गलत सिद्ध होती है। अतएव यह कभी भी किसी भी दृष्टिकोण से नहीं कहा जा सकता कि धर्म परिवर्तन उचित है।

15.5 धर्म परिवर्तन एवं समाज

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह किसी न किसी समाज में सदैव रहता है। समाज में विभिन्न प्रकार के सामाजिक एवं राजनैतिक कारण बार-बार एकता एवं बिलभाव के लिए व्यक्ति या समुदाय को प्रेरित करते रहते है। चूंकि धर्म में अपूर्व एकता उत्पन्न करने की शक्ति होती है इसलिए सामाजिक वर्चस्व एवं राजनैतिक सत्ता प्राप्त करने की अभीप्सा के साथ दूरगामी दृष्टि रखते हुए धर्म का सहारा लेकर किसी धर्म के मानने वाले लोगों को दूसरे धर्म की लालच इत्यादि देकर उस धर्म में सम्मिलित करने के लिए धर्म परिवर्तन किया जाता है। वर्तमान समय में राजनीति में तो धर्म और जाति एक आधार के रूप में प्रयोग में लाये जाते हैं।

सामाजिक ऊँच, नीच, छुआछूत तथा घृणा की भावना जाति भेद और एक वर्ग का दूसरे वर्ग के लोगों से विद्वेष धर्म परिवर्तन का प्रमुख प्रेरक तत्व बन जाता है। प्राचीन काल में अधिकांशतः हिन्दू बौद्ध हो गये इसका प्रमुख कारण सामाजिक विद्वेष की भावना ही रही है। प्राय: वर्तमान समय में भी जो धर्म परिवर्तन किये या रहे हैं उनका कारण सामाजिक असमानता, जाति बहिष्कार तथा गरीबी को माना जाता है। व्यक्ति का व्यक्तिगत स्वार्थ भी धर्म परिवर्तन का प्ररेक तत्व बनता है। यद्यपि यह स्वार्थ सामाजिक कारणों से ही उत्पन्न होता है परन्तु समूह में पाये जाने वाले व्य8क्तियों की मानसिक स्थिति भी इसके लिए उत्तरदायी है। गरीबी में पटने वाले और सामाजिक असमाजता का शिकार होने वालों को अन्य धर्म वाले अधिक सुख-सुविधा का प्रलोभन देकर उनका धर्म परिवर्तन कराते रहते हैं। ऐसी स्थिति में व्यक्ति अपने व्यक्तिगत स्वार्थ में अपने मूल धर्म को छोड़कर दूसरे धर्म को अपनाने के लिए विवश हो जाता है। ऐसे धर्म परिवर्तन करने वाले भविष्य में पश्चात्ताय करते हैं और दु:ख भी भोगते है और न वे इधर के होते है और न ही उधार के। उन्हें पूर्व से अधिक सामाजिक ताप एवं विद्वेष का सामना करना पड़ता है। ऐसे लोग सहानुभूति के पात्र होते हैं।

कभी-कभी सामाजिक जीवन व्यतीत कर रहे लोगों में से कुछ लोगों के प्रति असहानुभूति पूर्वक व्यवहार किया जाता है और उनका उत्पीड़न किया जाता है। ऐसी दशा में सहानुभूति पाने के लिए और अपनी सुरक्षा सुदृढ़ करने के लिए भी लोग दूसरों के धर्म को जाने के विवश होते हैं। हम कह सकते है उपरोक्त सामाजिक उपहास, सहानुभूति का अभाव इत्यादि ऐसे प्रेरक तत्व है जो धर्म परिवर्तन भी कड़ी बनते हैं।

15.6 निष्कर्ष

उपरोक्त अध्ययन के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि धर्म परिवर्तन के प्ररेक तत्व सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों पर निर्भर होते है। यदि व्यक्ति में धार्मिक कट्टरता रहती है तो वह अपने धर्म के विस्तार के लिए हर प्रकार के हथकण्डों को अपनाकर अन्य लोगों को अपने धर्म में मिलाने के लिए अथ लोगों धर्म परिवर्तन कराता रहता है। इसी प्रकार शिक्षा राजनैतिक एवं सामाजिक दशा, व्यक्तिगत स्वार्थ एवं सहानुभूति की पिपाय ऐसे अनेक कारक हैं जो कि धर्म परिवर्तन के लिए प्रेरक तत्व का कार्य करते हैं। हम यह भी देखते हैं कि ईश्वरवादी लोग धर्म परिवर्तन का कारण कभी भी मनोवैज्ञानिक स्वीकार नहीं करते है। उनके अनुसार व्यक्ति में धर्म परिवर्तन

ईश्वर की कृपा का पता होता है। ईश्वर के हाथों में व्यक्ति अपने को एक यन्त्र मात्र समझता है और उसके समझ अपना समर्पण का देता है तभी उनके जीवन में परिवर्तन आता है। इस विशेष अर्थ में तो धर्म परिवर्तन को वरदान के रूप में जाना जाता है। रहस्यवादी एवं मनोवैज्ञानिक तो इस प्रकार के धर्म परिवर्तन को मानव कत्याण का अजस्र श्रोत मानते हैं परन्तु निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि धर्म परिवर्तन का सामान्य रूप एक प्रकार की समस्या उत्पन्न करता है जहाँ विवाद एवं संघर्ष चकता रहता है।

15.7 सारांश

सारांशत: हम कह सकते है कि धर्म परिवर्तन के जितने भी वाहय कारक या प्रेरकतत्व है वे यह तो बताते हैं कि किन प्रकारों में धर्म परिवर्तन कराया जाता है परन्तु वे यह बताने में असमर्थ रहते हैं कि यदि धर्म परिवर्तन स्वेच्छा से नहीं है तो वह जिन भी कारण से किया गया से हमेशा व्यक्ति या समुदाय को दु:ख ही प्रदान करता रहता है। धार्मिक कट्टरता कभी भी शान्ति एवं सहिष्णुता की स्थापना नहीं दे सकती है। धार्मिक कट्टरता सदैव ही एक प्रकार का संघर्ष का उत्पन्न करती है जिससे समाज में रह रहे लोगों के मध्य वैमनस्य उत्पन्न होता है। धर्म परिवर्तन के जो भी कारण हैं वे स्वत: धर्म परिवर्तन करने वाले तथा स्वत: धर्म परिवर्तन चाहने वाले व्यक्तियों या व्यक्ति समूहों में विद्यमान रहते हैं चाहे वह सामाजिक सुरक्षा की भावना हो या फिर व्यक्तिगत स्वार्थ या सहानुभूति का अभाव है। सारांशत: हम कह सकते हैं कि कोई भी धर्म परिवर्तन का कारक या प्रेरक ऐसा नहीं है जो यह सिद्ध करता है कि उस कारण से यदि कोई धर्म परिवर्तन करता है तो वह सदैव ही सुकी एवं शान्त रहेगा। अत: धर्म परिवर्तन का कोई भी कारक या प्रेरक तत्व प्रासंगिक एवं सर्वथा उपयुक्त नहीं है।

15.8 प्रश्न बोध

(1) धर्म परिवर्तन के प्रमुख प्रेरक तत्वों की व्याख्या कीजिए।

(2) क्या धर्म परिवर्तन करने वाले व्यक्ति का व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन सामंजस्यपूर्ण या सन्तोषप्रद होता है? इस सन्दर्भ में अपने विचार व्यक्त कीजिए।

(3) धर्म परिवर्तन हेतु धार्मिक कट्टरता कहाँ तक जिम्मेदार है? वर्णन कीजिए।

(4) धर्म परिवर्तन के आर्थिक कारणों की समीक्षा कीजिए।

15.9 उपयोगी पुस्तकें -

(1) धर्म दर्शन की मूल समस्याएं - वेद प्रकाश वर्मा

(2) धर्म दर्शन परिचय - डॉ. हृदय नारायण मिश्र

(3) धर्म दर्शन – डॉ. वी. एन. सिंह

.....000.....

इकाई – 16

धर्मान्तरण

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 धर्मान्तरण का अर्थ

16.3 धर्मान्तरण का औचित्य

16.4 धर्मान्तरण का कारण

16.5 धर्मान्तरण की रोक हेतु सुझाव

16.6 निष्कर्ष

16.7 सारांश

16.8 प्रश्न बोध

16.9 उपयोगी पुस्तकें

16.0 उद्देश्य

धर्म किसी भी व्यक्ति या सुमदाय की मूल शक्ति होता है। धर्म की शक्ति से ही व्यक्ति सामाजिक जीवन में अपनी श्रेष्ठता एवं उपयोगिता सिद्ध करता है। प्रस्तुत इकाई धर्मान्तरण उचित है अथवा अनुचित? धर्मान्तरण का व्यक्ति के सामाजिक एवं व्यक्तिगत जीवन पर क्या प्रभाव एवं परिणाम होता है। कोई व्यक्ति या समुदाय किन अवस्थाओं में धर्मान्तरण करता है? धर्मान्तरण की रोक-थाम सम्भव है या नहीं? इत्यादि तमाम प्रश्नों के उत्तर हम इकाई में तलाशने का प्रयास करेंगे हम यह देखते हैं कि सामाजिक जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्तियों एवं समुदायों की अलग-अलग राय होती है और उसी के अनुरूप उनके कार्य भी क्रियान्वित होते हैं।

इस ईकाई में हम देखेंगें कि धर्मान्तरण के कारण मनुष्य जाति में संघर्ष और घृणा का समय -समय पर जो ताण्डव नृत्य हुआ है वह भी धर्म एवं धर्मान्तरण के कारण हुआ है। धर्म में आकर्षण एवं विकर्षण दोनों ही शक्तियाँ विद्यमान होती है। इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य है कि धर्म एवं धर्मान्तरण की दार्शनिक व्याख्या की जाय जिससे शिक्षित होकर मानव एवं मानव समुदाय धर्म के नाम पर संघर्ष एवं कूटनीति बन्द करे तथा शान्तिपूर्ण सभी धर्मों को एक मानववादी धर्म मानकर जीवन यापन करें।

16.1 प्रस्तावना

धर्म में दैवी चेतना मूल तत्व के रूप में स्वीकार की जाती है और धर्म मानव जाति की मूल धरोहर रूपी दैवी चेतना का अजश्र श्रोत हैं। धर्म में आकर्षण एवं विकर्षण दोनों तत्व विद्यमान रहते हैं। विवेकानन्द के अनुसार धर्म मानव चिनतन और जीवन का सर्वोच्च स्तर है। धर्म की दोनों शक्तियाँ आकर्षण एवं विकर्षण सदैव ही क्रियाशील रहती है। आकर्षण से प्रेम, दया आदि का स्फुरण होता है तथा विकर्षण से घृणा, द्वेष, संघर्ष आदि का। इस ईकाई में हम धर्मान्तरण से होने बाली सामाजिक हानियों की चर्चा करेंगे कि धर्मान्तरण किस प्रकार वैश्विक एकता को पाने की योजनाओं को विफल करता रहता है। वस्तुत: धर्मान्तरण किसी धर्मानृरित व्यक्ति के लिए एक नये विश्वास की प्रणाली को ईमानदारी से स्वीकार करने की शिक्षा देती है बशर्ते वह स्वयं के काम के लिए किया गया धर्मान्तरण न हो। केवल अपने लाभ के लिए किया गया धर्मान्तरण एक प्रकार का पाखण्ड है। भीमराव अम्बेडकर ने स्वातन्त्र्य, समानता और भाईचारे की शिक्षा के बदले अपने ही अनुयायी को घृणा की नजर से देखना आदि मुद्दों पर विरोध जताकर अपने कुछ समर्थकों के साथ धर्मान्तरण कर बौद्ध धर्म अंगीकार किया था। वही गाँधी जी ने धर्मान्तरण प्रक्रिया की आलोचना की है और सभी धर्मों को समान मानकर सभी का आदर करने का विचार रखा है। गाँधी जी ने कहा था कि - मैं विश्वास नहीं करता कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का धर्मान्तरण को। दूसरे के धर्म को कम करके आंकना मेरा प्रयास कभी भी नहीं होना चाहिए। यदि मेरे पास शक्ति है और मैं इसका प्रयोग कर सकता हूतो मुझे धर्मान्तरण को रोकना चाहिए।

16.2 धर्मान्तरण का अर्थ

सामान्य रूप से धर्मान्तरण किसी ऐसे नये धर्म को अपनाने का कार्य है जो धर्मान्तरित हो रहे व्यक्ति के मूल धर्म से भिन्न हो। जब कोई एक ही समुदाय का धर्मान्तरण उसी सम्प्रदाय में करता है तो वह पुनर्सम्बद्धता कहा जाता है। वस्तुत: धर्म मनुष्य की जीवन शक्ति होती है। धर्मान्तरण किसी भी व्यक्ति या समुदाय को किसी अन्य धर्म या अन्य विश्वास प्रणाली में परिवर्तन करने के दरादे का प्रयास का नाम है। धर्मान्तरण का एक अर्थ कन्वर्जन (Conversion) भी होता है। धर्मान्तरण को अंग्रेजी में प्रोसकाइज (Proselytze) भी कहते हैं, जिसका अर्थ होता है - धर्म का त्याग करना या धर्म परिवर्तन कराना। दूसरे अर्थ में लोगों की धार्मिक या राजनीतिक मान्यताओं को बदलने के प्रयास की नीति को धर्मान्तरण कहा जाता है।

विश्वास को स्थापित करने के प्रयास धर्मान्तरण की व्याख्या में निहित होते है। यह एक प्रकार का ऐसा धार्मिक विपणन है जो धार्मिक सन्देशों की चर्चा दूसरे के धर्मों को प्रभावित करने के लिए होती है। कभी-कभी धर्मान्तरण एवं धर्म परिवर्तन को एक ही श्रेणी की क्रियाविधियों के रूप में स्वीकार किया जाता है इसमें एक जाति या समूह को उसके धर्म से अलग दूसरे धर्म में दीक्षित किया जाता है। विश्व के अनेक जीवित धर्मों में इसाई, इस्लाम, हिन्दू एवं पारसी आदि धर्म ऐसे हैं जिनको धर्मानुयायियों के विषय में प्राय : सुना जाता है कि वे एक दूसरे धर्मों के लोगों का धर्मान्तरण कराने रहते हैं। यह धर्म के विषय में एक समस्या के रूप में है विशेष रूप से भारत के लिए यह विकट समस्या है।

यहाँ विश्व के प्रमुख धर्मों के अनुयायी निवास करते है इसलिए एक धर्म के लोग दूसरे धर्म के लोगों का धर्मान्तरण करने में लगे रहते हैं। वस्तुत: धर्मान्तरण राष्ट्रीय एकता एवं सामाजिक दृढ़ता के लिए अभिशाप है। स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय जनता का इतर धर्मों में धर्मान्तरित होने का विवरण देते हुए कहा है - जब हम वेदान्ती है तो हम यह बात नि:सन्देह समझते हैं कि अगर पहले हम ही अपने को हानि न पहुँचायें तो ऐसी कोई शक्ति नहीं जो हमारा नुकसान कर सके। भारत में मुसलमान एवं इसाई धर्म के अनुयायी तेजी से बढ़ रहे है और भारतीय हिन्दुओं को उनके अपने धर्मों में धर्मान्तरित करने के लिए यत्न कर रहे हैं जो कि भारत के लिए एक समस्या है। राष्ट्रीय संगठन की दृष्टि से यह समस्या और भी भयंकर सिद्ध होगी।

यद्यपि किसी भी देश की जनता के लिए धर्मान्तरण एक जटिल समस्या है परन्तु भारत में यह समस्या विकराल रूप के चुकी है। धर्मान्तरण दो रूपों में देखा जाता है - एक व्यक्तिगत दूसरा सामूहिक। व्यक्तिगत रूप में धर्मान्तरण उसकी विकट समस्या नहीं है जितना कि सामूहिक रूप में। व्यक्तिगत रूप में धर्मान्तरण व्यक्ति अपनी इच्छा से धर्म विशेष के किसी गुरू या उसके सिद्धान्तों से प्रभावित होकर स्वेच्छया अपने धर्म का परिवर्तन करता है इस सम्बन्ध में गाँधीजी ने कहा था कि - सदैव धर्मान्तरण छद्म ही नहीं होता वास्तविक धर्मान्तरण के उदाहरण भी मिलते हैं - अगर कोई अपने आनतरिक सन्तोष एवं विकास के लिए धर्मान्तरण करना चाहें तो वे भले ही करें। जो लोग खुद सोच-समझकर धर्मान्तरण करते है उनकी चिन्ता मुझे नहीं है लेकिन जो अछूत या शूद्र मुसलमान बने हैं वे

इस प्रकार सोच विचार कर नहीं बने हैं। आज भी सामूहिक धर्मान्तरण की क्रिया चल रही है। दक्षिण के मीनाक्षीपुरम ग्राम के हरिजनों का धर्मान्तरण मुस्लिम या इस्लाम धर्म में कराया गया जो उचित नहीं है।

16.4 धर्मान्तरण का औचित्य

धर्म की भावना प्रत्येक व्यक्ति के आम्पन्तर से ही उदित होती है वह बाहर से थोपी नहीं जा सकती। प्रत्येक व्यक्ति आन्तरिक रूप से अपने धर्म का ही विकास करता है तो उस पर बाहर से दूसरा धर्म थोपना, धर्मान्तरण की बात करना न तो उचित है और न ही प्राकृतिक। गाँधी जी का मत है कि किसी व्यक्ति का धर्म से विरक्त होना स्वाभाविक है और उस स्थिति में उसका व्यक्तिगत हृदय परिवर्तन हो सकता है परन्तु जो यह सामूहिक धर्मान्तरण मिलते है वे किसी भी रूप में आन्तरिक प्रकार या सच्चे हृदय परिवर्तन से नहीं होते। इस सन्दर्भ में भी गाँधी जी ने कहा था - मेरी राय में ऐसे धर्मान्तरण सच्चे हृदय -परिवर्तन द्वारा नहीं किये गये हैं। अगर कोई व्यक्ति डर से, जवर जब्ती से या भूख से या रूपये पैसे की लालच में किसी दूसरे धर्म में चला जाता है तो उस धर्मान्तरण को हृदय परिवर्तन का नाम नहीं दिया जा सकता।

नैतिक दृष्टि से यह नहीं कहा जा सकता है कि कोई व्यक्ति या समुदाय धर्मान्तरण किसी भी प्रकार से अभिप्रेरित अथवा बाध्य होकर करे। इस दृष्टि से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी व्यक्ति या समुदाय को धर्मान्तरित करने के लिए अभिप्रेरित या बाध्य करना उसकी धार्मिक स्वतन्त्रता में बाधा उत्पन्न करना होता है जो कि नैतिक दृष्टि से उचित नहीं है। इसी प्रकार धर्मान्तरण को अनुचित एवं अवांछनीय मानने का दूसरा कारण यह हैं कि इसके फलस्वरूप मनुष्य के जीवन में सामान्य और स्वाभाविक रूप से बहुत बड़ी उथल-पुथल उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि धर्मान्तरण के कारण विभिन्न धर्मों के अनुयायियों में संघर्ष उत्पन्न होने की प्रबल सम्भावना बनी रहती है जो कि उचित नहीं है क्योंकि कि संघर्ष से मनुष्य या व्यक्ति का सामाजिक जीवन प्रभावित होता है। धर्मान्तरण करने या कराने वालों के अतिरिक्त भी लोग भी समाज में रहते है जिन्हें असन्तोष एवं अशान्ति का सामना करना पड़ता है। अत: नैतिक, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी धर्मान्तरण उचित नहीं है।

16.5 धर्मान्तरण का कारण

धर्मान्तरण के अनेक कारण हमें दिखायी देते है जिनसे प्रभावित होकर लोग अपने मूल धर्म को त्यागकर विभिन्न अन्य धर्मों में धर्मान्तरित होते है। जिसमें विश्वास में हुए परिवर्तन के कारण स्वेच्छा से होने वाला सक्रिय धर्मान्तरण, द्वितीयक धर्मान्तरण, मृत्युशैय्या पर होने वाला धर्मान्तरण, किसी काम के लिए किया जाने वाला तथा वैवाहिक धर्मान्तरण एवं बल पूर्वक किया जाने वाला बलात् धर्मान्तरण सम्मिलित है। धर्मान्तरण के और भी अन्य कारण होते है जैसे - विश्वासों में बदलाव, किसी काम के लिए किया जाने वाला धर्मान्तरण, समाज में उचित दर्जा न मिलने के कारण किया जाने वाला धर्मान्तरण, धार्मिक कटटरता के लिए कराया जाने वाला धर्मान्तरण, सहानुभूति प्राप्त न होने पर किये जाने वाला अनुचित धर्मान्तरण, धर्म के प्रति शिक्षा का अभाव, आत्मज्ञान प्राप्त करने की झूठी दिलाशा तथा

सत्य ज्ञान की कमी ऐसे उदाहरण स्वामी कारण है जो कि किसी व्यक्ति या मसुदाय को उसके मूल धर्म से किसी अन्य धर्म में धर्मान्तरण के लिए विवश करते है। इसके अतिरिक्त धर्मान्तरण के अन्य कारण जैसे मनोवैज्ञानिक कारण, सामाजिक कारण, आर्थिक कारण एवं सांस्कृतिक कारण होते है जिसके फलस्वरूप व्यक्ति या समुदाय धर्मान्तरण करता रहता है।

16.6 धर्मान्तरण की रोक हेतु सुझाव

किसी भी व्यक्ति द्वारा यदि अपनी इच्छा से धर्म का अन्तरण होता है तो वह कुछ हद तक समीचीन हो सकता है परन्तु यदि बलात या उसकी अपनी इच्छा के विरूद्ध यदि धर्मान्तरण होता है तो वह सर्वथा सामाजिक अति पहुँचाता है। इस प्रकार की कोई अति राष्ट्र का अहित करती है। यदि धर्मान्तरण जैसी गतिविधियों पर रोक लगे एवं सभी धर्म के अनुयायी अपने-अपने धर्मों में वह आवश्यक तत्व खोजे जिससे सभी व्यक्तियों का हित हो और किसी दूसरे धर्म की कोई निन्दा न हो तो समृद्ध समाज और राष्ट्र का निर्माण होगा। यहाँ पर इस बात की चर्चा करना चाहते हैं कि वे कौन सी परिस्थितियाँ है जहाँ हम व्यक्ति या समुदाय के धर्मान्तरण रोकने हेतु कदम उठा सकते हैं। ज्ञातव्य है कि उत्तर प्रदेश सरकार ने धर्म अन्तरण को सर्वथा अनुपयुक्त और अवैध स्वीकार किया है तथा धर्मान्तरण कराने बातो व्यक्ति या संस्था के विरूद्ध कड़ी कार्रवाई करने के कानून बनाये हैं। कुछ और सुझाव या उपाय हैं जिनसे धर्मान्तरण पर रोक लगायी जा सकती है या कम किया जा सकता है।

कानून का शासन यदि प्रहरी बनकर लोगों के मन-मस्तिष्क में रहता है तो यह अपेक्षा की जा सकती है कि सभी नागरिकों के लिए एक समान कानून व्यवस्था स्थापित होगी और सभी धर्मों के लोग उसका पालन करेंगे जिससे स्वतन्त्रता, समानता तथा न्याय के आदर्शों की पूर्ति होगी। एक समान कानून और उसका यथोचित पालन ही देश के समस्त नागरिकों को देश के विकास के लिए नई धारा का निर्माण कर सकता है। दूसरे शिक्षा व्यवस्था को और सुदृढ़ करने की आवश्यकता है। देश के विभिन्न भागों में विशेषत: धर्म की शिक्षा जो कि मदरसों या ऐसे संस्थानों में दी जाती है जहाँ कट्टरता एवं धार्मिक उन्माद उत्पन्न होता है, नहीं दी जानी चाहिए। जाति, सम्प्रदाय या धर्म के आधार पर दी गयी शिक्षा धर्मान्तरण को बढ़ावा देती है।

एक प्रमुख सुझाव धर्मान्तरण रोकने के लिए दिया जाना आवश्यक है कि धार्मिक प्रचार-प्रसार के अधिकार की समाप्ति हो। यह तय हो कि लोग जिस धर्म में हैं उसी धर्म के आस्था और निष्ठा रखे तथा यदि उस धर्म में यदि उन्हें कोई तकलीफ होती है तो कानून का सहारा लें। धर्म की शिक्षा बुद्धि या तलवार से नहीं दी जा सकती। सामाजिक जीवन धर्म निरपेक्ष होगा तो धर्मान्तरण में कमी आयेगी। इसी प्रकार धार्मिक आधार पर चुनाव प्रचार बन्द होना चाहिए तथा पाठ्य पुस्तकों में प्राथमिक और उच्चतर स्तर से ही धार्मिक सहिष्णुता और सर्वधर्म समन्वय पर बल दिया जाना चाहिए। यहाँ ऐसे कुछ सुझाव हैं जिन्हें यदि पालित किया जाय तो धर्मान्तरण का कुछ हद तक रोका जा सकता है।

16.7 निष्कर्ष

उपरोक्त अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि धर्म किसी भी व्यक्ति का अधिकार है। हमें उसमें वह नहीं छीनना चाहिए। परन्तु यदि धर्म का प्रयोग गलत उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया जा रहा है तो उसे लगाम अवश्य ही लगनी चाहिए। धर्मान्तरण का औचित्य कभी भी सकारात्मक नहीं दिखाई देता है। हमने इस इकाई में देखा कि धर्मान्तरण का जो सकारात्मक एवं सही अर्थ है यदि उसका पालन किया जाय तो धर्म सन्दर्भित तमाम समस्याएं दूर हो सकती हैं और धर्मान्तरण जैसी कुरीति पर विराम कम सकता है। इस इकाई में हमने देखा कि कुछ ऐसे सुझाव दिये गये हैं जिन की आलोचनाएं तो की जा सकती है परन्तु यदि समेकित दृष्टि से देखा जाय तो उनके अतिरिक्त कोई विकल्प भी नहीं दिखाई देता। निष्कर्षत: हम कह सकते है कि यदि हमें सामाजिक शान्ति एवं सुरक्षा चाहिए और भारत में लोकतन्त्र को विश्व का सबसे अच्छा लोकतन्त्र सिद्ध करना है तो यह आवश्यक है कि धर्मान्तरण जैसी कुत्सित गतिविधियों पर विराम लगाना होगा।

16.8 सारांश

सारांशत: यह मत प्रकट होता है कि इस इकाई में हमने धर्म के अन्तरण के मनोवैज्ञानिक एवं सामान्य अर्थ की विवेचना से यह पाया कि धर्मान्तरण एक ऐसी प्रक्रिया है जो समाज और देश को सदैव खोचाला करती है। संघर्ष और अशान्ति की स्थापना करती है। अशान्ति से व्यक्ति एवं समाज दोनों का जीवन सदैव ही तनाव में रहता है। इस इकाई में हमने यह चर्चा की है कि किसी भी धर्म से घृणा उचित नहीं है, का भाव जब हमारे मन-मस्तिष्क में आता है तब धर्मान्तरण जैसी घटनाओं में कमी आती है। इस इकाई में हमने यह भी देखा कि धर्म लोगों की श्रद्धा को अपनी और सदैव आकर्षित करते रहते है, सभी धर्मों में अच्छे लोग़ है। हम कह सकते हैं कि धर्म की शिक्षा के अभाव, धर्मान्धता या धार्मिक कट्टरता के कारण यदि कोई धर्मान्तरण करता है तो वह उसकी अज्ञानता है।

सत्य तो यह है कि किसी धर्म में यह नहीं कहा गया है कि अन्य धर्म लोगों को अपने धर्म में मिलाकर उनका धर्म परिवर्तन य़ा धर्मान्तरण कराया जाय परन्तु कुछ ऐसे धार्मिक कट्टर लोग है जो कि अपने धर्म की छद्म श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए विभिन्न तरीकों से लोगों का धर्मान्तरण कराते रहते हैं। धर्मान्तरण न हो इसके लिए इस इकाई में कुछ सुझाव भी दिये गये हैं। हम भली भाँति कह सकते हैं कि यदि दिये गये सुझावों का अंशत: पालन भी हो तो धर्मान्तरण जैसी घातक गतिविधियाँ रोकी जा सकती हैं।

16.9 प्रश्न बोध -

(1) धर्मान्तरण की परिभाषा देते हुए इसके अर्थ का निरूपण कीजिए।

(2) धर्मान्तरण रोकने हेतु दिये गये सुझावों का वर्णन कीजिए।

(3) धर्मान्तरण के मौलिक कारणों का उल्लेख कीजिए।

(4) ''धर्म संजीवनी है'' गाँधी के इस मत को धर्मान्तरण रोकने हेतु कैसे प्रयोग कर सकते हैं?

16.10 उपयोगी पुस्तकें -

(1) धर्म दर्शन परिचय - डॉ. हृदय नारायण मिश्र

(2) धर्म दर्शन - डॉ. वी. एन. सिंह

(3) धर्म दर्शन की मूल समस्याएं - डॉ. वेद प्रकाश वर्मा